SURESH GYAN VIHAR UNIVERSITY
Accredited by NAAC with 'A+' Grade

Master of Arts

(Hindi)

साहित्यिक निबंध - 2 (HNL-505)

Semester-II

Author- Nirmla Parewa

SURESH GYAN VIHAR UNIVERSITY

Centre for Distance and Online Education
Mahal, Jagatpura, Jaipur-302025

EDITORIAL BOARD (CDOE, SGVU)

Dr (Prof.) T.K. Jain
Director, CDOE, SGVU

Ms. Hemlalata Dharendra
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Ms. Kapila Bishnoi
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Mr. Ashphaq Ahmad
Assistant Professor, CDOE, SGVU

Dr. Manish Dwivedi
Associate Professor & Dy, Director, CDOE, SGVU

Mr. Manvendra Narayan Mishra
Assistant Professor (Deptt. of Mathematics) SGVU

Published by:

S. B. Prakashan Pvt. Ltd.

WZ-6, Lajwanti Garden, New Delhi: 110046

Tel.: (011) 28520627 | Ph.: 9205476295

Email: info@sbprakashan.com | Web.: www.sbprakashan.com

© SGVU

All rights reserved.

No part of this book may be reproduced or copied in any form or by any means (graphic, electronic or mechanical, including photocopying, recording, taping, or information retrieval system) or reproduced on any disc, tape, perforated media or other information storage device, etc., without the written permission of the publishers.

Every effort has been made to avoid errors or omissions in the publication. In spite of this, some errors might have crept in. Any mistake, error or discrepancy noted may be brought to our notice and it shall be taken care of in the next edition. It is notified that neither the publishers nor the author or seller will be responsible for any damage or loss of any kind, in any manner, therefrom.

For binding mistakes, misprints or for missing pages, etc., the publishers' liability is limited to replacement within one month of purchase by similar edition. All expenses in this connection are to be borne by the purchaser.

Designed & Graphic by : S. B. Prakashan Pvt. Ltd.

Printed at :

विषय-सूची

इकाई 1

आषाढ़ का एक दिन : एक विवेचना 5

इकाई 2

लहरों के राजहंस : एक विवेचना 32

इकाई 3

आधे-अधूरे : नाटक में अभिव्यक्त संवेदना एवं शिल्प 98

इकाई 4

भारतेन्दु युग 159

इकाई 5

द्विवेदी युग 181

vf/kxe ifj.kke (Learning out comes)

fo|kFkh le>us e l{ke gksxk

bdkbZ &1

- fo|kFkh ekgu jkd'k d ukVd vk"kk< dk ,d fnu dh dFkkoLr dk v/;;u dj ldx
- o vk"kk< dk ,d fnu ukVd dk mnn'; Li'V dj ldx
- vk"kk< dk ,d fnu ukVd dh ukjh gn; dh Hkkouk dk v/;;u dj ldx

bdkbZ &2

- fo|kFkh ekgu jkd'k d ukVd ygjk d jktgl dh oLr ;ktuk dk v/;;u dj ldx
- ekgu jkd'k d ukVd ygjk d jktgl e of.kr irhdkRedrk dkYifud ,o ,frgkfldrk dk v/;;u dj ldx
- o ygjk d jktgl dk mnn'; Li'V dj ldx

bdkbZ &3

- fo|kFkh ekgu jkd'k d ukVd vk/k&v/kj dh dFkkoLr dk v/;;u dj ldx
- ekgu jkd'k d ukVd vk/k&v/kj e vk/kfudrk ,o L=h&i:"k lc/k dk fo'y"k.k dj ldx
- vk/k&v/kj ukVd dh leh{kk rRok d vk/kkj ij dj ldx

bdkbZ &4

- fo|kFkh Hkkjrun ;x dk ifjp; ikIr dju e l{ke gk ldx
- Hkkjrun dkyhu dk0; dh iofr;k dk v/;;u dj ldx
- Hkkjrun;xhu xn; lkfgR; d fodkl dk v/;;u dj ldx

bdkbZ &5

- fo|kFkh f}onh ;x dk uke dj.k ,o dky lhekdu dk v/;;u dj ldx
- o f}onh ;xhu dk0; iofr;k ,o ifrfuf/k jpukdkj d ckj e v/;;u dj ldx
- o f}onh ;xhu dfork dh fo'k"krkvk d ckj e tku ldx

साहित्यिक निबन्ध-2

अध्ययन

इकाई 1

आषाढ़ का एक दिन : एक विवेचना

प्रस्तावना, आषाढ़ का एक दिन-तात्विक विवेचन, वस्तु-योजना, पात्र का चरित्र-चित्रण, कथोपथन अथवा संवाद-योजना, देशकाल-वातावरण, भाषा-शैली, उपद्देश्य एवं संदेश, रंगमंच और अभिनेयता

इकाई 2

लहरों के राजहंस : एक विवेचना

प्रस्तावना, नाटक की कथावस्तु, लहरों के राजहंस-प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दर्शन, नाम की सार्थकता, प्रतीकात्मकता, काल्पनिकता एवं ऐतिहासिकता, लहरों के राजहंस-उद्देश्य अथवा प्रतिपाद्य, कथोपकथन अथवा संवाद-योजना, लहरों के राजहंस - भाषा-शैली, लहरों के राजहंस - और अभिनेयता, लहरों के राजहंस की रंगमंचीयत, पात्र का चरित्र-चित्रण, श्यामसांग अर्थववता

इकाई 3

आधे-अधूरे : नाटक में अभिव्यक्त संवेदना एवं शिल्प

प्रस्तावना, संवेदना की विविध परिभाषाएँ, संवेदना की अवधारणा, संवदेना के विविध रूप और आधे-अधूरे, आधे-अधूरे की अभिनेयता, आधे-अधूरे की सम्वाद योजना, आधे-अधूरे : उद्देश्य अथवा प्रतिपाद्य, आधे - अधूरे : आधुनिकता, आधे - अधूरे : युगबोध, आधे-अधूरे : प्रयोगधर्मिता, आधे-अधूरे की भाषा शैली, पात्रों का चरित्र-चित्रण, आधे-अधूरे और आधुनिक जीवन के प्रश्न, आधे-अधूरे : चरित्र और समाज, आधे-अधूरे और नाटकीय रंगमंचीय संदभ

इकाई 4

भारतेन्दु युग

प्रस्तावना, नवजागरण तथा आधुनिक बोध, साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली के उपयोग का आरम्भ एवं विकास, भारतेन्दु युग, राष्ट्रीयता की भावना, सामाजिक दुर्दशा का चित्रण, नई सामाजिक चेतना, जनजीवन का चित्रण, काव्यानुवाद का आरम्भ, ब्रजभाषा का प्रयोग, छन्द अलंकार, काव्य कृतियाँ-नाटक, उपन्यास, इतिहास और पुरातत्व सम्बन्धी, यात्रा वृतान्त, जीवनी, भारतेन्दु युगीन पत्राकारिता और साहित्य

इकाई 5

द्विवेदी युग

प्रस्तावना, द्विवेदी युग : हिंदी जागरण और सरस्वती, द्विवेदीयुगीन गद्य साहित्य, द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ, द्विवेदीयुगीन कविता के आधार बिंदू, स्वाधीनता आन्दोलन और द्विवेदी युग का मूल चरित्र, बजभाषा की कविता, खड़ी बोली की कविता

इकाई 1

आषाढ़ का एक दिन : एक विवेचना

संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 आषाढ़ का एक दिन–तात्विक विवेचन
1.3 वस्तु–योजना
1.4 पात्र का चरित्र–चित्रण
1.5 कथोपथन अथवा संवाद–योजना
1.6 देशकाल–वातावरण
1.7 भाषा–शैली
1.8 उपद्देश्य एवं संदेश
1.9 रंगमंच और अभिनेयता
1.10 नाटक का सारांश
1.11 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

1.1 प्रस्तावना

आधुनिक नाटकों का स्वरुप परम्परागत नाटक-परम्परा से एकदम हटकर है। नाटक इस दृष्टि से आज परम्परागत आधारों पर नाटकों के विवेचन-विश्लेषण का कोई औचित्य नहीं रह गया। इस प्रकार नाटक पहले रस एवं किसी विशिष्ट उदेदश्यों को सामने रखकर रचे जाते थे। 'आषाढ का एक दिन' नाटक में जिस प्रकार के और जिस ढंग से कथ्य-कथानक की योजना की गई, पात्रों को योजना और उनके चरित्र-चित्रण किये गये हैं, उन सब में परम्परा का निर्वाह किसी भी रूप में नहीं हुआ है बल्कि एक नव्य प्रकिया और प्रणाली ही नाटककार ने अपनाई है। इन स्थितियों में परम्परागत दृष्टियों और आधुनिक दृष्टियों से नाटक के जो क्रमशः तीन, छः या सात तत्व स्वीकार किए गये हैं, उनका कसोटी पर 'आषाढ़ का एक दिन' आज से किसी नाटक को परखने कोई तथ्य नहीं है। फिर भी विशुद्ध अकादामक स्तर पर भी नाटकों अथवा साहित्य के अन्य विधात्मक रूपों के तात्विक विवेचनों की परम्परा विद्यमान है। इस दृष्टि से कृति का मूल्याँकन यहाँ प्रस्तुत हैं।

1.2 आषाढ़ का एक दिन-तात्विक विवेचन

नाटक मूलतः साहित्य का एक दृश्य विधानात्मक विधा और स्वरूप है। कथात्मक साहित्य के अन्तर्गत आने वाले विधात्मक रूपों के आधुनिक पारप्रेक्ष्य में मुख्यतः छः तत्व स्वीकार किये जाते हैं। पर जहाँ तक कथात्मक-साहित्य के इस दृश्य-स्वरूप या विधा का प्रश्न है, दृश्यमयता के कारण इसके क्रमशः सात तत्व स्वीकार किये जाते हैं। यहाँ आषाढ़ का एक दिन नाटक के तात्विक विवेचन के लिए नाटक के सात मुख्य तत्व स्वीकार किए गए हैं। क्रमशः उन तत्वों के नाम हैं- 1. वस्तु योजना, कथात्मक या कथा वस्तु 2. पात्र और चरित्र-चित्रण 3. कथोपकथन या सम्वाद 4. देशकाल और वातावरण 5. भाषा-शिल्प 6. उद्देश्य एवं सन्देश और 7. रंग-मंच एवं अभिनेयता। जब हम इन तत्वों की कसौटियों पर 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक को कसते हैं तो निम्नलिखित तथ्य हमारे सामने आते हैं।

1.3 वस्तु-योजना

इसे कथानक और कथावस्तु के नाम से भी आभहित किया जाता है। नाटक का वस्तु-योजना आधिकारिक दृष्टियों से इतिहास संयत होते हुए भी विशुद्ध ऐतिहासिक नहीं बल्कि कल्पना-प्रधान ऐतिहासिक है। क्योंकि नाटककार ने कथानक के नायक कालिदास को युग-युगों का सृजन चेतना का प्रतीक मानकर उसका चित्रण किया है। अतः वस्तु-विन्यास एवं विकास में आधुनिक बल्कि यथार्थ युग-बोध अधिक समान्वत एवं संयत हो पाया है। वस्तु-विन्यास और विकास के लिए नाटककार ने कालिदास के सम्बन्ध में प्रचलित मान्य कवदान्जयों, लोक-कथाओं और ऐतिहासिक अनुमानों का सहारा ही अधिक लिया है, इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से कथा-नायक कालिदास जहाँ युग-युगों का सृजन-प्रतिभा का प्रतीक बनकर हमारे सामने आया है, वहाँ कथा-नायिका भी एक प्रकार से युग-युगों का समार्पता प्रेमिका और नारी के रूप में ही हमारे सामने आया है, वहाँ कथा-नायिका भी एक प्रकार से युग-युगों का समार्पता प्रमिका और नारी के रूप में ही हमारे सामने चित्रित हो पाई है। कुल मिलाकर 'आषाढ़ का एक दिन' का वस्तु-योजना उपेक्षा एवं अपमान सहते हुए ग्राम-प्रांत में स्थानीय काव्य के रूप में रहने वाले कालिदास के अपने काव्य 'ऋतु संहार' के बल पर मल्लिका के पास से राज्य कवि बन कर जाने और फिर अपनी वास्तिविक भूमि की खोज में उसके पास लौटकर वापस आने पर समय के प्रभावों को लक्षित करके किसी अज्ञात दिशा में मल्लिका के पास से चले जाने तक का ही है। इसी को ही नाटककार ने ऐतिहासिक पर्यावरणों में युगान सन्दर्भो में रूपाायत एवं हृदय रूप में प्रस्तुत किया है।

टिप्पणी

वस्तु-विवेचन करने से पहले संक्षेप में और उसके विन्यास को देख लेना उचित रहेगा। अत्यन्त सक्षिप्तक्रम में इसका रूप इस प्रकार है किसी अनजाने पर्वतीय प्रदेश में सदियों में पहले या अनजाने काल में, पहाड़, प्रकृति की गोद में बसे किसी गाँव में कालिदास नामक एक व्यक्ति का जन्म हुआ। यह जन्म से ही कवि प्रतिभा से संथत था। पर शेशवा सुकुमार क्षणों में ही वह अपने माता-पिता के स्नेह-लालच से वंचित हो गया। उसके पशु-पालक मामा ने अत्यधिक उपेक्षा, अवमानना की छाया में उसका लालन-पालन किया। उसे पशुपालक बनाना चाहा, पर उसका सहजात काव्य-प्रतिभा उसे पर्वतीय प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में विचरण करते रहने के लिए विवश करता रहा। परिणामत: घर परिवार और ग्राम्य समाज की ओर से उसे आवारा समझा जाने लगा। पर गाँव की एक बालिका जो बचपन से ही उसके साथ खेल कूद कर बड़ी हुई थी, यौवन-काल में मल्लिका के रूपों में उसकी काव्य-प्रतिभा से, उसके समूचे व्यक्तित्व से प्रेम करती रही। उसकी प्रतिभा को सम्मान की वस्तु समझती रही। अपनी माता अम्बिका के अनवरत विरोध के बावजूद मल्लिका किसी भी लोकापवाद की चिंता किए बिना आंतरिक भावना के स्तर पर कालिदास से प्रेम करती रही। उसी के रनेह-प्रेम की छाया में प्रकृति और उसका अनवरत प्रेरणाओं से कालिदास ने ऋतु संहार' उज्यायना के राज-दरबार में पहुँचा। यहाँ सभा उससे अत्यधिक प्रभावित हुई। उज्जायना सम्राट ने कालिदास को बुलवाकर राज-कवि के सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित किया। मल्लिका को आंतरिक प्रेरणा और आग्रह से उज्जायना पहुँच कर कालिदास ने मान-सम्मान धन-वैभव और यश सभी कुछ प्राप्त कर लिया। विदुषी राजपुत्री पियगु मजरा से उसका विवाह भी हो गया, पर स्यात् कालिदास मानसिक सन्तोष और शान्ति नपा सके। एक प्रकार से या बाह्य दृष्टियों से अपने विगत जीवन को एकदम भुलाकर कालिदास अपने वर्तमान में ही रम गया, फिर भी वह अशान्त रहा, असन्तुष्ट रहा।

अपने उखड़े और भटके मन की शन्ति के लिए अब उसने अपना रूख राजनीति की ओर किया। वर मातृगुप्त के नाम से काश्मीर का शासक बन कर काश्मीर गया। पर स्वभावत: राजनीतिज्ञ न होने के कारण वह अपने-आपको राजनीतिज्ञ क्षेत्रों में भी जमा न सका। उज्जायना-सम्राट का निधन हो गया। काश्मीर की प्रजा ने विद्रोह कर दिया और उसे संभाल पाने में अस्मर्थ होकर कालिदास वहाँ से भाग खड़ा हुआ। उधर उसकी अनवरत प्रतीक्षा और नितान्त उपेक्षा से टूट कर बेचारी मल्लिका ने जीवन जीने और शरीर को बनाये रखने की विवशता से बाध्य होकर कालिदास के प्रतिद्वंद्वी और अपने लिए घृणा के साकार रूप विलोम को अपना समर्पण कर दिया। उसकी माँ का भी रोग-शय्या पर एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर स्वर्गवास हो गया। अपने घर में अब मल्लिका ने आम्बिका का और मल्लिका का स्थान उसे विलोम से प्राप्त बच्चे ने ले लिया था। काश्मीर से भाग कर वर्षों बाद कालिदास अपनी मूल भूमि से पुन: जुड़ने का साध लेकर, एक नये आषाढ़ की पहली वर्षा में भीगता हुआ, भागता हुआ अपने गाँव, मल्लिका के घर पहुँचा। वह जीवन को 'नये अर्थ' से आरम्भ करना चाहता था, पर जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, तब तक वहाँ की परिस्थितियों में आमूल-चूल परिवर्तन आ चुका था। अपने-आप से, अपना अनवरत परिस्थितियों और उनकी पार से असन्तुष्ट कालिदास दस परिवर्तन को सहन न कर सका। उसके लिए तिल-तिल टूट और बिखर कर भी मल्लिका ने जिस आन्तरिक भावना को सहेज रखा था, उसका कोई मूल्य नहीं था। उपकी स्थिति को बिना सुने-समझे कालिदास आषाढ़ वर्षा में जैसे भागता-भागता आया था, उसी प्रकार वह सदा के लिए जाने कहाँ पलायन कर गया। अन्तिम बार उसे पुकार कर, पर अन्त में परिस्थितियों के कारण आ गये जीवन के विवश वर्तमान यथार्थ को, अपने बच्चो को चूमकर अपने सीने से और अधिक सटा कर रह गया। इसी कोण पर वस्तु-योजना का पर्यवसान हो जाता है।

टिप्पणी

इसी कथानक को नाटककार ने एक सफल नाटकीय परिवेश एवं दृश्य स्वरूप प्रदान किया है। तीन-अंको में वस्तु का विभाजन किया गया है। उसका विस्तार और व्यापकता को बड़ा ही तीव्र विकास का आयाम प्राप्त हुआ है। नाटककार ने वस्तु-योजना की सूच्य-विद्या को भी अपनाया है। उसी के माध्यम से ग्राम-प्रान्तर में उसका अनवरत प्रतीक्षा में बैठा मल्लिका को कालिदास की समस्त गतिविधियों एवं नव्य क्रिया-कलापों की सूचना मिलती रहती है। उज्जायना पहुँच कर कालिदास ने प्रियंगु मजरी से विवाह किया, अनेक नये काव्य रचे, फिर काश्मीर का शासक बना और फिर वहाँ से भाग भी आया-इन सब बातों को वस्तु के अन्तराल में सूच्य रूप में सुघड़ता से संजोया एवं पिरोया गया है। इसी कारण नाटक में वर्णित कल्पित एवं अनुमानित तथ्य भावपूर्ण विश्वसनीय एवं ऐतिहासिक बन गए हैं। जहाँ तक वस्तु-विकास का प्रश्न है, वह सब विश्वसनीय, सीधे, सरल और द्रुत रूप में खड़ा हुआ है। बीच में सहायक या उप-वस्तुओं तथा दार्शनिक चर्चाओं का किसी भी प्रकार का बोझलता भी नहीं है। परिणामत: प्रत्येक प्रकार का प्रेक्षक एवं पाठक सहज ही उसका अन्त:सालिला की गइराई नाप पाने में समर्थ हो जाता है। वस्तु-विधान के बीच में दन्तुल, रागना-सागना, अनुस्वार जैसे पात्रों का योजना से एक विशेष प्रकार की वक्रभंगमा तो आ गई है, नाटकीयता को भी प्रश्रय मिला है और मनोरंजक तत्वों का समावेश भी हो गया है। वस्तु-विधान में स्थायी प्रभाव छोड़ जाने वाले मार्मक स्थल भी अनेक हैं। सभी पात्रों और उनके क्रिया-कलापों की योजना मूलत: कालिदास के आस-पास ही परिभ्रमित होती दिखाई गई है। अत: कालिदास को युग-युगों का सृजनात्मक चेतना का प्रतीक मानकर नाटककार जो कुछ भी कहना चाहता था, वह सब सुघड़ता से कह एवं सम्प्रेषित कर पाया है।

नाटकीय वस्तु-योजना में सकलन त्रय का विशेष महत्व माना जाता है। **आषाढ़ का एक दिन'** नाटक में स्थान, समय और कार्य-संकलनत्रयता के इन तीन तत्वों में से 'समय' की रक्षा तो सम्भव नहीं हो सकी, ऐतिहासिक नाटकों में हुआ भी नही करता; पर स्थान और कार्य की एकता ने इस कमी को कहीं भी अनुभव नहीं होने दिया। इसी कारण वस्तु-विधान के आदि, मध्य, अन्त को समझने, उसे समेटने में किसी भी प्रकार की कमी की अनुभूति नहीं होती। एक स्वाभाविक जिज्ञासा, उत्सुकता, कोतूहल आदि आद्यान्त प्रेक्षकों के मन में बने रहते हैं यहाँ सब वस्तु-विधान को सहज ही अभिनेय बना देते हैं। कालिदास और मल्लिका के प्रेम-सम्बन्धों को भी बड़ा ही सन्तुलित एवं सुव्यवस्थित आदान-प्रदान किया गया है। नाटकीय दृष्टियों से कार्य-व्यापार सभी कुछ अत्यधिक सुसंगठित एवं सुनियेजित हैं। त्रासदीय तत्वों की योजना बड़े हो भव्य एवं ऊर्जास्वत रूप में हो सकी है।

अत: कुल मिला कर सभी दृष्टियों से **'आषाढ़ का एक दिन'** नाटक की वस्तु-योजना को सफल, सार्थक, प्रभावी एवं सम्प्रेषणाय ही कहा जाएगा।

1.4 पात्र का चरित्र-चित्रण

कथानक और उससे सम्बन्धित घटनाओं की सृष्टि पात्रों के द्वारा ही हुआ करती है। इस प्रकार या पात्र होंगे तो उनका चरित्र-चित्रण भी अनिवार्यत: होगा। नाटककार राकेश चूंकि कालिदास को सर्जनात्मक प्रतिभा का प्रतीक मान कर चला है। एक सर्जक को किस प्रकार की स्थितियों और अन्तद्वन्द्वों से गुजरना पड़ता है, यहाँ सब चित्रण करना उसका उदेदश्य रहा है।

मल्लिका

अनुपम त्यागमयी, निश्चल हृदया तथा प्रेमी की मंगल-कामना के लिए अपने जीवन के लिए अपने जीवन के स्वप्नों को न्यौछावर कर देने वाली मल्लिका की यश-सुरभि से प्रस्तुत कृति मल्लिका-पुष्प की सुगंध के समान ही गमक रही है। यह नाटक के आरंभ में हमें इसके नायक कालिदास से पूर्व

टिप्पणी

मल्लिका के दर्शन होते हैं और नाटक की समाप्ति पर स्वपुत्री को आवेशावस्था में चूमती मल्लिका ही हमारी दया की पात्री के रूप में रंगमंच पर विद्यमान रहती है। नाटक कृति की विविध घटनाएँ उसी के प्रभावशाली व्यक्तित्व से अन्तर्सम्बधित हैं वह तो एक ऐसा प्रकाश-केन्द्र है जिसके प्रकाश में हमारे समक्ष नाटक के अनरू समस्त पात्रों के भले-बुरे सुंदर-कुरूप चरित्र-चित्र सुस्पष्ट हो उठते हैं/

जहाँ तक मल्लिका के चारित्रिक गुणावगुणों का प्रश्न है उसमें हमें गुण-ही-गुण परिलक्षित होते हैं यदि उसका कोई अवगुण या दोष है तो वह मात्र यह है कि वह कालिदास को प्रेम करती है और वह प्रेम भी ऐसा जिसमें स्वार्थ को स्थान न होकर प्रिय की मंगल-भावना प्रधान है, जिसमें आदान प्रदान की नहीं अपितु प्रदान की भावना का प्राबल्य है, जिसमें प्रेम की निश्चलता के निर्वाह के बदले दुनिया को अक्ठा दिखाने की शक्ति है। हाँ, यह दूसरी बात है कि इस प्रकार की नादानी करने वाली ललनाओं को स्वार्थी पुरूष वर्ग की ओर से विश्वासघात-उपेक्षा अवहेलना आदि के जो पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं मल्लिका की नियति भी उससे भिन्न नहीं है। उस अनाथ कलिका को निष्ठुर पुरूष वर्ग द्वारा पैरों तले रौंद दिया जाता है उसकी भावनाएँ, उसकी आशा-आकांक्षाएँ आकाश-कुसुम मात्र रह जाती है। उसके चरित्रांकन को निम्नांकित शीर्षकों में विभक्त करके अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है

पितृहीन अल्हड़ किशोरी हतभाग्या मल्लिका का प्रथम दुर्भाग्य तो यही है कि उसके सिर से असमय ही पिता की छविछाया उठ जाती है तथा उसके कोई भाई भी नहीं हैं, मल्लिका और उसकी माँ को ही किसी प्रकार उदर-पूर्ति के साधन जुटाने पड़ते हैं। मल्लिका उल्हड़ नवयौवना है, वह जग-रीति का सम्यक् ज्ञान नहीं रखती अत: इस तथ्य के परिणाम निकाल सकता है। उसकी देखभाल करने वाली है उसकी वृद्धप्राय माँ, जिसकी अपनी इकलोती पुत्री या कहिए जीवन की एकमात्र आधार पुत्री पर अपेक्षा से अधिक स्नेह-भाव है।

वह मल्लिका को जग की उँच-नीच समझाने के लिए उससे रूठती तो है, किन्तु अपनी अल्हड़ पुत्री पर कोई कड़ा प्रतिबन्ध नहीं लगा पाती। कहा जा सकता हैं कि मल्लिका के पिता जीवित होते तो कदाचित् उसके जीवन की वह दयनीय परिणति नहीं होती जो नाटक में चित्रित की गई है/

हठीली पुत्री-अम्बिका की इकलौती संतान होने के कारण मल्लिका के चरित्र में उस हठ और दुराग्रह का पर्याप्त पुट है जो प्राय: ही इकलौती संतानों में पाया जाता है। अम्बिका उसे बार-बार यह समझाने की चेष्टा करती है कि मात्र भावनाओं में खोये रहकर जीवन की प्रत्यक्ष आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं की जा सकती किन्तु मल्लिका की हठ के समक्ष उसे हार माननी पड़ती है। उदाहरणार्थ अम्बिका इस बात पर मल्लिका ने बड़ी रूष्ट है कि वह वर्षा होने की सम्भावना होने पर भी घर नहीं लौटी और कदाचित अपने प्रेमी कालिदास के साथ वर्षा में भीगती रही है। वह मल्लिका की बातों की उपेक्षा करती हुई उसे **ना'** अथवा में ही उत्तर देती है तो मल्लिका उसके हाथ से यह कहकर छाज ही छीन लेती है कि मैं तुम्हें काम नहीं करने दूंगी और उसे दा रख आती है। स्वय मल्लिका का ही यह कथन-**मेरे घर में रहने पर भी तुम अकेली होती हो? कभी तो मेरी भर्त्सना करती हो कि मैं घर में रहकर तुम्हारे सब कामों में बाधा डालती हूँ और कभी कहती हो....** इस तथ्य का उद्घाटन करता है कि उसे माँ के दुलार-भाव ने किस सीमा तक बिगाड़ रखा है, वह माँ के कार्यों में हाथ नहीं बँटाती, अपितु माँ को खिजाती रहती है।

कल्पनाजीवी एवं भावुकतामयी - मल्लिका अत्याधिक भावुक है। प्रेमी के साथ वर्षा में विहार करने के अनन्तर उसका अंग-प्रत्यंग हुलसने लगता है वह भावुकता के गगन में विहार करने लगती है। नाटक के आरम्भ में ही उसके द्वारा स्व-माता से कही गई यह उक्ति कवित्व एवं भावुकता से ओत-प्रोत है - मुझे भीगने का तनिक खेद नहीं। भागती नहीं तो आज मैं वंचित रह जाती।...चारों ओर धुंआरे मेघ

टिप्पणी

घिर आए थे। मैं जानती थी वर्षा होगी। फिर भी मैं घाटी की पगडंडी पर नीचे-नीचे उतरती गई। एक बार मेरा अंशुक भी हवा ने उड़ा दिया। फिर बूंदें पड़ने लगी।... वह बहुत अद्‌भुत अनुभव था माँ, बहुत अद्‌भुत। नीलकमल की तरह कोमल-आई. वाय की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय।. ..मैं चाहती थी उसे अपने में भर लँ और आँखें मूंद लूँ आज के वे क्षण मैं कभी भूल नहीं सकती। साक्षात्कार मैंने कभी नहीं किया। जैसे वह सौंदर्य अस्पृश्य होते हुए भी माँसल हो। मैं उसे छू सकती थी, देख सकती थी, पी सकती थी। तभी मुझे अनुभव हुआ कि क्या है, जो भावना को कविता का रूप देता है।" मल्लिका के सन्दर्भ में यदि यह कहा जाए कि कल्पना और भावना ही उसके ओढ़ना और बिछौना हैं तो अत्युक्ति नहीं होगी। वह इतनी अधिक कल्पनाजीवी और भावुकतामयी है कि अपने और कालिदास के प्रेम संबंध' को वास्तविकता के स्थान पर भावना के स्तर पर प्रतिष्ठित करती है जिसका अभिप्राय यही है कि कालिदास उसे अपनाना चाहे अथवा नहीं किन्तु वह उसका मनसा वरण कर चुकी है और आजीवन कुँवारी रहते हुए भी कालिदास के प्रेम की माला जपते रहने को प्रस्तुत है। वह अपनी माँ से यह कहते हुए कि मैं विवाह करना ही नहीं चाहती, यह भी स्पष्ट कर देती है- "मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है।" यह उनकी भावुकता का ही प्रमाण है कि आत्मकेन्द्रित कालिदास मल्लिका से विवाह करना नहीं चाहता, किन्तु मल्लिका उसकी इस उपेक्षा और निस्संगता की भावना का दोष परिस्थितियों के सिर मढ़ती हुई कहती है साधनहीन और अभावग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना ही क्यों की जा सकती है? हम यह कहना चाहेंगे कि मल्लिका का यह कथन नितांत भवुकतामय है ज्ञात नहीं उसे किस आधार पर यह आशा थी कि उसके निठल्ले से प्रेमी की आर्थिक स्थिति कभी सुधर भी सकती है और जब वह सुदिवस आयेगा तब वह मुझसे विवाह कर लेगा?

भावुकता का मल्लिका अंतिम दृश्य के अतिरिक्त कभी भी परित्याग नहीं कर पाती। उसे यह समाचार मिल जाता है कि कालिदास ने नरेश पुत्री से विवाह कर लिया है, उनका अधिकाशं समय वारांगनाओं के साहचर्य में व्यतीत होता है, फिर भी कल्पनाजीवी मल्लिका यह आशा संजोये बैठी रहती है कि मेरे प्रेमी महाशय मुझे विस्मृत न कर पाएँगे। ग्राम-प्रांतर में आने पर कालिदास उससे मिलने नहीं आता, फिर भी भावुकतामयी मल्लिका स्वयं को कालिदास से पृथक् विक्षिन्न नहीं समझती। नाटक के तृतीय अंक में मातुल ये यह सूचना पाकर कि कालिदास ने काशमीर का शासन भार त्यागकर संन्यास ले लिया है, वह कालिदास के ग्रंथों को सम्बोधित करती हुई जो उद्‌गार व्यक्त करती है, उससे अधिक भावुकता और क्या हो सकती है? "यद्यपि तुम्हारे जीवन में नही रहीं, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा विद्यमान रहे हो। मैंने कभी तुम्हें अपने पास से हटने नहीं दिया। तुम रचना करते रहे और मैं समझती रही कि मै सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है (ग्रंथ को घुटनों पर रख लेती है) और आज तुम मेरे जीवन से तटस्थ हो सकते हो, परन्तु मैं तो अब तटस्थ नहीं हो सकती। तुम जीवन को मेरी दृष्टि से क्यों नहीं देखते?" कहना न होगा कि उसकी इस भावुकता ने जहाँ पाठक-प्रेक्षकों की दृष्टि में उसका चारित्रिक उत्कर्ष किया है, वहाँ वस्तु जगत् में उसका जीवन दु:खागार बन जाता है।

निश्चल, नि:स्वार्थ प्रेमिका - सच्चा प्रेम निश्चल ओर नि:स्वार्थ होता है-उसमें स्वार्थ-भावना का कलुष नहीं होता। इस कसोटी की दृष्टि से मल्लिका का चरित्र बड़ा प्रशंसनीय है। यह उसकी कालिदास के प्रति निश्चल नि:स्वार्थ प्रेम से अर्जित शक्ति का ही प्रताप है कि वह माता का विरोध और लोकापवाद सहकर भी अपनी प्रेम-भावना में न्यूनता नहीं आने देती। उसकी माता चाहती है कि कालिदास उज्जयिनी जाने से पूर्व उससे विवाह कर ले तथा विलोम तो इस तथ्य को मल्लिका ही नहीं

टिप्पणी

अपितु कालिदास के भी सम्मुख प्रस्तुत कर देता है, फिर भी मल्लिका नहीं चाहती कि वह अपने प्रेमी के उज्जयिनी-गमन में अपने विवाह का बखेड़ा खड़ा करके अड़चन डाल दे। उसके स्व माता से कहे गए इन उद्‌गारों में उसका नि:स्वार्थ हृदय छलक उठा है माँ आज तक का जीवन जिस किसी तरह बीता ही है। आगे भी बीत जायेगा। आज जब उनका जीवन एक नई दिशा ग्रहण कर रहा है, मैं उसके सामने अपने स्वार्थ का उद्‌घोष नहीं करना चाहती।"

कालिदास उसके अनुराग की ओर इंगित करते हुए उज्जयिनी नहीं जाना चाहते, किन्तु मल्लिका के हृदय में यह धारणा घर कर गई है कि ग्राम में रहते हुए उनकी काव्य-प्रतिभा का सम्यक् विकास नहीं हो सकता। अत: वह उनसे बड़ा मार्मिक प्रश्न करती है "तुम समझते हो कि तुम इस अवसर को ठुकराकर यहाँ रह जाओगे तो मुझे सुख होगा"? वह सरला इस तथ्य को भी स्पष्ट कर देती है कि प्रथम तो तुम यहाँ से जाकर भी मुझसे दूर नहीं हो सकते? तथा मैं तुम्हें घेरना नहीं चाहती, इसलिए जाने का आग्रह कर रही हूँ।

मल्लिका का हृदय भी बड़ा उदार है। उसे अब यह ज्ञात होता है कि उसके प्रेमी के विषय में ऐसा लोकोपवाद है कि उसका अधिकांश समय वारांगनाओं के साहचर्य में व्यतीत होता है, तो वह कह देती है "कोई व्यक्ति उन्नति करता है तो उसके नाम के साथ कई तरह के अपवाद अनायास जुड़ने लगते हैं।" जब निक्षेप कालिदास पर यह आक्षेप करता है कि वे यहाँ रहते हुए तो कहा करते थे कि मैं जीवन भर विवाह नहीं करूँगा जबकि उन्होंने उज्जयनी जाकर विवाह कर लिया है और उनके इस आग्रह की रक्षा के लिए तुमने अभी तक कौमार्य-व्रत ही ले रखा है, तो वह तुरन्त कह उठती है श्उनके प्रसंग में मेरी बात कहीं नहीं आती। मैं अनेकानेक साधारण प्राणियों में से हूँ। वे आसाधारण हैं। उन्हें जीवन में असाधारण का ही संसर्ग चाहिए।" वह नि:स्वार्थ, प्रेममयी तो यह सोचकर प्रमुदित है कि मैं स्वप्रेमी के काव्योत्कर्ष में बाधक नहीं बनी हूँ, मैंने उन्हें उज्जयिनी भेजकर बड़ा उत्तम कार्य किया है। हाँ, भाग्य के हाथों ठोकरें खाकर उसे इस तथ्य का ज्ञान हो जाता है कि जीवन भावना और कल्पना के आधार पर नहीं जिया जा सकता, उसकी स्थूल अपेक्षाएँ बड़ी निष्ठुर और क्रूर होती हैं उसकी भावनाएँ कालिदास की सतत् उपेक्षा के कारण कुंठित हो उठती है अपने अभावमय या कहिए वास्तविक जीवन में उसे विलोम की अंकशयिनी बनने को विवश होना पड़ता है- वह अपना नाम खोकर एक विशेषण (कुलटा) मात्र रह जाती है।

सच्चे प्रेमी और प्रेमिकाओं का एक-दूसरे को देखने का दृष्टिकोण बदल जाता है उन्हें उनके अवगुण भी गुण प्रतीत हुआ करते हैं। मल्लिका कालिदास की सच्ची प्रेमिका है और उसे अपने हृदय का समस्त भावना से अनुराग करती है। यही कारण है कि वह स्वप्रेमी के विरोध में एक शब्द तक नहीं सुन पाती और उसके दोषों को भी गुण, उसकी दुर्बलताओं को भी शक्ति के रूप में प्रस्तुत करती है। उसका हृदय यह अनुभव करके कचोट उठता है कि उसकी माँ भी ग्राम के अन्य लोगों की तरह कालिदास को संदेह ओर वितृष्णा की दृष्टि से देखती है जब दंतुल और कालिदास में आहत हरिणशावक को लेकर विवाद होता है तो आरम्भ में तो वह दंतुल को यह फटकारती है कि तुम्हें ऐसे लांछन (चोरी करने में निपुणता) लगाते लज्जानुभव नहीं होता। जब कालिदास हरिणशावक को लेकर चला जाता है और दंतुल अपनी तलवार की मूठ पर हाथ रखकर पीछा करना चाहता है, तो वह उसका मार्ग रोक कर खड़ी हो जाती है और उसे डपटती हुई सी कहती है "ठहरो राजपुरूष! हरिणशावक के लिए हठ मत करो। तुम्हारे लिये प्रश्न अधिकार का है, उनके लिये संवेदना का। कालिदास नि:शस्त्र होते हुए भी तुम्हारे शस्त्र की चिन्ता नहीं करेंगे।" वह अपनी माँ से इस हेतु झगड़ती है कि वह कालिदास के विषय में उदारतापूर्वक नहीं सोचती, उसे पूर्वाग्रह के कारण उसके गुण भी दोष प्रतीत होते हैं। अम्बिका बड़ा

टिप्पणी

स्वाभाविक प्रश्न करती है कि यदि उसका भी तुमसे भावना का संबंध है, तो वह तुमसे विवाह क्यों नहीं करता? यह प्रश्न अपने आप में बड़ा सार्थक था, किन्तु मल्लिका का प्रेमा आप्लावित हृदय इस विराट प्रश्न को भी यह कर कर हवा में उड़ा देता है तुम उनके प्रति सदा अनुदार रही हो माँ। तुम जानती हो कि उनका जीवन परिस्थितियों की कैसी विडंबना में बीता है। मातुल के घर में उनकी क्या दशा रही? उस साधनहीन और अभावग्रस्त जीवन में विवाह की कल्पना ही क्योंकर की जा सकती है।" विलोम जब-जब कालिदास पर व्यंग्य प्रहार करता है या अम्बिका से बातें करते हुए उस पर आक्षेप लगाता है वह विलोम पर बिगड़ उठती है। निक्षेप द्वारा इस ओर इंगित करे पर कि व्यवसायियों के मुख कालिदास के विषय में कुछ अपवाद (वारांगनाओं का सहचर्य) सुनने को मिले हैं तो कालिदास का पक्ष लेती हुई कह उठती है कि उन्नति करने वालों के विषय में लोगों को इस प्रकार के अपवाद फैलाने की आशा ही होती है। जब कालिदास उज्जयिनी से दो-तीन वर्ष पश्चात् ग्राम-प्रांतर में आने पर भी मल्लिका से साक्षात्कार करने नहीं आते और अम्बिका तथा विलोम उनके इस आचरण की कटु शब्दों में निंदा करते हैं, तो मल्लिका उत्तेजित हो उठती है। वह विलोम की बाँह पकड़ कर अपने घर से बलात् निकाल देने की चेष्टा करती है और उसके द्वारा ढीठतापूर्वक जब भी न जाने पर अपनी माँ से कातर स्वर में कहती है-"माँ इनसे कहो ये यहाँ से चले जायें। मैं नहीं चाहती कि इस समय यहाँ कोई अयाचित स्थिति उत्पन्न हो।" कालिदास द्वारा उससे बिना मिले ही लौट जाने पर उसके संयम का बाँध टूट जाता है अ**ब भी रोती हो? उसके लिए? उस व्यक्ति के लिए जिसने...?"** तो मल्लिका और भी अधिक सिसकती हुई कह उठती है- **"उनके संबंध में कुछ मत कहो माँ, कुछ मत कहो. .."** **स्वाभिमानी** - मल्लिका के हृदय में आत्म-सम्मान या स्वाभिमान की भावना भी पर्याप्त मात्रा में है। प्रियंगुमजरी उसके समक्ष यह प्रस्ताव रखती है कि तुम्हारे घर का परिसंस्कार करा दिया जाये, किन्तु वह उसके इस प्रस्ताव को विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर देती है, क्योंकि इससे उसके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचती है - "आप बहुत उदार हैं। परन्तु हमें ऐसे घर में रहने का ही अभ्यास है, इसलिए हमें असुविधा नहीं होती। विलोम से वह घृणा करती है और रंगमात्र भी अहसान नहीं चाहती। इसलिये जब वह उसकी माँ के लिए मधु दे जाने की बात करता है तो वह कह देती है - "हमें मधु की अवश्यकता नहीं है। हमारे घर में मधु पर्याप्त मात्रा में है। "कालिदास जब ग्राम-प्रांतर में आकर भी उससे मिलने नहीं आता तो उसका स्वाभिमान आहत हो उठता है और उसके मुख से ये शब्द फूट पड़ते हैं "आज वर्षों के अनंतर तुम लौटकर आये हो। सोचती थी कि तुम आयोगे तो उसी तरह मेघ घिरे होंगे, वैसा ही अन्धेरा-सा दिन होगा, वैसे ही एक बार मै वर्षा में भीगूंगी और तुमसे कहूँगी देखो मैंने तुम्हारी सब रचनाएँ पढ़ी हैं। ... परन्तु आज तुम आए हो तो वातावरण और है। और ... और नहीं सोच पाती कि तुम भी कहीं हो या ...। इसी प्रकार जब प्रियगुमंजरी उसके समक्ष यह प्रस्ताव रखती है कि वह अनुनासिक और अनुस्वार नामक राज्यधिकारियों में से किसी के साथ विवाह कर ले, तो उसके आत्माभिमान को बड़ी ठेस पहुँचती है और उससे कह देती है कि आप इस विषय में चर्चा न ही करें तो अच्छा है। हाँ, उसका यह स्वाभिमान अन्त तक स्थिर नहीं रह पाता उसे नियति के समक्ष घुटने टेकने पड़ जाते हैं। वह उसी विलोम की अंक-शयिनी बनने को विवश हो जाती है, जिससे वह तीव्र घृणा करती आयी है।

विनम्र-मल्लिका के चरित्र में विनम्रता का प्रर्याप्त पुट है और वह प्रस्तुत नाटक के प्राय: प्रत्येक पात्र के साथ शालीनता प्रदर्शित करती है। विलोम के प्रति उसका मन कटु घृणा से भरा रहता है, किन्तु उसकी कटूक्तियों का उत्तर देते हुए भी वह आर्य तथा अन्य आदरास्पद शब्दों का ही प्रयोग करती है उदाहरणार्थ उसके कुछ कथन दृष्टव्य हैं

टिप्पणी

(क) "आर्य विलोम, यह समय और स्थान निस्सन्देह इन बातों के लिए नहीं है। मैं आपको इस समय यहाँ देखने की आशा नहीं कर रही थी।"

(ख) "आर्य विलोम, आप अपनी सीमा से बाहर जाकर बातें कर रहे है। मैं बालिका नहीं हूँ, अपना शुभ-अशुभ समझती हूँ।"

(ग) "आर्य विलोम, मैं इस प्रकार की अनर्गलता को अक्षम समझती हूँ।"

निक्षेप तथा प्रियंगुमंजरी से हुए वार्तालापों से भी मल्लिका की शालीनता टपकती है। उसके प्रियंगुमंजरी से कही उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं "यह हमारा सौभाग्य होगा कि आप कुछ दिनों के लिए इस प्रदेश में रह जाएँ। यहाँ आपको असुविधा तो होगी, फिर भी...।' तथा ..."क्षमा चाहती हूँ। मैं अपने को ऐसे गौरव की अधिकारिणी नहीं समझती।"

करूण-हृदया - आलोच्य नाटक के आरंभिक दृश्य में ही हमें मल्लिका के करूणा-आप्लावित हृदय के दर्शन हो जाते हैं। कालिदास द्वारा उसके विषय में कहे गये वे शब्द पूर्णतया सार्थक हैं जिन्हें वे हरिणशावक को देखती है, वह अधीर हो पूछ बैठती है' यह आहत हरिणशावक? यहाँ ऐसा कौन व्यक्ति है जिसने इसे आहत किया? क्या दक्षिण की तरह यहाँ भी...?" उसके लिए दूध ले आती है और उसे गोद में लेकर प्रेम-भावना पर विजयी दृष्टिगत होता है। वह कालिदास-कालिदास पुकारती हुई ड्योढ़ी तक आ पहुँचती है, किन्तु अपनी गोद में पुत्री को देखकर ठिठक जाती है और उसे आवेशपूर्वक चूम-चूम कर यह भाव व्यक्त कर देती है कि प्रेमी के लिए मैं संतति की उपेक्षा नहीं कर सकती।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मल्लिका का चरित्रांकन कृतिकार ने बड़ी स हदयतापूर्वक किया है। उसमें उसके उदार चरित्र को इतना महिमामंडित कर दिया है कि कृति के नायक कवि-कुल गुरू कालिदास का चरित्र मलिन प्रतीत होने लगता है। मोहन राकेश ने 'लहरों के राजहंस' की भूमिका में मल्लिका के विषय में जो उद्‌गार व्यक्त किये है। वे पूर्णतया सार्थक हैं- "मल्लिका का चरित्र एक प्रेयसी और प्रेरणा का नहीं, भूमि में रोपित उस आस्था का भी है जो ऊपर से झुलसकर भी अपने मूल में विरोपित नहीं होती।' नाटक में मातुल द्वारा उसके विषय में प्रयुक्त किए गए ये विशेषण भी पूर्णतया उचित हैं कि "वह सारे प्रदेश में सबसे सुशील, ड्‌केसाब। भोली लड़की है। उसके प्रेमी श्रप्ठ यद्यपि उसका प्रेम भावना के साथ खिलवाड़ ही किया जाता है, किन्तु अंततः वह भी यह स्वीकार करते मिलता है कि मेरे समस्त कृतित्व की मूल प्रेरणा तुम्हीं रही हो। कुमार-संभव की तपस्विनी उमा, मेघदूत की विहार-विमर्दिता यक्षिणी तथा अभिज्ञान-शांकुतलम की शकन्तला तुम्ही हो। मल्लिका की अनूठी समर्पण-भावना, निश्चल प्रेम, अनुपम त्याग, धैर्य, विनम्रता, दयार्द्रता और स्वाभिमान की जितनी भी प्रशंसा की जाए वही कम है। अपने इस चारित्रिक औदात्य के कारण ही वह तब भी हमारी घृणा नहीं अपितु करूणा की ही पात्र बनती है, तब परिस्थितियों की मार के समक्ष घुटने टेककर वह विलोम की अवैध संतति की जननी बन जाती जाती है। उसका चरित्र पुकार-पुकार कर इस तथ्य की उद्‌घोषणा कर रहा है कि नारी का जीवन कितना दयनीय हाते हुए भी किस प्रकार अमित प्रेरणा का स्त्रोत होता है। त्यागमयी नारियाँ अपने प्रियजनों के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर देती हैं, फिर भी उन्हें प्राप्य गौरव नहीं मिल पाता।

कालिदास

कालिदास कि चरित्रांकन के विषय में मोहन राकेश पर यह दोषारोपण किया गया है कि उन्होंने कालिदास के चरित्र को गिरा दिया है और हम ही ऐसा भी अभिमत रखते हैं। नाटक के प्रथम अंक के उस प्रसंग के अतिरिक्त जिसमें वे एक आहत हरिणावशावक की रक्षा करते हुए दंतुल से शत्रुता

टिप्पणी

तक मोल ले लेते है और उसकी धमकियों की चिंता न करते हए हरिणशावक को लेकर चल देते है, तथा राज्याश्रय स्वीकार करना नहीं चाहते, अन्यथा नाटक के अन्य प्रसंगों में उनका चरित्र एक साधारण मानव से भी दुर्बल है। प्रश्न इस बात का नहीं है कि कालिदास का अपना व्यक्तिगत जीवन कैसा रहा होगा संभव है वे इसमे भी अधिक दुर्बल-प्रतित हो रहे हों किन्तु अपने प्रसिद्ध पूर्वजों का चरित्रांकन यदि हमें ऐसे रूप में न करें-जिससे उनके प्रति हमारी घृणा ही उद्‌बद्ध हो तो अच्छा है। कालिदास की अम्बिका ओर विलोम द्वारा जो निन्दा की जाती है और वह निन्दा भी ऐसी कि जो सारहीन नहीं प्रतीत होती। मल्लिका के पावन-प्रेम को सर्वथा भुलाकर जिस रूप में वे नरेश-दुहिता से विवाह करके वहीं के हो रहते है मल्लिका की सुधि तक नहीं लेते, उनका समय वारंगनाओं के साहचर्य में व्यतीत होने का अपवाद फैलाती है। ग्राम-प्रांतर में आकर भी वे मल्लिका से नहीं मिलते, तथा नाटक के अन्त में अपनी इस स्वार्थध मनोवृति को प्राप्त करने के पश्चात् कि मैं तो समझ रहा था कि तुम अर्थात् मल्लिका और ग्राम की सभी वस्तुएँ यथावत होंगी, वे निरीह, दयनीय मल्लिका को जिस तरह क्षण भर में ही त्याग कर भाग खड़े होते हैं- उनका यह आचरण किसी भावुक कवि के लिए तो शोभन हैं हि नहीं, किसी साधारण मनुष्य को भी शोभा नहीं देता। हाँ, कालिदास इस नाटक के नायक हैं और मल्लिका के अतिरिक्त अन्य पात्रों में सर्वप्रथम स्थान रखते हैं। मल्लिका के समान वे नाटक के सभी पात्रों में संसर्ग में नहीं तो नहीं आते, हाँ अधिकांश पात्रों संसर्ग में आते हैं। दंतुल से उनका हरिणशावक के विषय में विवाद होता है विलोम उनका प्रतिद्वद्धी है, मातुल उनका भमा है। इसी प्रकार प्रियंगमंजरी उनकी पत्नी है, तो नाटक की नायिका मल्लिका उनकी प्रेयसी है। अंबिका उनकी इस हेतू आचोलना करती रहती है कि उन्होंने उसकी पुत्री को गुमराह रखा है, तो रंगिणी और संगिनी उनकी जन्मभूमि का विशेष अध्ययन करने आती हैं। हाँ, प्रस्तुत नाटक को गुमराह कर रखा है, तो रागिणी और संगिनी उनकी जन्मभूमि का विशेष अध्ययन करने आती हैं। हाँ, प्रस्तुत नाटक की घटनाओं की योजना में वे द्वितीय स्थान के ही अधिकारी हैं, प्रथम स्थान मल्लिका का ही है। पात्रों में के चरित्र के विविध पक्षों को निम्नांकित शीषकों में विभक्त किया जा सकता है

(क) पशुओं के प्रति दयालु - प्रस्तुत नाटक के प्रथम अंक की आरंभिक घटना से ही पात्रों में के चरित्र के इस पक्ष पर प्रकाश पड़ जाता है। दंतुल द्वारा आहत हरिणशावक दौड़कर उसकी गोद में आ जाा ह जिसे देख कर वे ऐसा दुखानुभव करते हैं मानों उन्हीं के शरीर में बाण लगा हो। वे गोद में उठा कर मल्लिका के घर की ओर चल देता है, अपनी सहृदयमा का परिचय देते हुए कहता है। "हम जिएँये हरिणशावक! जिएंगें न! एक बाण प्राण ले सकता है तो उँगलियों का कोमल स्पर्श दे भी सकता है। हमें नये प्राण मिल जाएँगे। हम कोमल आस्तरण पर विश्राम करेंगे। हमारे अंगों पर घृत का लेप होगा। कल फिर हम वनस्थली में घूमेंगे। कोमल दुर्वा खायेंगे। खायेगे न?"

मल्लिका के घर पहुंचकर वे ऐसी बातें करता है मानो उस आहत हरिणशावक और स्वयं में कुछ अंतर ही न हो- "हम सोयेगे? हाँ, हम थोड़ी देर सो लेंगे तो हमारी पीड़ा दूर हो जाएगी। परन्तु उससे पहले पहमें थोड़ा दूध पी लेना हैं।... मल्लिका, थोड़ा दूध हो तो किसी भाजन में ले आओ।" वे मल्लिका से यह कामना भी व्यक्त करता है कि वह उसको आस्तरण पर सुला दे। जब दंतुल वहाँ आकर उस आहत हरिणशावक को माँगता है और कहता है कि यह मेरी संपत्ति है तब कालिदास उत्तर देता है "यह हरिणशावक इस पार्वत्य भूमि की संपत्ति है राज-पुरूष! और इसी पार्वत्य भूमि के निवासी हम इसके सजातीय हैं। तुम यह सोचकर भूल कर रहे हो कि हम इसे तुम्हारे हाथ सौंप देंगे।... मल्लिका, इसे अंदर ले जाकर तल्प पर या किसी आस्तरण पर ..." यह जानते हुए भी कि किसी राज-पुरूष से झगड़ा मोल लेना अच्छा

टिप्पणी

नहीं है वह हरिणशावक को लेकर चल देता है और दंतुल देखता ही जाता है। कालिदास के स्वभाव से परिचित मल्लिका उसके विषय में ठीक ही कहती है। "ठहरो राजपुरूष! हरिणशावक के लिए हठ मत करो। तुम्हारे लिए प्रश्न अधिकार का है, उनके लिए संवेदना का। कालिदास नि:शस्त्र होते हुए भी तुम्हारे शस्त्र की चिंता नहीं करेंगे।"

(ख) स्वाभिमानी - कालिदास के चरित्र में स्वाभिमान की भावना भी पर्याप्त मात्रा में है। वह समझता है कि राज्यश्रय में रहने वाले कवियों को नरेशगण थोड़ी-सी मुद्राएँ देकर अपनी क्रीत-दास बना लेते हैं जिससे उनकी काव्य-प्रतिभा का उचित विकास नहीं हो पाता और वे उन नरेशों की प्रशस्ति में रचनाएँ लिखने लगते हैं। यही कारण है कि कालिदास के मामा मातुल राजकीय सम्मान मिलने की बात सुनकर बड़े प्रसन्न होते हैं किन्तु कालिदास उसे ठुकराते हुए जगदम्बा के मंदिर में जा छुपते हैं। मातुल के शब्दों में "मैंने कहा कविवर, आचार्य आपको साथ उज्जयिनी ले जाने के लिए आए है। राज्य की ओर से आपका सम्मान होगा। (रूक जाता है) सुन कर रूकें। रूक कर जलते अंगारें की दुष्टि से मुझे देखा। मै राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ।' ऐसे कहा जैसे राजकीय मुद्राएँ आपके लिए विरह में घुली जाती हों। और चल दिये।... मेरे लिए धर्म संकट खड़ा हो गया है कि अनुनय करता हुआ आपके पीछे-पीछे जाऊँ या अभ्यागतों को देखू।" अंम्बिका उनके इस आचरण को ढोंग बताती हैं किन्तु निक्षेप स्पष्ट कर देता हैं कि वे ढोंग नहीं कर रहे अपितु उन्हें राजकीय सम्मान का वास्तव में ही मोह नहीं है।

(ग) दुर्बल हृदय प्रेमी- मल्लिका की तुलना में कालिदास एक दुर्बल हृदय प्रेमी सिद्धोता है। मल्लिका अपना तन-मन उन पर न्यौछावर कर देती है और उसे विवाह करने की आशा में किसी अन्य पुरूष से विवाह करने से इन्कार कर देती हैं जैसा कि निक्षेप कथन से ज्ञात होता है, कालिदास ने भी ग्राम-प्रांतर में रहते हुए यह इच्छा व्यक्त की थी कि मैं आजीवन विवाह (मल्लिका के अतिरिक्त किसी अन्य युवती से) नहीं करूँगा, किन्तु वी उज्जयिनी जाकर नरेशपुत्री प्रियगमंजरी से विवाह कर लेता हैं। जब उनके उज्जयिनी जाने का समय अम्बिका औ विलोम मल्लिका को इस बात के लिए भड़काते हैं कि उसका और कालिदास का विवाह हो जाना चाहिए, तो वह अपनी उदास भावन का परिचय देती हुई कह देती है कि वह अवसर पर जबकि उनके जीवन में महान परिवर्तन आने वाला है मैं अपने स्वार्थ का परिचय नहीं देना चाहती। इसके विपरीत जब विलोम कालिदास से मल्लिका के साथ विवाह करने के विषय में प्रश्न करता हैं तो कालिदास यह कह कर टाल जाता है कि तुम दूसरों के घर में अनाधिकार आने के समान उनके जीवन में भी अनाधिकार प्रवेश कर जाते हो। इसके साथ ही कालिदास ग्राम-प्रांतर को त्यागने से पूर्व मल्लिका के विषय में विशेष लगाव नहीं दिखाता। अपितु वे वहाँ न जाने का जो कारण बताता है उससे यह ध्वनि निकलती है कि उसकी दृष्टि में मल्लिका का मूल्य वहाँ के पशपालों और हरिणशावकों से अधिक नहीं हैं कालिदास -"मैं अनुभव करता है ग्राम-प्रांतर मेरी वास्तविक भूमि हैं। मैं कई सूत्रों से इस भूमि से जुड़ा हूँ। उन सूत्रों में तुम हो, यह आकाश और मेघ हैं, यहाँ की हरीतिमा है, हरिणों के बच्चे हैं, पशुपाल हैं।"

कालिदास को यह तथ्य भली प्रकार विदित है कि उन्हें उज्जयिनी जाने के लिए विवश करती हुई मल्लिका की मनोदशा कैसी हो उठी हैं और वे उससे कहते भी हैं मैं चाहता हूँ कि इस समय तुम अपनी आँखें देख सकती' किन्तु वे राजधानी में पहुँच कर मल्लिका को सर्वथा भुला देता है।

टिप्पणी

वह नरेश पुत्री से विवाह कर लेता है और जौर कि लोकापवाद था। वे वीरंगनाओं के साहचर्य में जीवन व्यतीत करने लगता है। मल्लिका के हृदय को बड़ा आघात पहुँचता है जब वह ग्राम-प्रांतर में आकर भी मल्लिका से नहीं मिलता। इस विषय में नाटक के तीसरे अंक में वह जो तर्क प्रस्तुत है वे बड़े लचर हैं। समझ में नहीं आता कि ऐसी वह कौन-सी विश्वविजय की यात्रा पर निकल रहे थे जिसमें व्याघात पड़ जाता, यदि वे मल्लिका से मिलकर जाता? उसका यह कथन कितना खोखला है मैं तब तुमसे मिलने के लिए नहीं आया क्योंकि तुम्हारी आँखें मेरे अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी। मैं उनसे बचना चाहता था। उसका कुछ भी परिणाम हो सकता था। मैं जानता था तुम पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, दूसरे तुमसे क्या कहेंगे। फिर भी इस सम्बन्ध में निश्चित था कि तुम्हारे....भाव हो हो जाएगा। और मैं यह आशा लिए हुए चला गया कि एक कल ऐसा आएगा तब मे। तुमसें यह सब सह सकूँगा।

कालिदास के चरित्र में यह विचित्र असंगति परिलक्षित होती है। कि वह अपनी प्रेमिका मल्लिका के जीवन को पुष्प की पंखुड़ियों की भाँति मसल कर नष्ट-भ्रष्ट कर देता है उस पितृ एम् मातृहीना, दीन-हीना नवयौवना की ओर रंचमात्र भी ध्यान नहीं देता, जबकि दावा यह करता हैं कि यह उनके जीवन का मूल प्रेरणास्त्रोत रही है। अंबिका द्वारा उसके विषय में कहे गये यह शब्द उचित ही प्रतीत होते हैं "मैं ऐसे व्यक्ति को अच्छी तर से समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही संबंध है कि तुम एक उपादान हो, जिसके आश्रय से वह अपने प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु तुम क्या सजीव व्यक्ति नहीं हो?" प्रस्तुत नाटक में वास्तव में ही कालिदास को मल्लिका के प्रति अपने उत्तदायित्व का निर्वाह नहीं कर पाते, हाँ, मल्लिका के समान कुछ क्षण तक पाठक-प्रेक्षक भी कालिदास के इस कथन से प्रभावित होते हैं "लोग सोचते है, मैने उस जीवन और वातावरण में रह कर बहुत कुछ लिखा हैं। परन्तु मैं जानता हूँ मैंने वहाँ रह कर कुछ नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है वह यहाँ के जीवन का संचय था। कुमारसंभव की भूमिका यह हिमालय और तपस्विनी उमा तुम हो। मेघूदत में यक्ष की पीड़ा मेंरी पीड़ा है और विरह-विमार्दिता यक्षिणी तुम हो, यद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें उज्जयिनी में देखने की पीड़ा मेरी पीड़ा है और विरह-विमर्दिता यक्षिणी तुम हो, यद्यपि मैने स्वयं होने और तुम्हें उज्जयिनी में देखने की कल्पना की। अभिजान शाकुंतलम में शकुतंम में रूप में तुम्हीं मेरे सामने थीं। मैंने जब-जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर-फिर दोहराया। और जब उससे हट कर लिखना चाहा तो रचना प्राणवान नहीं हुई। रघुवंश में आल का विलाप भी मेरी ही वेदना की अभिव्यक्ति थी और...।' तदनंदर जब हम उसे यह इच्छा व्यक्त करते देखते हैं कि वह मल्लिका के साथ रहते हुए जीवन को पुनः अथ से आरम्भ करना चाहता है तो यह सोचकर प्रमुदित हो उठते हैं सुबह का भूला शाम को घर आ पहुँचा है। किन्तु हमारी इस प्रसन्नता और मल्लिका का आशा-आकाँक्षाओं पर शीघ्र ही तुषारापात हो जाता है जब कालिदास यह ज्ञात होने पर कि मल्लिका विलोम का अवैध पुत्री की माँ बन चुकी हैं, मल्लिका को बिलखती छोड़ जाता है। और उसे विवशतापूर्वक विलोम के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ता है। कालिदास के प्रेम में त्यास और क्षमा का कोई स्थान ही नहीं है, वे तो मात्र ग्रहण करना ही जानता है, इसलिए वह मल्लिका के इस परिस्थितिजन्य चारित्रिक-स्खलन को क्षमा नहीं कर पाता। कालिदास का यह आचरण न तो एक सच्चे प्रेमी के अनुकूल है और न एक महान कवि के ही, बेचारी मल्लिका उसकी अहं तुष्टि का क्षुद्र माध्यम मात्र बनकर रह जाती है।

(घ) वाक्पटु - कालिदास कवि-कलाकार हैं और कवि भी उत्तम कोटि का, अत: उसका वाकपटु होना स्वाभाविक ही है। वे अपने आचरण से तो नहीं, हाँ अपनी बातों से अपने विपक्षियों और मित्रों को प्रभावित करने में पटु हैं। वह मल्लिका के घर में घुस आने वाले दंतुल को डपटते हुए पूछता है - "जहाँ तक मैं जानता हूँ हम लोग परिचित नहीं हैं। तुम्हारा एक दूसरे के अपरिचित घर में आने का साहस कैसे हुआ?" इसी प्रकार वह विलोम द्वारा यह प्रश्न करने पर कि तुम राजधानी अकेले ही जाओगे अथवा मल्लिका के साथ विवाह करके इसे भी अपने साथ ले जाओगे? ऐसा उत्तर देते हैं जिसमें विलोम को बगले झांकनी पड़ती है "मैं तुम्हारी प्रशंसा करने के लिए अवश्य बाध्य हूँ। तुम दूसरों के घर में ही नहीं, उनके जीवन में भी अनाधिकार प्रवेश कर जाते हो।" इसी प्रकार वह मल्लिका से भी चिकनी-चुपड़ी बातें ही करते रहते हैं। अपने आचरण द्वारा ऐसा कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं करता जिससे यह स्पष्ट हो सके कि उसे वास्तव में मल्लिका से कितना प्रेम हैं।

(ड.) स्वार्थी एवं आत्मकेन्द्रित- प्रस्तुत नाटक में कालिदास का जैसा चरित्रांकन किया गया है उससे वे एक आत्म-केन्द्रित एवं स्वार्थी व्यक्ति सिद्ध होता है। क्योंकि जब अंबिका की वास्तव में ही मृत्यु हो जाती है तब भी कालिदास वह मल्लिका के भरण-पोषण की चिंता या उसको पत्नी के रूप में अपना लेने की चेष्टा करता हुआ नहीं दिखाई देता। वह काश्मीर के शासक होने का जो भार स्वीकार करते है उसके मूल में भी उसकी यह स्वार्थ-भावना है कि वह अपने विरोधियों से बदला लेना चाहता है। उसी के शब्दों में "तुम्हें बहुत आश्चर्य हुआ था कि मैं काश्मीर का शासन संभालने जा रहा हूँ। तुम्हें यह बहुत अस्वाभाविक लगा होगा। परंतु मुझे कुछ भी अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। अभावपूर्ण जीवन की वह एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। संभवत: उसमें कही उन सबसे प्रतिशोध लेने की भावना भी थी जिन्होंने जब-तब मेरी भर्त्सना की थी, मेरा परिहास उड़ाया था।"

विलोम से जब कालिदास मल्लिका के घर से चले जाने के लिए कहता है तो उसके द्वारा द्वारा कालिदास आलोचना करना पूर्णतया सार्थक होने के साथ-साथ उसके स्वार्थी एवं आत्म-केंद्रित स्वरूप पर भी प्रकाश डालता है "क्योंकि तुम यहाँ लौट आए हो?... क्योंकि वर्षों से छोड़ी हुई भूमि आज फिर तुम्हें अपनी प्रतीत होने लगी है? क्योंकि तुम्हारे अधिकर शश्वत हैं? (हँसता है) जैसे तुम से बाहर जीवन की गति ही नहीं हैं। तुम्ही तुम हो और कोई नहीं हैं। समय निर्दय नहीं रहा। उसने औरों को अवसर दिया हैं। निमार्ण किया हैं।... तुम्हें उसके निर्माण से वितृष्णा होती है, क्योंकि तुम जहाँ अपने को देखना चाहते हो नहीं देख पाते ।"

(च) असफल राजनेता - भावुक कवि और साहित्यकार राजनीति में सफल नहीं हो पाते क्योंकि उसमें छल छद्म और राजनैतिक जीवन के विषय में व्यक्त किये गये ये उद्‌गार उचित ही हैं "किसी और के लिए वहीं वातावरण और जीवन स्वाभाविक हो सकता था। मेरे लिए नहीं था। एक राज्यधिकारी का कार्यक्षेत्र में कार्यक्षेत्र से भिन्न था। मुझे बार-बार अनुभव होता कि मैंने प्रभुता और सुविधा के मोह से उस क्षेत्र में अनाधिकार प्रवेश किया है और जिस विशाल क्षेत्र में मुझे रहना चाहिए था उससे हट पाया हूँ।" प्रियमंजरी के अग्रलिखित कथन से इसी तथ्य का प्रकाशन होता हैं कि कालिदास स्वयं का राजनैतिक जीवन के अनुरूप ढाल नहीं पाता "वे भी जब-तक यहाँ के जीवन की चर्चा करते हुए आत्मादी-मृत हो जाते हैं। इसलिए राजनैतिक कार्यो से कई बार उनका मन उचटने लगता है।... ऐसे अवसरों पर उनके मन को संतुलित रखने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ता है।" संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत

टिप्पणी

नाटक में कालिदास का जिस रूप में चरित्रांकन किया गया है, उसमें से हमें उसके चरित्र के मात्र दो ही गुण ही प्रभावित कर पाते हैं। उसका पशु पक्षियों के प्रति करूणा प्लावित हदय रखना और अपने कवि-व्यक्तित्व की रक्षा करने के लिए राजकी सम्मान को ठुकराने को प्रस्तुत हो जाना। वह स्वार्थी हैं, आत्म-केन्द्रित है -अपने प्रेयसी के साथ विश्वासघात करता है, तथा राजकीय सम्मान प्राप्त करके अपना चोला गिरगिट की तरह बदल लेता है। ऐश्वर्य-मद में वे अपनी प्रेयसी मल्लिका को तो भूल ही जाता है, उसे अपने मामा मातुल की भी कोई चिंता नहीं है। मातल के भवन के पननिर्माण और उसको काश्मीर ले जाने में उसका नहीं अपितु प्रियगुमंजरी का हाथ है। विटषी प्रियगमंजरी ही मल्लिका के ग्राम-प्रांतर के वातावरण को काशमीर ले जाने की इच्छा से जहाँ वहाँ के हरिणशावक आदि उपादान साथ ले जाती है, वहाँ मातुल को भी साथ ले जाती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कविकुल-गुरू की उपाधि से समाहित होने वाले तथा विश्व-साहित्य में भारतीय साहित्य को सम्मान स्थान दिलाने वाले कालिदास का चरित्रांकन अपेक्षित रूप में नहीं हुआ हैं। इस संदर्भ में मोहन राकेश द्वारा श्लहरों के राजहंस' में व्यक्त किया यह अभिमत भी संदर्भगत त्रुटि का मार्जन नहीं कर पाता "मुझे आश्चर्य हआ कि आलोचक संस्कृत के पंडित होकर भी कालिदास को व्रती, तपस्वी, महात्मा मानते हैं। अभिज्ञान शाकुंतलत. कुमार-संभव तथा मेघदत पढ़कर यदि कालिदास का ऐसा ही चित्र उनके मन में बनता है, तो क्या कहा जा सकता है, रूढ़ि-ग्रस्त संस्कार ही जहाँ व्यक्ति का विवेक बन जायें, वहाँ और आशा करना भी व्यर्थ है।"

विलोम

विलोम को कुछ आलोचकों ने इस नाटक का खलनायक बताया है जो उचित नही हैं वह अधम पात्र तो अवश्य हैं क्योंकि कृति की नायिका की विवशता का लाभ उठाकर उसे अपनी अंकशायिनी बनने को विवश कर देता है किन्तु खलनायक का मुख्य लक्षण यह है कि वह नायक और नायिका के मिलन में पग-पग पर बाधा पहुँचाया करता है, जबकि नाटक के आरंभिक भाग में विलोम उनके मिलन में बाधक बनने के स्थान पर उनका विवाह कराने का समुत्सुक मिलता हैं इसलिए विलोम को इस नाटक का खलनायक न मान कर अधम पात्र ही मानना चाहिए। विलोम के चरित्र में अवगुणों की प्रधानता है, जिनमें से प्रथम यह है कि उस मल्लिका से प्रेम करता है, जो उसे घृणा करती है और इसके कारण ही उसके चरित्र में अन्य अवगुणों का समावेश हो जाता है। मल्लिका के प्रेम को जीतने के लिए वह उसकी माँ की चापलूसी करता रहता है, तथा कालिदास की निंदा। बेचारी अंबिका भी वही करना चाहती है जो उसकी पुत्री की इच्छा है, और मल्लिका की इच्छाएँ कालिदास की इच्छाओं से प्रभावित हैं, और चूंकि कालिदास को स्पष्टवक्ता विलोम का मल्लिका के यहाँ आना नहीं सुहाता, अतः अंबिका भी विलोम के आने पर प्रसन्नता व्यक्त नहीं करती। विलोम के नाटक में प्रथम बार पदार्पण के समय ही उसके और अंबिका के मध्य जो वार्तालाप होता है। उससे यह तथ्य भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है।

"**अंबिका :** विलोम! ... तुम यहाँ क्यों आये हों?

विलोम बाई और दीपक की ओर चला जाता है

विलोम : दीपक जला दूँ!

(उल्मुक से छूकर दोनों दीपक जला देता है और कहता है)

विलोम का आना ऐसे आश्चर्य का विषय है।...

अंबिका : तुम चले जाओ विलोम! तुम जानते हो कि तुम्हारा यहाँ आना...

विलोम : मल्लिका को पसन्द नहीं हैं।

(दीपक जलाकर अंबिका की ओर घूमता है।)

मैं जानता हूँ अंबिका! मल्लिका बहुत भोली है। वह लोक और जीवन में संबध में कुछ नहीं जानती। ... वह नहीं चाहती कि मैं इस घर में आऊँ क्योंकि कालिदास नहीं चाहता।...और कालिदास क्यों नहीं चाहता? क्योंकि मेरा आँखों में उसे अपने हृदय का सत्य झाँकता दिखाई देता है। उसे उलझन होती है। ... किन्तु तुम तो जानती हा अंबिका मेरा एकमात्र दोष यह है कि मैं जो अनुभव करता हूँ, स्पष्ट कह देता हूँ।

जैसा कि कहा जा चुका है वह अंबिका का कृपा पाने की चेष्टा करता रहता है। इस उद्देश्य से वह अंबिका की दयनीय दशा के प्रति संवेदना व्यक्त करता रहता है "देख रहा हूँ इस समय तुम बहुत आर्त नहीं रहीं अंबिका? तुम्हारा तो जीवन ही पीड़ा का इतिहास हैं? पहले से कहीं दुबली हो गई हो!... सुना है कालिदास उज्जयिनी जा रहा है।" अंबिका उसके कथन की किंचित उपेक्षा करती है तो वह मल्लिका और कालिदास का विवाह हो ही जाना चाहिए, इस तथ्य पर बल देता हुआ तथा अंबिका की दयनीय दशा के प्रति संवेदना व्यक्त करता हआ कहता है - कालिदास उज्जयिनी चला जाएगा और मल्लिका जिसका नाम उसके कारण सारे प्रांत में अपवाद का विषय बना है, पीछे यहाँ सब पड़ी रहेंगी? क्यों अंबिका?.... क्यों तुमने इतने वर्ष यह सब पीड़ा क्या इसी दिन के लिए सही है? दूर से देखने वाला ही अनुभव कर सकता है कि इन वर्षों में तुम्हारे साथ क्या बीता है। समय तुम्हारे मन, शरीर और आत्मा की इकाई को तोड़कर रख दिया है। तुमने तिल-तिल कर अपने को गलाया है कि मल्लिका को किसी अभाव का अनुभव न हो और आज जबकि उसके जीवन-भर अभाव का प्रश्न उसके सामने है, तुम कुछ सोचना नहीं चाहती?

विलोम ढीठ है। अंबिका उससे वहाँ से चले जाने का अनुरोध करती हैं किन्तु वह धृष्टतापूर्वक कह देता है कि इस समय मैं अपना तुम्हारे पास होना बहुत आवश्यक समझता हूँ? कालिदास और मल्लिका के आने पर कालिदास से प्रश्न करता है कि क्या कल प्रातःकाल यहाँ से जा रहे हों? और इस ग्राम-प्रांतर का तो नहीं भूल जाओंगे? वह उन बातों का भी वर्णन करने लगता है जिसके कारण यह संभावना हैं कि वह ग्राम-प्रांतर को भूल जायेगा। "सुना हैं, वहाँ जाकर व्यक्ति बहुत व्यस्त हो जाता है। वहाँ के जीवन में कई तरह के आकर्षण हैं ... रंगशालाएँ, मदिरालय और अन्याय विलास भूमियाँ।

कालिदास के प्रति विश्वासमयी मल्लिका विलोम के इन कथनों को सुनरूष्ट हो उठती है और विनम्र स्वर में उससे वहाँ से चले जाने का आग्रह करती हैं, किन्तु वह टस-से-मस तक नहीं होता। इस सन्दर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय हैं कि यद्यपि विलोम अपनी ढीठता के लिए निन्दा का पात्र हैं। किंतु इसमें सन्देह नहीं कि उसे मानव-मनोविज्ञान की अच्छी जानकारी है। कुछ ही समय पश्चात् हमें उसका कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध होते मिलता है कालिदास वास्तव में ही राजधानी पहुँचकर वहाँ की रंगीनियों में डूब जाते हैं और मल्लिका तथा ग्राम-प्रांतर को भूल जाते हैं। विलोम ने इस तथ्य पर बल दिया था कि कालिदास के उज्जयिनी जाने से पूर्व उनसे मल्लिका का विवाह हो जाना चाहिए। यदि ऐसा हो जाता तो संभव है उनका नरेश-पुत्री के साथ विवाह नहीं होता और वे काशमीर के शासक बनने का सौभाग्य भी प्राप्त न कर पाते, किंतु वैसा होने की दशा में अंबिका और मल्लिका के जीवन नष्ट नहीं होते।

विलोम कालिदास का प्रतिद्वंद्धी हैं। उसके हृदय में यह ईर्ष्या तो है ही कि वह मल्लिका जिसको वह प्रेम करता है, कालिदास के कारण उसकी उपेक्षा करती है, उसे कालिदास की कवि के रूप में सफलता

टिप्पणी

के विषय में भी ईर्ष्या है। हाँ, वह अपने ईर्ष्या-भाव को व्यक्त नहीं होते देता उसे अपने परिहार में छिपा लेने की कला में कुशल है। वह कालिदास से कह उठता है "विलोम क्या है? एक असफल कालिदास। ...और कालिदास? एक सफल विलोम। हम कहीं एक-दूसरे के बहुत निकट पड़ते है।" इसी प्रकार वह यह नहीं कहता कि उस कालिदास के राजकवि हो जाने का दु:ख है, अपितु इस तथ्य को इस रूप में बदल देता है कि एक मित्र से बिछुड़ने का किसे दु:ख नहीं होता। कालिदास उसकी फूटी आँखों भी नहीं सुहाता। द्वितीय अंक में वह अंबिका और मल्लिका के समीप आकर कालिदास का इस हेतु उपहास करता है कि वह ग्राम-प्रांतर में आकर भी उनके घर नहीं आया, तथा उसकी आज्ञा से वहाँ के कंकड़-पत्थर और हरिणशावक आदि उपादान काश्मीर ले जाए जा रहें हैं। तृतीय अंक में जब वह कीचड़ से लथपथ और सुरापान के कारण झूमता हुआ मल्लिका के यहाँ आता है और कालिदास को मल्लिका से बाते करते देखता है तो उसके शब्द उस पर विष में बझे बाणों जैसा प्रहार करते हैं। वह मल्लिका से कहता है - तुमने अभी तक कालिदास के आतिश आयोजन नहीं किया? वर्षों के अनंतर एक अतिथि घर में आए और उसका अतिथ्य न हो? तुम जानती ही कालिदास को इस प्रदेश के हरिणशावकों से कितना मोह हैं? (फिर वह कालिदास की ओर मडता है। हरिणशावक इसमें भी हैं।... तुमने मल्लिका की बच्ची को अभी नहीं देखा? उसकी आँखे किसी हरिणशावर से कम संदर नहीं है ... मैं इसलिए कह रहा थ कि कालिदास ही देखकर बता सकें कि उसकी बात कही तक सच है, कि क्या सचमुच बच्ची की आकृति विलोम से मिलती है या ...।" जब कालिदास उससे वहाँ से चले जाने को कहता है, तो विलोम उसकी भर्त्सना और उपहास करता हुआ कह उठता हैं "इस घर से ग्राम-प्रांतर से ही? सुना था शासन बहुत बली होता है? प्रभुता में बहुत सामर्थ्य होती है।" कालिदास के यह कहने पर कि मैं कह रहा हूँ, इस समय यहाँ से चले जाओ, वह कह उठता है - "क्योंकि तुम यहाँ लौट आ हों? क्योंकि वर्षों से छोड़ी हुई भूमि तुम्हें अपनी प्रतीत होने लगी है? क्योंकि तुम्हारे अधिकार शाश्वत है। (हँसता हैं) जैसे तुमसे बाहर जीवन की गति ही नहीं हैक। तुम्ही तुम हो और कोई नहीं है। परन्तु समय निर्टय नहीं है। उसने औरों को भी सत्ता दी है, अधिकार दिए हैं। वह धूप औ नैवेद्य लिए घर की दहेली पर रूका नही रहा। उसने औरों को अवसर दिया है। निर्माण किया है। अतत: वह कालिदास और मल्लिका दोनों पर ही यह व्यंग्य-बाण छोड़ता हुआ चला जाता है "तुम चाहते हो इस समय में यहाँ से चला जाऊँ, मैं चला जाता इसलिए नहीं कि तुम आदेश देते हो परन्तु इसलिए कि तुम आज यहाँ अतिथि हो, और अतिथि की इच्छा का मान होना चाहिए।" वह मल्लिका से कहता है "देखना, मल्लिका, अतिथि में कोई न्यूनता न हों। जो अतिथि वर्षों में एक बार आया है वह आगे जाने कभी आएगा या नहीं।" और उसकी पहली भविष्यवाणियों के समान उसका इस बार का कथन भी सत्य सिद्ध होता है-कालिदास इस बार वास्तव में मल्लिका को ऐसा त्याग कर जाता है कि उसके पुन: लौटने की संभावना नहीं रहती।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विलोम में मानवोचित दुर्बलताएं तो अवश्य है- वह कालिदास से ईर्ष्या करता है, मल्लिका से उसकी इच्छा के विपरीत प्रेम करना चाहता है असहाय और निराश्रित मल्लिका को वह संरक्षण तो देता है किन्तु उसके सतीत्व के मूल्य पर, किन्तु इस तथ्य में संदेह नहीं है कि वह कल्पनाजीवी न होकर पदार्थ के ठोस धरातल पर जीने वाला पात्र है। मल्लिका का भी वह हितचितंक भी अधिक है। और इस तथ्य पर बल देता है। कि सरल भावुकतामयी नवयौवना का विवा कालिदास के साथ हो जाए। वह दूरद्रष्टा है और इस तथ्य में आशा रखता है कि समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता रहता। विलोम का चरित्रांकन कालिदास की अपेक्षा अधिक प्राणवान और सशक्त रूप में किया गया है।

टिप्पणी

अंबिका

अंबिका प्रस्तुत नाटक का ऐसा पात्र है जिसके प्रति पाठक-प्रेक्षकों की पूर्ण सहानुभूति रहती है। उसका मुख्य दुर्भाग्य यह है कि वह असमय ही विधवा हो जाती है तथा उसके पुत्र भी नहीं है जो बड़ा होकर उसके भरण-पोषण का उत्तरदायित्व संभाल लेता। यह भी उसका दुर्भाग्य ही है कि उसकी इकलौती पुत्री मल्लिका उसके लाड़ प्यार के कारण कुछ ढीठ हो गयी है, तथा नवयौवनाओं के समान कल्पना के संसार में खोई रहती है। अनुभवी अंबिका इस तथ्य से भली प्रकार परिचित है कि युवक कालिदास जैसे आत्मकेंद्रित कवि-पुगवा ङ्केको अपनी प्रेसियों के जीवन से खिलवाड़ करने में ही आनंदानुभव होता है। उन्हें भले-बुरे की विशेष नहीं होती। वे उनसे विवाह करने का झंझट मोल लेना नहीं वाहा करते और इन बातों को वह स्वपुत्री का समझाना भी चाहती है। किन्तु वह स्व माता की उचित सीखों की ओर कान नहीं देती। परिणाम वही निकलता है जिसकी उसे आशा थी, वह स्वपुत्री के दु:खों से तिल-तिल क गलती हुई, असमय ही कालाकवित हो जाता।

नाटक के प्रथम अंक के आरंभ में ही हमें अंबिका स्व-पुत्री के वर्षा में भी घर से बाहर रहने के तथ्य का लेकर विक्षुबध दिखाई देती हैं अनुभवी अंबिका यह अनुमान कर लेती है कि वह उस कालिदास के साथ हैं। वर्षाविहार कर रही होगी जिसको लेकर होने वाले लोकोपवाद के कारण जीना दूभर हो रहा है। यही कारण है कि वर्षा में भीग कर लौटी मल्लिका के साथ वह बड़ी रूक्षता का व्यवहार करती है। उल्लसित मल्लिका उससे बार-बार बातें करने की चेष्टा करती है, किन्तु वह उसकी बातें का टालती रहती है। अधिक आग्रह करने वह वह कह देती है देखती नहीं हो मैं काम कर रही हूँ। हाँ, उसके हृदय में स्वपुत्री के प्रति अपार वात्सल्य भाव है वह उससे रूष्ट तो अवश्य है फिर भी यह सोचकर कि उसे ठंड न लग जाए, उसके लिए पहले से ही सूखे वस्त्र निकाल कर रख देती है। वह उससे यह भी कहती है कि मैंने दूध औटा दिया है उसमें शकरा मिलाकर पी लो। यह तथ्य भी उसके वात्सल्य-भाव का ही परिचायक है कि यद्यपि वह उसकी प्रशंसा करने वाले विलोम के प्रति मन से संतुष्ट और प्रसन्न ही रहती है, फिर भी उसको अपने यहाँ से जाने को कहती है, क्योंकि उसकी पत्री को विलोम का आगमन अच्छा नहीं लगता।

प्रत्येक भारतीय जननी के समान अंबिका भी इस तथ्य के प्रति बड़ी व्यग्र है कि उसकी पुत्री के हाथ पीले हो जाएँ। वह अग्निमित्र को इस हेतु वर-पक्ष वालों के यहाँ भेजती भी हैं किन्तु यह सूचना पाकर व्यथित हो उठती है कि मेरी पुत्री ओर कालिदास के संबंधों का अपवाद वहाँ पहुँच गया है, जिससे उन्होंने विवाह करने से इन्कार कर दिया है। मल्लिका से विवाह के विषय में यह सुनकर "किन्तु मैंने तुमसे कहा था, अग्निमित्र को कहीं भेजने की आवश्यकता नहीं है। तुम जानती हो मैं विवाह नहीं करना चाहती फिर उसके लिए प्रयत्न क्यों करती हों? तूम समझती हो मैं निरर्थक प्रलाप करती हूँ" उसके अंतर्मन को बड़ी ठेस पहुँचती है और वो व्यथित होकर कर उठमी है कि तुम्हारी बात ही सार्थक होती जा रही है। द:ख भेरे स्वर में उसके मुख से यह उद्‌गार भी निकल पड़ते हैं "तुम न कहो, मै तो कह रही हूँ। आज तुम्हारा जीवन तुम्हारी संपत्ति है। मेरा तुम पर कोई अधिकार नहीं है। जब उसके इस कथन के प्रत्युत्तर में कि मैं जानती हूँ कि तुम पर आज अपना भी अधिकार नहीं है।" जब उसके इस कथन के प्रत्युत्तर में कि मैं जानती हैं कि तुम पर आज अपना भी अधिकार नहीं है किन्तु इतना बड़ा अपवाद मुझसे नहीं सहा जाता" मल्लिका यह कहती है कि अपवाद के विषय में जानते हुए भी मैं स्वयं को दोषी नहीं मानती क्योंकि मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है"और मुझे ऐसी भावना से विहुष्णा होती है ... तूम जिसे भावना कहती हो वह केवल छलनी और आत्मप्रवचना हैं। भावना में भावना का वरण होता है? उसमे जीवन की आवश्यताएँ किस तरह पूरी होती हैं? उसमे भावना में भावना का वरण है?"

टिप्पणी

अंबिका मानव-मनोविज्ञान की भी अच्छी पारखी है। वह कालिदास की आत्मकेन्द्रित मनोवृत्ति को जिस रूप में भर्त्सना करती है वह अक्षरश: सत्य सिद्ध होती हूँ वह उसके विषय में उचित ही कहमी है "मै ऐसे व्यक्ति को अच्छी तरह समझती हूँ। तुम्हारे साथ उसका इतना ही संबंध हैं कि तुम एक उपदान हो, जिसके आश्रय से वह अपने प्रेम कर सकता है, अपने पर गर्व कर सकता है। परन्तु तुम क्या सजीव व्यक्ति नहीं हो! तुम्हारे प्रति उसका या तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं हैं? कल जब तम्हारी माँ का शरीर नहीं रहेगा और घर में उस समय के भोजन की भी व्यवस्था नहीं होगी, तब जो प्रश्न तुम्हारे सामने उपस्थित होगा उसका तुम क्या उत्तर दोगी? तुम्होरी भावना उस प्रश्न का समाधान कर देगी?" अंबिका का मल्लिका से कहा गया यह कथन भी कितना सटीक और मार्मिक है कि "किसी संबंध से बचने के लिए अभाव जितना बड़ा कारण होता है, अभाव की पूर्ति उससे बड़ा कारण बन जाती है जिसका अभिप्राय यह है कि कालिदास साधन-संपन्न हो जाने पर भी तुझ से विवाह नहीं करेगा और हम देखते हैं कि उसकी यह उक्ति पूर्णतया सत्स सिद्ध होती है। आलोच्य नाटक के प्रथम अंक में ही अंबिका के ये उद्‌गार सुनकर कि इस घर के तल्प और आस्तरण हरिणशावकों के लिए नहीं हैं, यह अनुमान लगाना अनुचित होगा कि उसके हृदय में दया का अभाव है। कारण यह है कि उसे कालिदास को अपने घर अधिक आना-जाना पंसद नहीं हैं और इसलिए वह उस आहत हरिणशावक को अपने गृह में आश्रय देकर यह बखेड़ा मोल नहीं लेना चाहती कि उसको देखने के बहाने से कालिदास ब उसके घर आए।

अंबिका के लोकानुभव का एक अन्य प्रमाण यह भी है कि वह कालिदास द्वारा राजकीय सम्मान को स्वीकार करने में अरूचि प्रदर्शित करने को ढो बताती है। वह मातुल से कह देती है कि कालिदास उज्जयिनी अवश्य ही जायेगा और यह उसी लोकनीति-विचार का ही प्रमाण है कि वह उस सम्मान के प्रति अरनि दिखाकर अपना सम्मान बढ़ाना चाहता है उसके शब्दों में - "सम्मान प्राप्त होना चाहिए कि तुम्हारा भगिनेय लोकनीति में भी निष्णात है।" वह निक्षेप से कहती है- "राज्य कवि का सम्मान करना चाहता है। कति सम्मान के प्रति उदासीन जगदंबा के मंदिर में साध ना-निरत हैं राज्य के प्रतिनिधि मंदिर में जाकर कवि की अभ्यर्थना करते हैं। कवि धीरे-धीरे आँखें खोलता है। इतना बड़ा नाटक खेलना विलक्षणता नहीं है?"

कालिदास द्वारा मल्लिका के साथ विश्वासघात करके राज-पुत्री प्रियंगु-मंजरी से विवाह कर लेने से दु:खी होकर अंबिका दिन-प्रतिदिन घुलती जाती है। द्वितीय अंक में प्रियंगुमंजरी के आगमन पर उसके कथनों में बड़ी विषाक्त व्यंग्यमयता परिलखित होती है। जब राजकुमारी मल्लिका से यह प्रश्न करती है कि क्या तुम्हारे मन में अपना घर-परिवार बसान की कल्पना नहीं है? तो मल्लिका तो चुप रहती है किन्तु अंबिका आगे आकर उत्तर देती है "इसके मन में यह कल्पना नहीं है क्योंकि यह भावना के स्तर पर जीती है। इसके जीवन में...।" (साँस उखड़ आने के कारण वह अपना कथन पूरा नहीं कर पाती)। मल्लिका द्वारा यह चेष्टा किए जाने पर कि वह प्रियंगुमंजरी से कोई अशोभन बात न कह दे, मेरे और कालिदास के विवाह की बात न उठा दे. वह उसकी भर्त्सना करती हुई कह उठती है "मै किसी अभ्यागत से बात भी नहीं कर सकती? दिन, मास, वर्ष घुटते हुए बीत जाते हैं। मेरे लिए यह घर अब घर नहीं, एक काल-गहर हैं, जिसमें मैं हर समय बंद रहती हूँ और तुम चाहती हो कि मैं किसी से बात भी न करूं?' वह प्रियंगुमंजरी के समक्ष इस रहस्य का उद्‌घाटन करने की दो बार चेष्टा करती है कि हमारी इस दुरावस्था का एक कारण तुम्हारे प्रति प्राणेश्वर कालिदास भी हैं, किंतु अकसर खाँसी उठ आने के कारण वह अपनी पूरी बात नहीं कर पाती और प्रसंग बदल जाता है। प्रथम बार वह कहती है- "यह घर सदा से इस अवस्था में नहीं है राजबधू! जब मेरे हाथ चलते थे में प्रतिदिन इसे लीपती-बुहारती थी। यहाँ की हर वस्तु इस प्रकार गिरी-टूटी नहीं थीं। परन्तु आजकल तो हम दोनों

टिप्पणी

माँ-बेटी भी यहाँ टूटी-सी पड़ी रहती है। यह इसलिए कि...।" दूसरी बार यह कहती है "परन्तु राजवधू, मैं तुमसे कुछ कहना चाहती थी। तुम्हें बताना चाहती थी कि...।

हम लोग .... लोग ...।"

खाँसी उखड़ आने में उसके शब्द डूब जाते हैं और प्रियंगुमंजरी यह कहती हुई चली जाती है "मैं आपके कष्ट को समझ रही हूँ। जो भी सहायता मुझसे बन पड़ेगी अवश्य करूँगी। इस समय अनुचर प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसलिए..." ।

अंबिका कालिदास की ओर से निराश तो अवश्य थी किन्तु इतनी हताश नहीं थी कि कालिदास यहाँ आकर भी हमारी उपेक्षा करके चला जायेगा। जब वह इस अप्रत्याशित को ही घटित होते देखती है तो मल्लिका पर व्यंगबाणों की वर्षा करते हुए अपनी अंतरात्मा की व्यथा को हल्का करने लगती है "लो मेघदूत की पक्तिया पढ़ो। इन्हीं में न कहती थी कि उसके अंतर की कोमलता साकार हो उठी हैं? आज उस कोमलता का और भी साकार रूप देख लिया? आज वह तुम्हें तुम्हारी भावना का मूल्य देना चाहता है। क्यों नहीं स्वीकार कर लेती? घर की भित्तियों का परिसंस्कार हो जाएगा और तुम उनके यहाँ परिचारिका बनकर रह सकोगी। इससे बड़ा और क्या सौभाग्य चाहिए? ... आज वह प्रभु उसके पास सम्पदा है उस प्रभुता और सम्पदा का परिचय देने के लिए इससे अच्छा और क्या उपाय हो सकता था?' वह यह इच्छा व्यक्त करती है कि काश! मैं छाया-ग्रहिणी राक्षसी होती। जिसका उद्देश्य मात्र यहीं है कि वह किसी प्रकार कालिदास को पकड़ पाती और उससे पूछती कि तेरे उन वायदों का क्या हुआ जो तुने मल्लिका से किए थे! किन्तु उसकी यह साध कि मैं अपने जीव काल में स्वपत्री के हाथ पीले कर सकूँ अधूरी ही रह जाती है और यही निराश्रिता विधवा स्वपुत्री के दु:खों से अनुदिन परितापिता-विगलित होती हई अन्तत: दम तोड देती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि अंबिका आलोच्य नाटक का एक जीवन्त पात्र है। वह अपनी मल्लिका विषयक वात्सल्य-भावना, उसकी हिजाकांक्षा, उसके भोलेपन के प्रति कातरता तथा कर्मठता और यथार्थवादी दष्टिकोण के कारण पाठक-प्रेक्षकों की सहानुभूति अर्जित करने में पूर्णतया सफल रहती है। प्रभाव की दृष्टि से उसका चरित्र मल्लिका के अतिरिक्त अन्य सभी पात्रों से बढ़कर प्रभावशाली हैं।

1.5 कथोपथन अथवा संवाद-योजना

आधुनिक यथार्थवादी या समस्या-प्रधान नाटकों में प्राय: दो प्रकार के सम्वादों की योजना की जाती है। एक सम्पूर्ण संवाद, इस प्रकर के संवादों में अभिनेयता की पूर्णता तो रहती है, अभिनेता अपनी बात कहने के लिए अनके शब्दों और पूर्ण वाक्यों का प्रकेग करता है। उनके असंबद्धता, अस्पष्टता और अधूरापन आभसित नहीं होता। संवादों का दूसरा प्रकार है अपूर्ण या सांकेतिक संवाद। इस प्रकार के संवादों की योजना प्राय: असन्तुलित एवं अव्यक्त मन:स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए या फिर असन्तुलित पात्रों के व्यवहारों के द्योतन के लिए, अथवा भावावेश की स्थितियों के रूपायन के लिए ही प्राय: किया जाता है। इस प्रकार की संवाद-योजनाओं में सांकेलिकता के अभिध मन के लिए नाटककार या तो डैशों का प्रयोग करता है, या फिर व्याख्या-बिन्दुओं का। इस प्रकार की संवाद योजना अकसर संक्षिप्त, कभी-कभी एक शब्द मात्र ही हो जाती है। भावावेश के क्षणों में कभी-कभी इस प्रकार के संवाद लम्बे भी हो जाते हैं। उनके बीच-बीच में डैश और व्याख्या बिन्दु भी प्रयुक्त किये जाते हैं। राकेश ने अपने नाटकों में ये दोनों प्रकार के संवाद प्रयुक्त किये हैं। आषाढ़ का एक दिन' नाटक में इन दोनों प्रकार के संवादों के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है

मल्लिका - ये कौन लोग है माँ?

टिप्पणी

अम्बिका - संभवत: राज्य कर्मचारी हैं।

मल्लिका - ये यहाँ क्या कर रहे हैं।

अम्बिका - जाने क्या कर रहे है!... कभी वर्षों में ये आकृतियाँ यहाँ दिखाई दे जाती हैं। और जब भी दिखाई देती हैं, कोई न कोई अनिष्ट होता है।

कभी युद्ध की सूचना आती है, कभी महामारी की।

दूसरे प्रकार का उदाहरण देखिए। कालिदास को उज्जयिनी ले जाने के लिए आचार्य वररूचि राज-कर्मचारियो के साथ आये हुए है। उस समय मातुल और निक्षेप में संवाद चल रहा है

निक्षेप - किंतु मातुल ...।

मातुल - किंतु मातुल क्या? बताओ तुम मुझे मूर्ख समणते हो?

निक्षेप - नहीं मातुल ...।

मातुल - मैं मूर्ख नहीं, तो निश्चय ही तुम मूर्ख हो। ... आचार्य ने क्या कहा है?

निक्षेप - उन्होंने कहा है कि आपके साथ इस सारे ग्राम-प्रदेश में घूमना चाहते हैं ... जिस प्रदेश ने कालिदास की कविता को जन्म दिया है।

संवादों का एक अन्य प्रकार भी माना जाता है, जिसे काव्यात्मक संवाद कहते है। नाटककार प्रसाद के बाद इस प्रकार के संवाद लिखने में सर्वाधिक सफलता मोहन राकेश को ही मिल सकी है और वह भी कहीं अन्यत्र नहीं, बल्कि आषाढ़ का एक दिन' में ही। वास्तव में नाटक का आरंभ ही काव्यात्मक संवाद से हआ है यथा -

मल्लिका - तीन कमल की तरह कोमल और आर्द्र, वायु की तरह हल्का और स्वप्न की तरह चित्रमय! मै चाहती थी उसे सपने में भर लूँ और आँख मूंद लूँ।

इसी प्रकार मल्लिका के संवादो में काव्यात्मकता का समावेश सर्वत्र देखा जा सकता है। कालिदास से भी बढ़कर नाटककार ने मल्लिका से इस प्रकार के संवाद कहलाए हैं। उसका निम्न कथन तो एक भावमयी कविता ही कहा जा सकता है "मैंने भावना में भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल हैं, अनश्वर है...."

कालिदास के संवादो में भी इस प्रकार की काव्यात्मकता है और विलोम के कई संवाद तो एकदम काव्य-खण्ड से ही प्रतीत होते है। यहाँ दोनो का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है

कालिदास - हम जिएंगे हरिण शावक! जिएँगे न, एक वाण से आहत होकर हम प्राण नहीं देंगे। हमारा शरीर कोमल है तो क्या हुआ? हम पीड़ा सह सकते हैं। एक वाण प्राण ले सकता है, तो उँगलियों का कोमल स्पर्श प्राण दे भी सकता है। हमें नये प्राण मिल जाएंगे।

विलोम - विलोम क्या है? एक असफल कालिदास। और कालिदास? एक सफल विलोम। हम कहीं एक-दूसरे से बहुत निकट पड़ते हैं। इन तीनों प्रकार के संवादों का **आषाढ़ का एक दिन'** नाटक में पूर्णतया सफल प्रयोग हुआ है, यह उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है। इन संवादो की सफलता केवल बाह्य योजनाओं की दृष्टियों से ही नहीं है, बल्कि कथा और कथानक का आत्म-तत्त्व या प्राणा-तत्त्व भी इनमें स्पष्ट: झलकता देखा-सुना जा सकता है। समस्या या यथार्थवादी नाटकों के समान अन्त में अत्यधिक बल्कि भाषण की सीमा तक प्रलंब संवाद भी आलोच्य नाटक के अंत में मिल जाते

टिप्पणी

है। समस्या नाटकों के शिल्प और शैली की दृष्टियों से उनका अपना ही अलग और विशिष्ट महत्त्व हुआ करता है।

संवादों के इन प्रकारों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार या रूप भी उपलब्ध होता है। संस्कृति नाटकों में **आकाश--भाषित'** के नाम से इनका रूप प्राय: देखने को मिलता है। आजकल **आत्म संभाषण'** के नाम से नाटकों में इसका प्रयोग प्राय: किया जाने लगता है। यथार्थवादी और समस्या-प्रधान नाटकों में तो **आत्म संभाषण'** के नाम से नाटकों में इसका प्रयोग प्राय: किया जाने लगता है। यथार्थवादी और समस्या-प्रधान नाटकों में तो आत्म संभाषणात्मक-संवाद' रहते ही हैं। कोई पात्र प्राय: अकेलेपन में ही इस प्राकर के संवाद बोला करता है! इस प्रकार के संवादों का वैशिष्ट्य यह माना जाता है कि यह तो पात्र सीधे ढंग से अपने या किसी अन्य पात्र के बारे में कुछ कहता जाता है, या फिर प्रश्नोत्तर रूप में अपनी बात व्यक्त किया करता है। ऐसा करने से प्राय: घटित घटनाओं की या तो सूचना मिल जाया करती है या फिर उनका विवेचन-विश्लेषण हो जाया करता है। नाटक आषाढ़ का एक दिन' में आलोचना या विवेचन के रूप में दो-तीन स्थानों पर इस प्रकार के संवादों की योजना भी उनलब्ध हो जाती हैं काश्मीर जाते समय कालिदास अपने ग्राम प्रान्तर से गुजरता है, पर मल्लिका के घर की ओर न आकर पर्वत शिखरों की ओर चला जाता है। तब कालिदास का लक्ष्य कर मल्लिका इस प्रकार का आत्म-सभाषण करने लगती है

मल्लिका - आज वर्षों बाद तुम लौट कर आए हो? सोचती थी तुम आओगे तो उसी तरह मेघ घिरे होगे, वैसा ही अन्धेरा-सा दिन होगा, वैसे ही वर्षा में एक बार भीगूंगी और तुम से कहूँगी कि देखो मैने तुम्हारी सारी रचनाएँ पढ़ी हैं ...।

(कुछ पृष्ठ हाथ में ले लेती है।)

उज्यियिनी की ओर जाने वाले से कितना-कितना कह कर मैंने तुम्हारी रचनाएँ मंगवाई है।.... सोचती थी की तुम्हे भी कभी सुनाऊंगी। पर्वत शिखर से घण्टा-ध्वनियाँ गूंज उठेगी और मै अपनी यह भेंट तुम्हारे हाथों में रख दंगी... (कोई पर रखा ग्रन्थ उठा लेती है) कि देखो, यह तुम्हारी नयी रचना के लिए है। ये जो पृष्ठ मेने अपने हाथों से बनाकर सिये है। इन पर तुम जो भी लिखोगे, उससे मुझे अनुभव होगा कि मै भी यहाँ हूँ, मेरा भी कुछ है। (नि:श्चय ही कोई रख देती है) परन्तु आज तुम आये हो तो सारा वातावरण ही तुम्हारी है और... नही सोच पा रही कि तुम भी यही हो या..?

इससे हमें अतीत में घटित अदृश्य का बहुत कुछ पता चल जाता है। संवाद, पात्र और वक्तव्य से संबद्ध पात्र के परिवर्तित परिवेश, उनके प्रति मनोप्रतिक्रियाओं का अभ्यास भी मिल जाता है। नाटककार ने इस प्रकार के समाचारों की योजना बड़े ही नाटकीय ढंग से की है, क्योंकि ऐसे संवादो के बोलने के तत्काल बाद ही नाटकीय ढंग से की है। क्योंकि ऐसे संवादो के बोलने के तत्काल बाद ही किसी पात्र का प्रवेश होता है और परिवर्तित वातावरण एवं अन्त:स्थितियों का स्पष्ट उभार मिलने लगता है। इस संवाद के बाद रानी प्रियुगमंजरी के आगमन की सूचना लेकर और पूर्व-व्यवस्था के लिए प्रवेश करते है किंतु तीसरे अंक में जहाँ इस प्रकार की संवाद योजना की गई है। वहाँ उसके बाद मल्लिका के अभिलापित कालिदास का प्रवेश होता है पर एकदम विभिन्न एवं एक प्रकार से अपरिचित-अयचित स्थितियों में। वहाँ दिया जाता संभाषण पर्याप्त प्रलंब है। उससे मल्लिका के वर्तमान मन:स्थितियों का एकदम आभास मिल जाता है। संभाषण का प्रारंभ मातुल के यह सूचना देने के बाद से होता है कि कालिदास काश्मीर से भाग कर, काशी जा कर सन्यासी हो गया है। विस्मय-विमुग्य मल्लिका कहती है।

"नही तुम काशी नही गए। तुमने संन्यास नही लिया। मैने इसलिए तुमसे वहाँ जाने के लिए नही कहा था।... मैने इसलिए भी नही कहा था कि तुम जाकर वहीं का शासन सार संभालो। फिर भी जब तुमने

टिप्पणी

ऐसा किया मैने तुम्हें शुभ-कामनाएँ दी-यद्यपि प्रत्यक्ष तुमने वे शुभ कामनाएँ, ग्रहण नही की। (ग्रन्थ हाथ में लिए जैसे अभियोगपूर्ण दृष्टि से उसे देखती है।) मै यद्यपि तुम्हारे जीवन मै नही रही, परंतु तुम मेरे जीवन में सदा बने रहे हो। मैने कभी तुम्हे अपने से दूर नही होने दिया। तुम रचना करते रहे और मै समझती रही कि मै सार्थक हूँ, मेरे जीवन की कुछ उपलब्धि है (ग्रन्थ को घुअनों पर रख लेती है।) और आज तुम मेरे जीवन को निरर्थक कर दोगे?' और इसी प्रकार बोलती ही जाती है। उसके इस आत्म-संभाषण से पाठक और प्रेषक के सामने मल्लिका का आत्म-विश्लेष्णा तो आ ही जाता है। उसका वर्तमान अभावग्रस्त पर भावनामय जीवन भी उजागर हो जाता है। कालिदास के पलायनवादी व्यक्तित्व को विश्लेषणात्मक झाँकी भी मिल जाती है और भोगी जा रही परिस्थितियाँ भी स्पष्टत: सामने आ जाती है। यही सब इस प्रकार के संवादों की विशेषता है। मुख्यत: संवादों के यहाँ रूप और प्रकार स्पष्ट करते है कि जिनका सफल प्रयोग राकेश ने अपने इस प्रथम नाटक में ही बड़ी सुघड़ता से किया है।

1.6 देशकाल-वातावरण

नाटकों के कथानक, कथ्य, पात्रों के चरित्र और साथ जुड़ा अन्य प्रकार का सभी बातों का विश्वसनीय एव ग्राह्य बनाने के लिए सजीव और सशक्त वातावरण का देशकाल के अनुरूप योजना आवश्यक हुआ करता है। **'आषाढ़ का एक दिन'** मूलत: ऐतिहासिक परवेश और पर्यावरण वाला नाटक है यद्यपि इसमें यग बोध भी अनिवार्य तथा अन्त:स्यूत है अत: नाटकार ने इसमें पात्रो के स्वरूप-विधान, उनके अन्त:बाह्य विधान गतिविधियों और संवाद-योजना आदि में प्रमुख: ऐतिहासिक परिवेश का पूर्णतया ध्यान रखा है- यद्यपि द्वारा उस सबसे मिलते-जुलते तत्त्व आज के ग्राम्य एवं नगरीय-सृष्टि की अद्‌भुत क्षमता विद्यमान थी जिसका प्रमाण आषाढ़ का एक दिन' समेत सभी नाटकों में मिल जाता है।

वातावरण-सृष्टि के देश-काल के अनुरूप मुख्य दो रूप या अंग हुआ करते है-एक बाह्य और दसरा आन्तरिक। बाह्य का सम्बन्ध प्रकृति भूगोल और सामाजिक या परिवेशगत आचाय-विचारों के साथ रहा करता है, जबकि आन्तरिक का पात्रो का चरित्रगत प्रवृत्तियों, मनोद्वन्द्वों और रूचियों आदि के साथ। नाटककार ने बाद वातावरण-सृष्टि के बहुत सारे निर्देश तो नाटक मे नए संकेतों के रूप में चित्रित कर दिये है और कुछ का पता हमे पात्रो के संवादो के द्वारा चल जाता है। जैसे कि नाटक के आरम्भ में ही नाटककार लिखता है

"पर्दा उठने से पूर्व हल्का-हल्का मेघ गर्जन और वर्षा का शब्द, जो पर्दा उठने से अनन्तर भी कछ क्षण चलता रहता है। फिर धीरे-धीरे धीमा पड़कर मिलीन हो जाता है।" इसके बाद उसने अंबिका के घर का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह समग्र ग्राम्य-परिवेश को उजागर करने वाला है। उसमे क्रमश: जो परिवर्तन आता है वह भी अगले अंकों का वर्णन-ब्यौरो और रंग-संकेतों से स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार आचार-विचारो और मान्यताओं आदि का ज्ञान पात्रो के संवादो से हो जाता है। प्रकृति और भूगोल का पता भी अनेकश: संवादो से हो जाता है। रागना-सागना की मल्लिका से जो बातचीत होती है, उससे परिवेश का काफी ज्ञान होता है। प्रियंगमंजरी एक स्थान पर अम्बिका से कहता है।

"यहाँ से बहुत दूर तक की पर्वत श्रृखंलाएँ दिखाई देती है। कितनी निर्व्याज सुन्दरता है...। इस सौन्दर्य के सामने जीवन की सुविधाएँ हेय है।"

इस प्रकार के अन्य संवाद भी नाटक में खोजें जो सकते हैं जो देश-काल के अनुरूप बाह्य वातावरण के अध्ययन में विशेष सहायक हुआ करते हैं। बाकी नाटक के अध्ययन से बहुत सारा ग्राम्य एवं नगरीय तथा अन्याय स्थितियों का भी पता चल जाता है। जैसे प्रेम सम्बन्धों के साथ अपवादों का जुड़ना, विवाह

टिप्पणी

संस्था से सम्बन्धता नैतिक मान्यताएँ एवं अवधारणाएँ पशुपालक के मुख्य धन्धे, धान के मुख्य खाद्य होने, संस्कृत का प्रचार, व्यवसाय, औषधियों, मधु-घृत आदि के प्रयोग। इसी प्रकार नगरीय सभ्यता का चकाचौध, वहाँ की नेतिकताओं का भाव-जैसें विवाह के बाद भी कालिदास का बार वानताओं से सम्बन्धित होना, राजकर्मचारियों कादबाब, अहपूर्ण व्यवहार, अकर्मण्यता, राजनीति और राजभवनों का कृत्रिम जीवन आदि नयी बातों का सम्बन्ध तत्कालीन वातावरण के साथ ही हैं, जिसका हमें नाटक से स्पष्ट पता चल जाता है। तब साहित्य, कला आदि का अत्यधिक मान था। ग्राम्य जन भी उससे सम्बद्ध और परिचित थे। तात्पर्य यह है कि बाह्य वातावरण के सन्दभों में देश-काल के अनुरूप प्राय: सभी बातों से हम सामान्यत: परिचित हो जाते हैं।

आन्तरिक वातावरण का सम्बन्ध लोगों का अन्त: प्रवृत्तियों के साथ जुड़ा रहा करता है। मनोद्धन्द्धों के रूप में नाटककार ने उसे भी बड़े सजीव रूप से उभारा है। जैसे सामान्यत: ग्राम्य-जन ईर्ष्या-द्वेष से पूरित थे। स्वार्थी भी थे। दूसरे की उन्नति भी उन्हें सह्य नहीं थी। विलोम अम्बिका, मातुल के माध्यम से इन बातों का सहज ही अनुमान हो जाता है। पर निक्षेप जैसे निश्चल युवक भी थे। राज-कर्मचारी एक ओर तो गर्व से ऐठे हुए थे, जबकि दूसरी ओर उनमें खुशामद और समता का भाव। प्राय: युगीन लोगों को अन्त: प्रवृत्तियों का दृष्टियो से स्वच्छन्द एवं स्वेच्छाचारी व्यवाहार की भी जानकारी जा सकता है। तभी तो अम्बिका के घर में प्रवेश के लिए या नारी पुरूषों को पारस्परिक बातचीत के लिए किसी प्रकार की बाधा का सामना नहीं करना पड़ता।

तात्पर्य यह है कि आन्तरिक वातावरण की भी एक स्पष्ट झलक नाटक में मिल जाती है। अत: देश-काल और वातावरण सृष्टि की दृष्टियों से भी **आषाढ़ का एक दिन'** को पूर्ण सफल नाटक कहेंगे/

1.7 भाषा-शैली

नाटकों में वहाँ भाषा सर्वाधिक श्रेष्ठ मानी जाती है कि जो कुल मिलाकर रंगमंच के सर्वथा उपयुक्त हो। इस दृष्टि से भाषा का सरल और सुबोधगम्य होना अनिवार्य है। अभिनेय होने के कारण नाटकों का सम्बन्ध सभी प्रकार के प्रेक्षकों के साथ जुड़ा रहना चाहिए। ताकि वे उसे ह्रदयगम कर सम्प्रोषित तत्वों एवं तथ्यों को अधिगृहीत कर सकें। **आषाढ़ का एक दिन'** नाटक का कथ्य, कथानक और पात्र मुख्यत: काव्यमय है। अत: स्वाभाविक काव्यमयता का गुण इसमें स्वत: ही आ गया हैं फिर भी नाटककार ने आज की यथार्थवादी नाट्य परम्परा का भाषायी दृष्टियों से भी ध्यान रखा हैं। इस कारण भाषा में पात्रों की स्थिति और स्तर आदि का ध्यान रखा गया है। देश-काल के अनुरूप शब्दों का प्रयोग भी इसमें सार्थक रूप में किया गया है। कथ्य, कथानक और पात्रों के चरित्रों एवं अन्तर्द्वन्द्वों को उभार कर सजीव बना देने में नाटक की भाषा को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई हैं। उसमें रोचकता का तत्व तो है ही यथा स्थान व्यंग्य विनोद का सहज क्षमता का भी उसने व्यापक परिचय दिया है। कुल मिलाकर हम 'आषाढ़ का एक दिन' की भाषा को सहज स्वाभाविक और साहित्यिक रंगमंच के उपर्युक्त भाषा कह सकते हैं। एक उदाहरण से यह बातें पूर्णतया स्पष्ट हो जाती हैं।

प्रियंगु - लगता हैं यहाँ ग्राम-प्रदेश में रहकर भी तुम्हें साहित्य से बहुत अनुराग है।

(मल्लिका की आखें झुक जाती हैं) किसकी रचनाएँ हैं यें? मल्लिका कालिदास की।

प्रियंगु - (प्रियंगु की भोंहें कुछ संकुचित हो ताजी हैं।) अब वे मातृ-गुप्त के नाम से जाने जाते हैं।

यहाँ भी उनकी रचनाएँ मिल जाती हैं?

टिप्पणी

मल्लिका - ये प्रक्तियाँ मैने उज्जयिनी से आने वाले व्यवसाययों से प्राप्त की हैं।

समूचे नाटक की वास्तविक भाषा यहीं हैं, जबकि भावावेश के क्षणों में कही-कहीं अधिक काव्यमयता भी आ गई हैं। मल्लिका के भाषायी प्रयोगों में ऐसे क्षण विशेष आये हैं। विलोम की भाषा-शैली में व्यंग्य का वैदग्ध्य विशेष उभरा है। तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रमुखता के साथ हुआ है। आधुनिक दृष्टि से कुछ अप्रचलित शब्द भी मिलते है। जैसे आस्तरण, तथ्य, उल्मुक आदि। भाषा-शैली में मुहावरों के प्रयोग के कारण भी सजीवता का समावेश हुआ हैं। दो-चार स्थलों पर संस्कृत की उक्तियों का प्रयोग भी हुआ है। अलंकरण की प्रवृत्ति भी कही-कहीं भवावशमया स्थितियों में दिखाई देती हैं/

जहाँ तक नाटकीय शैली का प्रश्न हैं, इसे हम यथार्थवादी परम्परा के कुछ-कुछ समस्या प्रधान नाटकीय परम्परा का नाटक कह सकते हैं। इसर दृष्टि से मनोभावों के व्यक्तिकरण के लिए अनेक स्थलों पर डॅशों और व्याख्या बिन्दुओं का प्रयोग किया गया है। नाट्य-शैली में त्रासदीय तत्वों का समावेश आद्यान्त द्रष्टव्य हैं। अन्त भी त्रासदीय ही कहा जायेगा। तात्पर्य यह हैं कि आज भाषा-शैली शिल्प का दृष्टियों से हिन्दी-नाटक लिस दिशा में बढ़ रहा है प्रस्तुत नाटक उस बसका एक प्रत्यक्ष दिशा-निर्देशक स्तम्भ हैं/

1.8 उपद्देश्य एवं संदेश

'आषाढ़ का एक दिन' इतिहास और सामयिक जीवन के यथार्थ-बोध को लेकर रचा गया नाटक है ऐसे किसी विशिष्ट भावनात्मक आदर्श को लेकर नहीं चला करते। ऐसे नाटक किसी पूर्व निर्धारित विशिष्ट उद्देश्य के परिचालित भी नही हआ करते फिर किसी प्रकार का विशेष सन्देश की प्रवृत्ति भी ऐसे नाटकों की नही करती। इनका उद्देश्य और सन्देश तो वास्तव में व्यवहार जगत में जो कुछ घटित हो चुका या घटित हो रहा है. उसका मात्र बोध करा देना ही हुआ करता है। इन दृष्टियों से जब हम आलोच्य नाटक आषाढ़ का एक दिन' का विवेचन और विश्लेषण करते है तो पाते है कि नाटककार व्यक्ति की सर्जनात्मक चेतना में परिव्याप्त युग के द्वन्द्वात्मक संघर्ष को ही यहां मुख्यत: रूपायित करना चाहता है। नाटककार कालिदास को युग-युग तक सृजनात्मक चेतना के द्वन्द्व का प्रतीक मानकर ही चला है। उसने एक अहनिष्ठ, आत्मजीवी और द्वन्द्व व्यक्ति-पुरूष के हाथों से चिनता काल से उत्पीड़ित एवं शोषित होती आ रही नारी का चित्रण यहाँ प्रमुखता के साथ किया है। नाटककार के शब्दों में ही तथ्य की पुष्टि देखिए। अपने दूसरे नाटक लहरों के राजहंस' की भूमिका में उसने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है "कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नही, हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है, नाटक में वह प्रतीक उस अन्तद्वन्द्व को संकेतिक करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आन्दोलित करता है। व्यक्ति कालिदास को उस अन्तर्द्वन्द्व से गुजरना पड़ा या नही, यह बात गौण है। मुख्य बात यह है कि हर काल में बहुतो को उससे गुजरना पड़ा है। हम भी आज उससे गुजर रहे है।" इसी प्रकार मल्लिका के बारे में भी उपरोक्त सन्दर्भो में ही नाटककार कहता है- **मल्लिका का चरित्र एक प्रेयसी और प्रेरणा का ही नहीं, भमि में प्रेषित उस स्थिर अवस्था का भी है जो ऊपर से झुलस कर भी अपने मूल में विरोपित नहीं होती।**' इस स्पष्टीकरण से नाटककार का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है वह द्वन्द्वग्रस्त जीवन के यथार्थ का बोध कराना चाहता है, उसमें उसे निश्चय ही सफलता मिली है।

इसके साथ या ऐसा करते समय सामान्यत: अन्य कुछ प्रश्न भी स्वत: ही नाटक में आ गये है। जैसे कलाकार को राज्यव्यवस्था का अंग बनना चाहिए या नहीं। अंग बनकर भी प्रत्यक्ष एवं व्यावहारिक राजनीति में भाग लेना चाहिए अथवा नही। कलाकार के प्रति सामाजिकी का दायित्व क्या है या कैसा होना चाहिए। प्रेम के बाद विवाह अनिवार्य है अथवा नही। इन प्रश्नों को ऊठाकर इन सबके बारे में

टिप्पणी

यथार्थ जीवन में जो विद्वय आ गए है, उनको नाटककार ने सशक्त ढंग से उभारा है। उनका यद्यपि कोई समाधान तो नही बताया और इस प्रकार कोई प्रत्यक्ष सन्देश भी नही दिया तो भी अनुमानत: या परीक्षत: यही कहता प्रतीत होता है कि कलाकार को प्रत्यक्ष ओर व्यावहारिक राजनीति में भाग नही लेना चाहिए। विशाल का स्वतंत्र अंग बना रहकर ही वह अपने सुजन की भुमिका निभा सकता है। कलाकार सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति का दायित्व लेना और निभाना चाहिए। प्रेम की स्थिति में यदि विवाह हो ही जाये तो स्वभाविक एवं उपयुक्त हो सकता है। कुल मिलाकर **आषाढ़ का एक दिन**' नाटक के उद्देश्य एवं सन्देश के बारे में यही कुछ कहा जा सकता है। इन्हीं सन्दर्भो में उसकी सफलता भी अंकित किया जा सकता है।

1.9 रंगमंच और अभिनेयता

आज का नाटक रंगमंच और अभिनेयता की समस्त संभावनाओं को सामने रखकर ही रचा जाता है। इस आलोक में यदि ऐ वाक्य में हम कुछ कहना चाहे तो कह सकते है कि 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक साहित्यिक रंगमंच की समग्र आवश्यकताओं और सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर ही लिखा गया है, साहित्यिक रंगमंच का सभी प्रकार की सफल संभावनाएँ भी इसमें विद्यमान है। इसका प्रमाण इस बात से मिल जाता है कि आज तक अनेक बार इस नाटक का अभिनय देश-विदेश में खुले बन्द-सभी प्रकार के रंगमंच पर पूर्ण सफलता के साथ किया जा चुका है। यद्यपि कुछ आलोचकों ने आषाढ़ का एक दिन' की भाषा तथा अन्य अनेक दृष्टियों से काव्यात्मक का समावेश के कारण इसे सफल रंगमंचीय नाटक न कहने का आग्रह दिखाया है, पर आज तक के अनेक बार के सफलतम मंचन ने उनके कथनों को निरन्तर झुझला कर रख दिया है। इसकी काव्यात्मकता और साहित्यिकता किसी भी प्रकार के प्रेक्षक के लिए बोझिल प्रमाणित नही हुई, बल्कि सभी ने मुक्त कण्ठ से उसकी प्रशंसा की है।

नाटक में वस्तु-योजना एकदम सीधी-स्पष्ट और समस्त नाटकीयता के तत्वों से संवत है। किसी भी प्रकार की जटिलता उसमें नही है कि जो किसी भी प्रकार के प्रेक्षक क लिए दुर्बोध हो सके। वस्तु-निधान के प्रत्येक अन्त:दृश्य की योजना विश्वस्त एवं परिचित-सी प्रतीत होती है। पात्र-योजना यद्यपि ऐतिहासिक है, तो भी मिलाए वेशभूषा के आज की स्थितियों से बाहर कुछ भी प्रतीत या आभासित नही होता। पात्रों का मनोद्वन्द्व एवं मनोवैज्ञानिक चरित्रकरण भी सहज और स्वाभाविक है। नाटककार ने रंगमंचीय योजनाओ की सहजता का ध्यान तो रख ही है, उसके लिए सभी प्रकार के उचित निर्देश भी स्थान-स्थान पर दे दिये है। नाटकों में संवाद योजना और उसकी भाषा काव्यात्मक या साहित्यिक है, पर जैसा कि हम ऊपर कह आये है उससे अभिनय में किसी प्रकार की बाधा नही आती। अभिनय में भी किसी दुरूहता का सामना नही करना पड़ता। कहा जा सकता है कि नाटककार सुजन-प्रक्रिया मे प्रस्तुत काल से पूर्व से ही इन दिशाओं में सजग एवं सचेत रहा है। इस कारण जटिलता किसी भी रूप में नही आ पाई है।

नाटककार राकेश अपने विद्यार्थी-काल से ही रंगमंच के साथ सम्बन्धित रहे हैं। फिर अपने नाटकों के मोचित होने के समय भी वे दिग्दर्शकों के प्राय: साथ ही रहे हैं। आज के यथार्थवादी रंगमंच को उन्होंने निकट से देखा-परखा और अभिनय तत्वों की भी निकट पहचान की। इन्हीं सब अनुभवों के आधार पर ही उन्होंने अपने अन्य नाटकों के समान श्आषाढ़ का एक दिन' में भी रंगमचीयता और अभिनेयता का सब प्रकार से ध्यान रखा है। नाटक में पात्रों की योजना सीमित है। ऐतिहासिक पर्यावरण होते हुए भी उनको और उनके परिवेश की साज-सज्जा जटिल नहीं बल्कि पूर्ण सहज रखी गयी है। अंक चाहे तीन हैं, पर आद्यान्त दृश्य एक ही बना रहता है। क्रमश: उसमें बहुत कम परिवर्तन करना पड़ता है।

टिप्पणी

हास्य, व्यंग्य-विनोद के अंशों का भी पूर्णतया ध्यान रखा गया है। प्रत्येक घटना और उसका प्रस्तुतीकरण समग्रत: सहज एवं सुबोध्य रूप में हुआ हैं। नाटक में मार्मिक स्थल भी अनेक हैं, जो अपना स्थायी प्रभाव छोड़ पाने की अद्‌भुत क्षमता से संयत है। तात्पर्य यह है कि सामान्यत: रंगोपयोगी नाटकों में जो तत्व एवं तथ्य होने चाहिए, आषाढ़ का एक दिन' नाटक में वे सभी पूर्ण रूप से विद्यमान है। अत: इसकी अभिनेयता के सामने किसी भी प्रकार का प्रश्न चिन्ह अंकित नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन-विश्लेषण के आधार पर अन्त में निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि आधुनिक नाटकों के तत्वों की कसौटी पर आषाढ़ का एक दिन' नाटक सभी प्रकार से खरा उतरता है। वास्तव में पूर्ण आधुनिक और यथार्थवादी नाटकों की रचना-प्रकिया के बीच की यह ऐसी कड़ी है कि जिसने हिन्दी-नाटक की सभी प्रकार की संभावित उन्नतियों और प्रगतियों के द्वारा उद्‌घटित कर दिये।

1.10 नाटक का सारांश

आधुनिक नाटकों का स्वरूप परम्परागत नाट्य-परम्परा से एकदम हटकर है। नाटक इस दृष्टि से आज परम्परागत आधारों पर नाटकों के विवेचन-विश्लेषण का कोई औचित्य नहीं रह गया। इस प्रकार नाटक पहले रस एवं किसी विशिष्ट उद्देश्यों को सामने रखकर रचे जाते थे। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में जिस प्रकार के और जिप्स ढंग से कथ्य-कथानक की योजना की गई है, पात्रों की योजना और उनके चरित्र-चित्रण किये गये हैं, उन सबमें परम्परा का निर्वाह किसी भी रूप में नहीं हुआ है बल्कि एक नव्य प्रक्रिया और प्रणाली ही नाटककार ने अपनाई है। नाटक मूलत: कथात्मक साहित्य का एक दृश्य विधानात्मक विधा और स्वरूप है। कथात्मक साहित्य के अन्तर्गत आने वाले विधात्मक रूपों के आधुनिक परिप्रेक्ष्यों में मूख्यत: छ: तत्व स्वीकार किये जाते हैं। पर जहाँ तक कथात्मक-साहित्य के इस दृश्य-स्वरूप या विधा का प्रश्न है, दृश्यमयता के कारण इसके क्रमश: सात तत्व स्वीकार किए गए हैं। यहाँ आषाढ़ का एक दिन' नाटक के तात्विक विवेचन के लिए नाटक के सात मुख्य तत्व स्वीकार किए गए हैं। क्रमश: उन तत्वों के नाम है - 1. वस्तु योजनाएं कथात्मक या कथा वस्तु 2. पात्र और चरित्र-चित्रण 3. कथापकथन या सम्वाद 4. देशकाल और वातावरण 5. भाषा-शिल्प 6. उद्देश्य एवं सन्देश और 7. रंग-मंच एवं अभिनेयता। नाटक की वस्तु-योजना आधिकारिक दृष्टियों से इतिहास संयत होते हुए भी विशुद्ध ऐतिहासिक नहीं बल्कि कल्पना-प्रधान ऐतिहासिक है। क्योंकि नाटककार ने कथानक के नायक कालिदास को युग-युगों की सजन चेतना का प्रतीक मानकर उसका चित्रण किया है। अत: वस्तु-विन्यास एवं विकास में आधुनिक बल्कि यथार्थ युग-बोध अधिक समन्वित एवं संयत हो पाया है। कथानक और उससे सम्बन्धित घटनाओं की सृष्टि पात्रों के द्वारा ही हुआ करती है। इस प्रकार यदि पात्र होंगे तो उनका चरित्र-चित्रण भी अनिवार्यत: होगा। नाटककार राकेश चूंकि कालिदास को सर्जनात्मक प्रतिभा का प्रतीक मान कर चला है। एक सर्जक को किस प्रकार की स्थितियों और अन्द्वन्द्वों से गुजरना पड़ता है, यहीं सब चित्रण करना उसका उद्देश्य रहा है। इस दृष्टि से नाटक आषाढ़ का एक दिन' को हम चरित्र-प्रधान कह सकते हैं। आषाढ़ का एक दिन' नाटक के संवादों की प्रमुख विशेषता यह है कि यह काव्यमयता के महत्वपूर्ण गुणों से संयत हैं। इसका प्रमुख कारण है। नाटक का वर्ण्य विषय सम्वादों की योजना करते समय नाटककार ने पात्रों की स्थिति, प्रवृति और स्वभाव को भी पूर्णतया ध्यान में रखा है। अत: उनके अन्त: बाह्य चरित्रों के उद्‌घाटन में प्रत्यक्षत: भी सम्वाद पूर्णतया सहायक हए हैं। आषाढ़ का एक दिन' मूलत: ऐतिहासिक परिवेश और पर्यावरणों वाला नाटक है यद्यपि इसमें युग बोध भी अनिवार्य तथा अन्त:स्यूत है। नाटक की कथ्य, कथानक ने आज की यथार्थवादी नाट्य परम्परा का भाषायी दृष्टियों से भी ध्यान रखा है। इस कारण भाषा में पात्रों की स्थिति और साहित्यिक रंगमंच के उपर्युक्त भाषी कह सकते है। नाटककार कालिदास को युग-युगों की

टिप्पणी

सृजनात्मक चेतना के द्वन्द्व का प्रतीक मानकर ही चला है। उसने एक अहनिष्ठ, आत्मजीवी और द्वन्द्व ग्रस्त व्यक्ति-पुरूष के हाथों से चिन्ता काल से उत्पीड़ित एवं शेषित होती आ रही नारी का चित्रण यहाँ प्रमुखता के साथ किया है। आषाढ़ का एक दिन' में भी रंगमंचीयता और अभिनेयता का सब प्रकार से ध्यान रखा है। नाटक में पात्रों की योजना सीमित हैं। ऐतिहासिक पर्यावरण होतु हुए भी उनको और उनके परिवेश की साज-सज्जा जटिल नहीं बल्कि पूर्ण सहज सरल रखी गयी है। आधुनिक नाटकों के तत्वों की कसौटी पर आषाढ़ का एक दिन' नाटक सभी प्रकार से खरा उतरता है। वास्तव में पूर्ण आधुनिक और यथार्थवादी नाटकों की रचना-प्रक्रिया के बीच की यह ऐसी कड़ी है कि जिसने हिन्दी-नाटक की सभी प्रकार की संभावित उन्नतियों और प्रगतियों के द्वार उद्घटित कर दिये।

1.11 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **मोहन राकेश के नाटक आषाढ़ का एक दिन' की वस्तु योजना किस प्रकार की है?**
2. **मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' की नायिका मल्लिका का चरित्र चित्रण कीजिए।**
3. **मोहन राकेश के नाटक आषाढ़ का एक दिन' का नायक एक दुर्बल हृदय का प्रेमी है। सपष्ट कीजिए।**
4. **मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' की संवाद योजना किस प्रकार की है?**
5. **देशकाल-वातावरण की दृष्टि से मोहन राकेश के नाटक आषाढ़ का एक दिन' की समीक्षा कीजिए।**

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **मोहन राकेश के नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' की तात्विक विवेचना कीजिए।**
2. **मोहन राकेश के नाटक आषाढ़ का एक दिन' का नायक आत्मकेन्द्रिक पात्र है। इस विषय पर तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।**
3. **नाटक के पात्र 'मल्लिका' के भूमि पर प्रकाश डाले।**
4. **नाटक में पात्र 'अबिका' के भूमि पर प्रकाश डाले।**
5. **कालिदास ने पांत्रो में के चरित्र के विविध पक्षों को किन-किन शीर्षको में विभिक्त किया है?**

♦♦♦♦♦

इकाई 2

लहरों के राजहंस : एक विवेचना

संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 नाटक की कथावस्तु
2.3 लहरों के राजहंस–प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दर्शन
2.4 नाम की सार्थकता
2.5 प्रतीकात्मकता
2.6 काल्पनिकता एवं ऐतिहासिकता
2.7 लहरों के राजहंस–उद्देश्य अथवा प्रतिपाद्य
2.8 कथोपकथन अथवा संवाद–योजना
2.9 लहरों के राजहंस – भाषा–शैली
2.10 लहरों के राजहंस – और अभिनेयता
2.11 लहरों के राजहंस की रंगमंचीयत
2.12 पात्र का चरित्र–चित्रण
2.13 श्यामसांग अर्थववता
2.14 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

2.1 प्रस्तावना

'लहरो के राजहंस' नाटक में नाटककार मोहन राकेश ने मूलतः व्यक्ति की द्वंद्वात्मक चेतना को अभिव्यक्त किया है। द्वन्द्वात्मक स्थिति न्यूनाधिक रूप के सभी प्रकार के दर्शनों एवं जीवन दर्शनों में रहती है क्योंकि किसी भी प्रकार का सिद्धान्त द्वन्द्व की गहराइयों से गुजरने के बाद भी निर्मित होता है। उसका स्वरूप आकार भी तभी चित्रित होता है इसी कारण आज दर्शन एवं जीवन दर्शन के पक्षों को खोजा जाता है। यहाँ एक बात और स्पष्ट कर दूँ कि दर्शन एवं जीवन दर्शन में अन्तर होता है। दर्शन का सम्बन्ध परालौकिक भावनाओ ङ्केसे होता है जबकि, जीवन दर्शन का संबंध किसी सजक की सामाजिक चेतना से हो है। तदयुगीन में उसकी जो धारणाएं, मान्यताएँ बनी हुई और उनकी अभिव्यक्ति हुई है वे जीवन दर्शन कहलाती है। हाँ यह सर्वविदित है कि उस सर्जक के जीवन दर्शन के मूल में परम्परागत दार्शनिक भावनाएं भी रहती है।

2.2 नाटक की कथावस्तु

'लहरो के राजहंस' की कथावस्तु इतिहास और कल्पना के समन्वय का परिणाम है। इस नाटक में राकेश जी ने ऐतिहासिक परिवेश में आधुनिक मानवीय अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करने का प्रयास किया है, लेखक ने गौतम बुद्ध के जीवन काल के एक ऐसे प्रसंग का चयन किया है जिसमें नंद नामक पात्र के अन्तर्द्वन्द्व को पष्ठबद्ध किया गया है। नाटक का ऐतिहासिक आधार संस्कृत के महाकवि अश्वघोष विरचित प्रसिद्ध महाकाव्य सौदरचंद है। प्रस्तुत नाटक की वस्तु योजना का उद्देश्य और महत्व स्पष्ट करते हुए नाटक की भूमिका में डॉ० सुरेश अवस्थी लिखते है "लहरों के राजहंस' में एक ऐसे कथानक का नाटकीय पुनराख्यान है जिसमें सांसारिक सुखो और आध्यात्मिक शांति के पारस्परिक विरोध तथा उनके बीच खड़े हुए व्यक्ति के द्वारा निर्णय लेने का अनिवार्य द्वन्द्व निहित है। इस द्वन्द्व का एक दूसरा पक्ष स्त्री और पुरूष के पारस्परिक संबधों का अन्तर्विरोध है। जीवन के प्रेम और श्रेय के बीच कृत्रिम और आरोपित विरोध है, जिसके कारण व्यक्ति के लिए चुनाव कठिन हो जाता है और उसे चुनाव करने की स्वतन्त्रता भी नहीं रह जाती। चुनाव की यातना ही इस नाटक का कथा बीज और उसका मुख्य बिन्दु है। धर्म भावना से प्रेरित इस कथानक में उलझे हुए ऐसे ही अनेक प्रश्नों का इस कृति में नए भाव बोध के परिवेश में परीक्षण किया गया है।" लहरो के राजहंस नाटक आधुनिक यथार्थवादी नाट्य रचना पद्धति पर लिखा गया है। यह नाटक तीन अंकों में विभाजित है। इसकी सम्पर्ण की एक ही दृश्यका पर घटित होती है। अंको का दृश्यों में विभाजन नही किया गया है। प्रस्तुत नाटक में भारी भरकम यथार्थवादी दृश्यबंध को बदलने के झंझट से बचने के लिए ही एक दृश्यबंध को स्वीकार किया गया है। नाटककार ने अपने इस नाटक की सम्पूर्ण घटनाएँ एक ही स्थान पर दिखाकर स्थान अन्विति का परी तार पालन किया है।

प्रथम अंक

नाटककार मोहन राकेश ने इस नाटक के प्रारम्भ में ही नाटक के नायक नन्द के राजमहल के आन्तरिक दृश्य का चित्र प्रस्तुत किया है। पर्दा उठते ही मंच पर दो व्यक्ति दिखाई देते है-श्यामाँग और श्वेताँग। ये दोनों ही राजमहल में कार्य करने वाले कर्मचारी है, श्यामाँग पत्तियों को तोड़ने सुलझाने में व्यस्त है जबकि श्वेतांग अग्निकाष्ठ से दीपक जला रहा है। श्यामाँग सदैव ही अपने कार्य में उलझ जाता है, आज भी वह पत्तियों को सुलझाने का प्रयत्न कर रहा है, लेकिन वे और ज्यादा उलझती जाती है, ये देखकर श्वेतांग श्यामाँग से कहता है कि तुम्हारे हाथों से कार्य इसलिए उलझता है, क्योंकि तुम सोचते ज्यादा हो। राजकर्मचारी को अपना कार्य समय पर करना चाहिए और इस चिन्तन मनन को त्याग देना

टिप्पणी

चाहिए। श्वेतांग दीपक जलाने के कार्य को श्यामाँग को सौंप देता है और उसके कार्य को स्वयं करने लग जाता है, लेकिन श्यामाँग फिर सोच में पड़ जाता है। ये दोनों कर्मचारी राजमहल में होने वाले कामोत्सव की तैयारी कर रहे है।

रानी सुन्दरी का नेपथ्य से स्वर सुनाई देता है। वह अपनी दासी अलका के साथ बात करती हुई आ रही है। सुन्दरी कामोत्सव के विषय में अलका से कहती है कि भोज, उपानक और नृत्य रात के अन्तिम पहर तक चलता रहेगा, जिससे वर्षो बाद भी लोगों के मन में इस कामोत्सव की याद बनी रहे। अलका के आशंका व्यक्त करने पर भी कामोत्सव की सफलता के लिए उत्सुक सुन्दरी कहती है, "रात बीतने दे, फिर अपने मन से पूछना। रात भर नगरवधू चंद्रिका के चरणों की गति से इस कक्ष की हवा काँपती रहेगी। हवा कापती रहेगी, और दुलती रहेगी मदिरा, उसकी आँखों से, उसके एक-एक अंग की गौराई से। कपिल वस्तु के राजपुरूष रात भर उस मदिरा में और अन्याय मणि-मदिराओं में डूबते उतराते रहेंगे' अगर तू उस दृश्य को देखेगी तो तुझे भी विश्वास नहीं होगा। जो व्यक्ति इस कामोत्सव को देखने से वंचित रह जाएंगे, वे तो कल्पना के माध्यम से भी इसका आनन्द नही ले सकेंगे। सुन्दरी अलका से कहती है कि जाकर शशांर नामक व्यक्ति को स्मरण करा दे कि उसे इस महोत्सव पर कुछ विशेष मदिराएं प्रस्तुत करनी है। सुन्दरी पत्तियाँ सुलझाने का कार्य श्यामाँग के लिए छोड़कर श्वेताँग को अपने साथ आने के लिए कहती है। श्यामाँग स्वयं से ही बातें करता हुआ कहता है पिछले बसंत में जब आम खुब बौराये थे तब तो कामोत्सव के आरोपन की बात मन में भी नहीं उठी, अब जबकि आम के वृक्षों ने भिक्षुओं का-सा वेश धारण कर रखा है। तो रानी कामोत्सव का आयोजन करना चाहता है। वह कहता है कि सुन्दरी यह जानती है कि कल प्रात: गौतम बुद्ध की पत्नी यशोधरा परिव्रज्या ग्रहण करन वाली है। वह यह भी जानती है कि बुद्ध प्रभाव के कारण लोगों का ध्यान उस ओर अधिक है, क्योकि बोध-प्राप्ति के बाद गौतम बुद्ध उन दिनों पहली बार अपनी जन्मभूमि कपिलवस्तु में अपने ध र्मोपदेश के लिए आए हुए थे और उनसे प्रभावित होकर अनेक लोग बुद्धमत में दीक्षित हो रहे थे, फिर भी रूप गर्वित सुन्दरी कामोत्सव में रात भर नृत्य और मद्य-पान चलवाना चाहती हैं। श्यामाँग फिर से पत्तियाँ सुलझाने लग जाता है,किन्तु उनका सिरा न मिलने से छिन्न होकर उन्हें तोड़ने लग जाता है। तभी सुन्दरी की दृष्टि श्यामाँग पर पड़ जाती है और उसे डांटते हुए कहती है कि खड़े-खड़े सोचने से काम होता है? इस कार्य को किसी दूसरे को सौंपकर एकांत में बैठकर सोचते रहो कि जब करने को कोई कार्य न हो तो हाथों को क्या करना चाहिए।

अलका सुन्दरी को अपने स्वप्न (सूखा सरोवर, पत्रहीन वृक्ष और धूल-भरा आकाश) के विषय में बताती है। अलका का यह स्वप्न संभवत: आगे घटित होने वाली कथा का संकेत है। सुन्दरी यशोधरा के दीक्षा ग्रहण करने को व्यर्थ मानती है और उसका उपहास उड़ाते हुए कहती है कि बड़े आश्चर्य की बात है कि इतने वर्ष दु:ख सहने के बाद भी देवी यशोधरा अपनी पीड़ा का मान न रख सकी। यशोधरा में सौन्दर्य का आकर्षण ही नहीं है, अगर होता तो राजकुमार सिद्धार्थ दीक्षा ग्रहण न करते। नारी का आकर्षण पुरूष बनाता है, तो उसका आकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है। वह गौतम बुद्ध पर आक्षेप लगाती हुई कहती है कि जनसामान्य से यही सुना है कि गौतम बुद्ध ने कामनाओं पर विजय प्राप्त की है, लेकिन इन्हीं कामनाओं पर विजय पाना भी तो मन की एक कामना ही है। अत: उनका निवत्ति मार्ग को अपनाना अनुचित ही है। यह सुनकर अलका सुन्दरी से पूछती है कि अगर गौतम बुद्ध का निवत्ति मार्ग को अपनाना अनुचित था तो नगर के सभी बूढ़े बुद्ध के प्रति इतना उत्साह और निष्ठा क्यों रखते है? प्रत्युत्तर में सुन्दरी कहने लगी कि मनुष्य एक तरह का जीवन जीते-जीते ऊब जाता है। अत: उसे जहाँ भी नवीनता दिखाई देगी वह उसी ओर अग्रसर होगा। इसी बीच कमलताल में किसी

टिप्पणी

के द्वारा पत्थर फेंकने के कारण हंसों की चीत्कार पूर्ण ध्वनि सुनाई पड़ती है। सुन्दरी उत्तेजित हो जाती है। फिर सुन्दरी इस धृष्टता के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को पकड़कर लाने का आदेश देती है।

कुछ समय पश्चात् अलका श्यामाँग को पकड़ लाती है। सुन्दरी उससे आवेशपूर्वक पूछती है कि तुमने कमलताल में राजहंसों पर पत्थर क्यों फेंके। श्यामाँग उत्तर में कहता है कि वह हंसो पर पत्थर नहीं फेंक रहा था, बल्कि उसने तो एक डरावनी छाया पर पत्थर फेंके थे। सुन्दरी को श्यामाँग की इन बेसिर-पैर की बातों पर विश्वास नहीं होता। अलका श्यामाँग के प्रति आत्मीयता व्यक्त करते हुए उससे सच कहने को कहती है; लेकिन श्यामाँग उसी बात को दोहराता रहता है। इससे सुन्दरी क्रोधवश कहने लगी, "मुझे विश्वास है सचमुच तुमने छाया देखी है। जब तुम यहाँ काम कर रहे थे, तब भी वही छाया तुम्हारे सिर पर मंडरा रही थी। वही तुम्हें काम नही करने देती थी। आप कामोत्सव के आयोजन में वह छाया किसी को भी न घेरती, तो मुझे आश्चर्य होता।" अत: छाया को दूर हटाने का मात्र एक ही उपाय है कि तुम्हें दक्षिण के अंधकूप में डाल दिया जाए। अलका श्यामाँग से अगाध प्रेम करती है इसलिए श्यामाँग को अंधकूप में डालने की बात सुनकर दु:खी हो जाती है, उसके मुख मण्डल पर विषाद की गहन रेखाएं छा जाती है। वह सुन्दरी से कहती है कि वह कई दिनों से श्यामाँग को इसी प्रकार विक्षिप्त-सी अवस्था में देख रही है, अत: उसे दण्ड की अपेक्षा सहानुभूति की आवश्यकता है। अलका के इस कथन से सुन्दरी समझ जाती है कि इन दोनो में प्रेम सम्बन्ध है। वस्तुत: वह श्यामाँग को मुक्त कराकर उसके उपचार का कार्य व उसकी देख-रेख अलका को ही सौंप देती है।

नन्द भी शिकार खेलने के पश्चात् वापिस आता है। विलम्ब से आने के कारण वह सुन्दरी से क्षमा भी मांगता है। वह बताता है कि दिन-भर एक मृग का पीछा किया, लेकिन फिर भी वह हाथ नहीं लगा। लेकिन जब वापिस लौट रहा था तो मार्ग में उसी मृग को मृत अवस्था में पाया। वह बाण से नही, बल्कि थकान से मरा था। बिना घाव के अपनी ही कलांति से मरे हुए मृग को देखकर मन में... इतना थका और टूटा हुआ लगने लगा कि...। नंद सुन्दरी को बताता है कि कामोत्सव में आमन्त्रित किए गए व्यक्तियों में से कुछ लोग नहीं आएंगे। वह नंद से कहती है कि आपका स्वंय लोगो के घर बुलाने जाना अपमान का विषय है। तभी मंत्रेय नामक एक: व्यक्ति 'पहले अतिथि के रूप में कक्ष में प्रवेश करता है, वह प्रथम तथा अन्तिम अतिथि है. इस बात को जानकर सुन्दरी उदास हो जाती है। मंत्रेय उन्हे सुझाव देता है कि कामोत्सव को किसी और दिन के लिए स्थगित कर देना चाहिए, लेकिन सुन्दरी स्थगित नही करना चाहती, वह अडिग रहती है। वह अतिथियों के आने का सारा दोष देवी यशोधरा के माथे मढ़ती है। मंत्रेय भी जाने की आज्ञा मांगता है और कहता है कि यहाँ पर और ज्यादा समय रूककर सुन्दरी के उद्देग का कारण नही बनना चाहता। सुन्दरी आपे से बाहर होकर मंत्रेय से कहती है कि आते हए आप जिनके घर से होते हुए आए थे, उनसे कह देना कि मेरे यहाँ आने के वे किसी कल की प्रतिक्षा में न रहें, क्योंकि वह कल अब उनके लिए कभी नही आएगा नंद शशांक से कहता है कि कामोत्सव में अतिथियों के बैठने की जो व्यवस्था की गई थी, अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

द्वितीय अंक

द्वितीय अंक के प्रारम्भ में नेपठय से श्यामाँग का ज्वर-प्रलाप सुना देता है "कोई ज्वर नही है..कोई किरण नही है.... सब कुछ... सब कुछ इस अंधकूप में डूब गया।... मुझे सुलझा लेने दो... सुलझा लेने दो नही तो अपने हाथों का मै क्या करूँगा।.... कोई उपाय नहीं है.. कोई मार्ग नही है... इन लहरो पर से..यह छाया हटा दो... मुझसे... यह छाया नही ओढ़ी जाती...।" श्यामाँग का यह अर्थपूर्ण प्रलाप है। यह प्रलाप उसका अपना प्रलाप ही नही है, बल्कि नन्द के हृदय का द्वन्द्व भी है। श्यामाँग को दिखने वाली वह छाया बद्ध की ही छाया है जो इतनी लम्बी एवं सघन है कि अज्ञात रूप से वह नन्द, सुन्दरी के

टिप्पणी

और सभी के मन-मस्तिष्क पर छा रही है। यही कारण है कि नन्द को निद्रा का संयोग नही हो रहा है। नेपठय से ज्वराग्रस्त श्यामांग का प्रलाप सुनाई दे रहा है। अलका उसे कभी पानी पिलाती है तो कभी सोने का आग्रह करती है निद्रा भंग हो जाने के पश्चात् सुन्दरी नंद से रात-भर न सो पाने का कारण पूछती है। वह रात्रि के अपने व्यवहार के लिए क्षमा याचना भी करती है और कहती है कि- आप सचमुच मुझसे रूष्ट हो जाएं, दो-एक रातें मेरे कक्ष में न आएं, तो कैसा लगेगा।' यहाँ लेखक ने भावी घटना का पूर्वाभास करा दिया है। उसी समय नेपथ्य में प्रभाप की शंख ध्वनि सुनाई देती है। सुन्दरी उठकर दर्पण के समक्ष खड़ी हो जाती है और फिर नंद से कुल पल के लिए बाहर जाने के लिए कहती है ताकि वह अलका की सहायता से अपना अंगार कर सके। सुन्दरी नीहारिका नामक दासी से अलका के विषय में पूछती है। नीहारिका बताती है कि वह श्यामाँग हेतु दवाई लाने के लिए वैद्यराज के पास गई है, आप कहे तो मैं उसे बुला लाऊँ। सुन्दरी कहती है कि नही, अलका को श्यामाँग का उपचार करने दे, मै अपना प्रसाधन स्वंय कर लूँगी। सुन्दरी अपने चेहरे को घुमा-फिराकर दर्पण में देखती है, फिर प्रसाधन सामग्री को सहेजती हुई एक बार नंद की ओर देख लेती है और मुस्कुराकर वाल्मीकि की पंक्ति गुनगुनाने लगती है। नंद बाहर खड़े घने जंगल की ओर देख रहे थे, तभी सुन्दरी कहने लगी कि प्रातः होते ही फिर आखेट का उत्साह जाग आया । नन्द को पहले दिन आखेट में मरे हुए मृग का स्मरण होता है और वह कहता है-"वहाँ पड़ा हुआ वह कल कैसा लग रहा था और न जाने क्यों इस प्रभात का फीका चाँद भी मुझे कुछ वैसा ही लगा... कोमल, अक्षत और निर्जीव।" मृग का प्रसंग कथानक के विकास में, नन्द के अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट करने और उसके मन में बौद्ध मतानुसार अहिंसा की स्थिति की विद्यमानता को प्रकट करने आदि की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।

सुन्दरी नंद से कहती है कि नंद तुम्हें कामोत्सव को भूला देना चाहिए और उसको कभी न यदि करना चाहिए। वह नंद से आग्रह करती है कि वे कुछ समय दर्पण लेकर उसके समक्ष खड़े हो जाएं ताकि वह अपना श्रंगार कर सके। वह चन्दन के लेप की कटोरी लेकर अपना विशेषक बनाने लगती है। उसी क्षण भिक्षुआ का समवेत स्वर सुनाई देने लगता है-**धम्म शरणं गच्छामि, संध शरणं गच्छामि, बद्ध शरणं गच्छामि....।** इस स्वर को सुनकर नन्द इतना विचलित हो उठा कि उसके हाथ से दर्पण हिल गया। नंद दर्पण के न हिलने का आश्वासन देता है, लेकिन तभी उसकी सांस से वह धुंधला हो जाता है। क्रोधित सुन्दरी नन्द से कहती है कि दर्पण को रख दीजिए, अब मुझे विशेषक नहीं बनाना। उसी समय भिक्षुओं का समवेत स्वर बहुत पास आकर एकाएक रूक जाता है। स्वर के रूकते ही दर्पण नंद के हाथ संभल न पाने के कारण नीचे गिरकर टुट जाता है। यह दृश्य देख सुन्दरी चौंक उठती है और नन्द स्तब्ध-सा पहले सुन्दरी की ओर फिर टूटे हुए दर्पण को देखने लग जाता है। भिक्षुओं और भिक्षुणियों का समवेत स्वर पुनः सुनाई देने लग जाता है और फिर वही समवेत स्वर क्रमशः दूर होता हुआ मौन हो जाता है। इसी संदर्भ में सुन्दरी नंद से पूछती है "जानना चाहती हूँ कि क्या दर्पण का टूटना सचमुच अकारण ही था या उस समय आप कोई और बात सोच रहे थे?' सुन्दरी ही अपने प्रश्न के स्पष्टीकरण में उत्तर देते हुए कहती है"आप उस समय यह नही सोच रहे थे कि भिक्षुओं की मंडली में शायद वे भी होंगे....शायद आपसे भिक्षा लेने के लिए ही वे इस द्वार रूकी होगी?' वह टूटे दर्पण में अपना टूटा प्रतिबिम्ब देखकर।... ये दो भागों में बँटा हुआ सीमांत, खंडित मस्तक, खंडित चेहरा, खंडित....।" और सचमुच ही सुन्दरी का व्यक्तित्व, जीवन तथा विश्वास, उसके रूप यौवन एवं यक्षिणी होने का गर्व खंडित हो जाता है।

नन्द सुन्दरी का प्रसाधन करने के लिए ज्यों ही चन्दन के लेप से माथे पर विशेषक बनाने लगता है, तभी वायु के तीव्र गति के झोंके से दरवाजा एक बार खुलता और फिर पुनः बन्द हो जाता है। तभी

टिप्पणी

अलका अन्दर आकर नन्द को सूचना देती है कि भवन के द्वार पर स्वयं गौतम बुद्ध भिक्षा के लिए आए थे, उन्होंने आवाज लगाई, कुछ क्षण रूके और फिर उच्च भवन की खिड़कियों की ओर निहारे तथा बिना भिक्षा पाए लौट गए। उनका नन्द के भवन की खिड़कियों की ओर देखना वास्तव में नन्द को अपने मार्ग का अनुगामी बनने का आह्ववान है। नन्द की अन्तर्द्वन्द्व में उलझी आत्मचेतना वास्तव में उस आह्यवान को सुन सकती है और वह सुन्दरी से कह उठता है "तुम्हें यह नहीं लगता कि मुझे जाकर एक बार उनसे इस प्रमाद के लिए क्षमा याचना करनी चाहिए।" सुन्दरी इस वचन-बद्धता के साथ नन्द को जाने देती है कि वे लौट कर स्वयं ही इस विशेषक को पूरा करेंगे। वह कहती है कि आप के द्वारा लगाए गए उस बिन्दु को सूखने नहीं दूंगी। जब आप लौट आएंगे, तभी सम्पूर्ण प्रसाधन करूँगी और तभी अपनी केश राशि को बाँधूगी। नन्द कभी लौटकर न आने के लिए चला जाता है। नेपथ्य से श्यामाँग का ज्वर-प्रलाप सुनाई देता रहता है।

तृतीय अंक

इस अंक का आरम्भ नन्द के भवन और सुन्दरी के कक्ष से ही होता है। उनका कक्ष अव्यवस्थित दिखाई देता है। दीपाधारों के सभी दीपक जल रहे हैं, लेकिन फिर भी एक सूनेपन का आभास होता है। सुन्दरी को सूचना मिलती है कि कमल-ताल के राजहंस अचानक उड़कर कहीं चले गए हैं। हंसों का कमल-ताल से उड़ जाना वास्तव में प्रतीक प्रयोग है और भावी घटनाओं का सूचक भी है वह ऐसी घटनाओं का सूचक है जो कमल-ताल से सहसा हंस-युगल के उड़ जाने के समान असंभावित नहीं, हाँ अविज्ञान और आश्चर्यप्रद अवश्य हैं। आश्चर्य और अविज्ञान स्थिति के कारण सुन्दरी कहती है "मैं अब भी नहीं सोच पा रही कि यह हुआ कैसे ...राजहंस स्वयं उड़कर चले गये, इससे भी विश्वास नहीं होता...और यह भी मन नहीं मानता कि किसी ने उन्हें....।" अलका कहती है कि जिस एक व्यक्ति पर सन्देह होता है तो वह ज्वर ग्रस्त है तथा सारा दिन कक्ष से बाहर भी नहीं गया। अलका सुन्दरी से पूछती है कि आपको श्यामाँग पर सन्देह नहीं हैं तो फिर आप क्या सोच रहीं हैं। सन्दरी कहती है, "...परन्तु फिर भी यह विचार आता है कि राजहंस आहत थे ... कम स कम एक अवश्य था। कल कैसा क्रंदन उसका सुना था? यहाँ प्रतीकात्मक रूप से वह आहत एवं राजहंस स्वय नन्द ही था और मृग-प्रसंग के रूप में उसी का क्रन्दन कल सुन्दरी ने सुना था। सुन्दरी आगे कहती है,क्या उनके पंखों में इतनी शक्ति नहीं होगी कि अपनी इच्छा से उड़कर चले जाते?" अविज्ञात रूप से यह आक्रोश और आश्चर्य नन्द के प्रति उसके स्नेह पाश को तोड़कर मुक्ति मार्ग नहीं अपना सकता। कारण स्पष्ट है, "और जिस ताल में इतने दिनों से थे, उसका अभ्यास, उसका आकर्षण...क्या इतनी आसानी से छट सक था?"

अलका सुन्दरी को प्रसाधन करने के लिए कहती है, लेकिन सुन्दरी उसे डांटती हुई कहती है कि उसे कोई प्रसाधन नहीं करना है। अलका अपराध भाव से आँखे झुकाए अपने स्थान पर खड़ी रहती है। सुन्दरी का विक्षुब्ध अन्तराल पर विरोधाभास के रूप में इन शब्दों में प्रस्फुटित हो उठता है। "तू समझती है कि मैं उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रही होती, तो अपने माथे का विशेषक, यह बिन्दु, सूख जाने न देती। परन्तु जितना समय इसे गीला रहना चाहिए था, उससे कही अधिक समय मैंने इसे गीला रखा। एक पहर, दो पहर, तीन पहर। हर बीतता हुआ क्षण मेरे प्रयत्न का उपहास उड़ाता था, फिर भी मैं अपने अन्दर के विरोध से लड़ती रही, मन के विद्रोह से किसी तरह समझाती रही, परन्तु एक क्षण आया जब वह प्रयत्न मन से हार गया मेरा गीला हाथ माथे तक जाकर लौट आया और मैंने उसे फिर गीला नहीं किया।" वह नन्द की प्रतीक्षा करते-करते थक जाती है और नन्द पर जो विश्वास उसने किया था, घह भी खत्म हो जाता है।

टिप्पणी

इसलिए तो वह कहती है-"अब मुझे प्रतीक्षा नहीं हैं अलका। मैं अपने स्वाभिमान को ओर नहीं छल सकती।" मैं नन्द को नहीं-तल पर जाने से रोक भी सकती थी, यह मेरी दुर्बलता ही सिद्ध होती। सुन्दरी झूले पर बैठ जाती है और अलका उसके मस्तक पर सुगन्धित जल लगाने लगती है और उससे अनुरोध करती है कि वह इसी झूले पर लेट जाए जाकि नींद आने से मन स्वस्थ हो सके। अलका यह भी कहती है कि किसी व्यक्ति को भेजकर नन्द का पता लगवाऊँ, लेकिन सुन्दरी मना कर देती है। सुन्दरी के निद्रामग्न होने के पश्चात् अलका कक्ष से बाहर आ जाती है और नीहारिका से धीमे स्वर में कहती है यदि श्वेतॉग लौट आया हो तो उसे भेज देना। कुछ समय पश्चात् श्वेताँग कक्ष में प्रवेश करता है तो अलका मन्द स्वर में उससे पूछती है कि वह नन्द से मिला? नन्द नदी-तल से चले गए थे, किधर गए इसका ठीक से पता नहीं चल सका। हाँ, इतना पता अवश्य लगा है कि बहुत देर तक तो वे तथागत के पास थे। जिस समय नन्द वहाँ पहुँचा था, उस समय तथागत बहुत से लोगों से घिरे हुए थे, अत: काफी देर तक नन्द उनके समक्ष नहीं पहुँच सके। अन्त में मिलने का अवसर मिला तो उन्होंने तथागत को प्रणाम करके अपने यहाँ आतिथ्य स्वीकार करने को कहा। तथागत ने उत्तर न देकर अपना भिक्षा पात्र कुमार के हाथों में दे दिया और अव्यवस्थित नन्द भिक्षा पात्र हाथ में लिए हुए ही वहाँ से लौटकर यहाँ आने लगे कि तभी बुद्ध उन्हें रोककर विहार में ले गए। सुना हैं वहाँ जाकर तथागत ने नन्द को उपदेश दिया और भिक्षुआनंद से उसे दीक्षा लेने को कहा। कुमार के विरोध करने पर भी उनके केश काट दिए गए। जब वे वहाँ से उठकर चले तो इतने विक्षुब्ध थे कि जैसे किसी से जूझना चाहते हों, लेकिन जूझ न पाएं हो। लोगों का कहना है कि उसके बाद वे धने जंगल की तरफ चले गए। श्वेताँग कहने लगा कि एक बार सोचा कि आर्य मैत्रेय को साथ लेकर उन्हें ढूँढने जाऊँ, परन्तु उन्होंने भी आप दीक्षा ग्रहण कर ली हैं। श्वेताँग नन्द की खोज करने के लिए सुन्दरी से आज्ञा लेना चाहता है। ज्यों ही अलका सुन्दरी से इस विषय में बात करने जाती हैं तो तभी नन्द की ध्वनि उसे रोक देती है। नन्द कहता है कि उसे सोने दे, जगाओ मत। अलका नन्द का वेश देखकर चिन्तित हो उठती है, क्योंकि नन्द के सिर पर केश नहीं हैं और उनका सम्पूर्ण शरीर भी सिंह से जूझने के कारण क्षत-विक्षत हो चुका है। नन्द अपने साथ आए हुए आनन्द को अपना घर, पत्नी व उसका कक्ष दिखाता है, लेकिन भिक्षु आनन्द इस पर कोई आश्चर्य प्रकट नहीं करता भिक्षु आनन्द नन्द से तर्क-वितर्क करते हुए उस पर व्यंग्य से प्रहार भी करता है। दीक्षा लेकर भी नन्द का मन दीक्षित नहीं हो पाता। भिक्षु आनन्द का अनवरत साथ लगे रहना भी उसे प्रभावित नहीं कर पाता। नन्द स्पष्ट कहता है "स्वर्ग और नरक, बैराग्य ओर विवेक, शील और संयम, आर्य सत्य और अर्मत मैं जानता हूँ, वाणी के छल से तुम मुझे किस ओर ले जाना चाहते हो। मैं तथागत के सामने कह चुका हूँ कि वह दिशा मेरी नहीं हैं, कदापि नहीं है।"

भिक्षु आनन्द के चले जाने के बाद भी नन्द का मन शान्त एवं स्थिर नहीं हो पाता। वह सो रही सुन्दरी को देखकर कहता है "अच्छा है तुम सो रही हो। जाग रही होती, तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर शायद मैं न दे पाता।..... मैंने कहा था तुम्हारा विशेषक सूखने से पहले मैं लौट आउँगा, परन्तु नहीं आ सकाश' नन्द व्याघ्र से भिड़ने की घटना बताता है। वह गौतम बुद्ध पर आक्षेप करते हुए कहता है "उन्होंने केश कटवा दिए, तो क्या व्यक्ति रूप में मैं अधिक सत्य हो गया? जि हवा कटवा देते, हाथ-पैर कटवा देते तो और अधिक सत्य हो जाता। कौन कह सकता है कि भांति वस्तुत: किसे हैं, उन्हें या मुझे?' भिक्षु आनन्द उसे जाते-जाते एक बात कह जाता है कि जो व्यक्ति तुम्हारे किसी भी प्रश्न का उत्तर दे सकता है, वह मैं नहीं है, बल्कि वह तुम्हारा अन्तर्मन है। नन्द सुन्दरी के पास आकर देखता है कि उसका विशेषक सूख चुका है, अत: शृंगार कोष के पास जाकर वहाँ से चन्दन लेप की कटोरी उठा लाता है और उंगली पर थोड़ा सा लेप लेकर उससे सुन्दरी के माथे पर हल्का-सा बिन्दु लगाने लगता

टिप्पणी

है। उसी क्षण सुन्दरी जाग जाती है। अपने मुख पर झुकी हुई मुंडित आकृति को देखकर उसके मुँह से चीख निकल पड़ती है। और वह डरकर आँखों पर हाथ रख लेती है। चीख सुनकर अलका, नीहारिका और श्वेताँग धबराए हुए आते हैं। नन्द अव्यवस्थित सा होकर दाई ओर के द्वार से चला जाता है। तभी अलका श्वेताँग से कुमार के कक्ष में नहाने की व्यवस्था करने के लिए कहती है। यह सुनकर सन्दरी को शंका हो जाती है कि जिस आकृति से मैं इतनी डर गयी थी वह नन्द ही था।

सुन्दरी बिना विलम्ब किए नन्द के कक्ष में प्रवेश करती है, लेकिन तभी नैपठय से नहीं...नहीं, यह संभव नहीं... का स्वर सुनाई देता है। सुन्दरी अलका से कहती है कि तुमने मुझे बताया क्यों नहीं कि जो मैंने देखा था वह स्वप्न नहीं सत्य था। "क्या अब तू मुझे यह विश्वास दिलाना चाहेगी कि मैं जागती आँखों से भी सपना देखकर आई हूँ। नन्द और सुन्दरी के मध्य वार्तालाप होता है। नन्द कहता है ... "अब लगता है कि केश काटकर उन्होंने मुझे बहुत अकेला कर दिया है। घर से ... और अपने आप से भी अकेला। जिस सामर्थ्य और विश्वास के बल पर जी रहा था, उसी के सामने असमर्थ और असहाय बनाकर फेंक दिया गया है।' इसके बाद वह यह कहते हुए बाहर चला जाता है कि वह अपने केशों को वापिस लेने पुनः गौतम बुद्ध के पास जा रहा है। जब सुन्दरी नन्द के विषय में पूछती है तो श्वेताँग केश वाली बात को बताते हुए कहता है कि कुमार यह कहकर चले गए कि "वे अपने केशों की खोज में जा रहे हैं।" जाकर तथागत से पूछना हते हैं कि उन्होंने उनके केशों का कया किया? यदि कुछ नहीं किया, तो कया उनके केश उन्हें लौटाये जा सकते हैं। उनकी पत्नी को उन केशों की आवश्यकता है.....। यह सुनकर इतनी जड़-सी हो जाती है कि उसके मुंह से एक ही वाक्य निकल पाता है "इतना ही तो समझ पाते हैं ये लोग। बस इतनी ही तो इनकी समझ में आ पाता है।" सुन्दरी हाथों में सिर छुपाए हुए वहीं आसन पर बैठ जाती है। नेपठय से श्यामाँग को प्रलापमयी ध्वनि पुनः सुनाई देती है। क्षण-भर में ही नेपथ्य का स्वर और मंच की आकृति दोनों साथ-साथ विलीन हो जाते है।

अतः कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि लहरों का राजहंस नाटक की कथ्य-योजना ऐतिहासिक होते हुए भी आधुनिक संदभों को बड़ी गहराई के साथ अपने अन्तराल में संजोए हुए हैं।

2.3 लहरों के राजहंस -प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दर्शन

प्रस्तुत नाटक में मूलतः व्यक्ति की द्वन्द्वात्मक चेतना की स्थिति को व्यंजित किया गया है। यहाँ दर्शन का प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है, क्योंकि नन्द का मन दो प्रकार के दर्शनों के बची आकर्षण एवं विकर्षण में फंसा हुआ है। एक ओर सुन्दरी के रूप में प्रवृत्ति मूलक दर्शन है तो दूसरी ओर गौतम बुद्ध का निवृत्ति मूलक दर्शन है। यह उसका आसक्ति अनासक्ति का द्वन्द्व है। क्योंकि जब गौतम बुद्ध ज्ञान प्राप्त करने के बाद अपने नव्य मत, दर्शन, सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करते हुए अपनी ही जन्मभूमि कपिलवस्तु में पहँचे और उपदेश देने लगे तो उनसे प्रभावित होकर उन्हीं की जाति के अनेक भाई दीक्षा ग्रहण कर लगे। किन्तु गौतम बुद्ध का अपना ही भाई नन्द अपनी पत्नी सुन्दरी के अनुपम सौन्दर्य के रूप-जाल फंसा हआ था। वह उनसे मुक्त न हो रहा था। वह गौतम बुद्ध के हत्याग से लेकर बुद्ध बनने तक कि प्रकिन से परिचित था और उनके बढ़ते प्रभाव से भी भाति-भाँति परिचित था। इतना ही नहीं, वह स्वयं भी बद्ध के नव्य दर्शन से प्रभावित और आकर्षित था। इस सम्बन्ध में डॉ. सुरेश अवस्थी का कहना है लेकिन का मन स्थिर भाव से सुन्दरी का रूप भोग नहीं कर पाता, क्योकि कहीं भीतर उसके मन में अस्थल और असंसारी तत्वों के प्रति भी आकर्षण है। उसके मन का यही संस्कार और उसका शोषित करने वाली बात परिस्थितियाँ नाटक के द्वन्द्व का आधार है। वास्तव में यह द्वन्द्व प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्गों का ही द्वन्द्व है। पर मार्ग नन्द को अपनी पत्नी सुन्दरी की ओर आकर्षित करता है

टिप्पणी

तो निवृत्ति मार्ग गौतम बुद्ध के जीवन दर्शनी ओर आकर्षित करता है। यह द्वन्द्व उस समय और अधिक प्रबल हो उठता है, जब बुद्ध भिक्षा के लिए नन्त के द्वार पर आकर उपेक्षित खाली हाथ लौट जाते हैं, जब अलका द्वारा उनके लौट जाने का समाचार सनकर नट क्षमा याचना के लिए जाने को अत्यधिक व्यग्र एवं बेचौन हो उठता है। बुद्ध शरणां गच्छामि' का स्वर घोष सुनकर नन्द के हाथों में थामे हुए दर्पण को गिरकर टूटना उसी विवशता का द्योतक है। अत: दर्पण का टूटना प्रवृति-दर्शन का टूटना है। इसी प्रकार कमल ताल में (बुद्ध) की छाया दिखना प्रवृत्ति मार्ग पर निवृत्ति मार्ग का क्रमश: हावी होना निवत्ति प्रवृत्ति दोनों पक्षों के समानान्तर रूप से प्रदर्शित होने के प्रतीक दार्शनिक पहलू ही है। इन दोनों दर्शनों का संघर्ष नाटक में अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है। अपनी ही थकान क्लान्ति से मृग के मर जाने की नन्द द्वारा बार-बार चर्चा करना और नन्द के दीक्षित हो जाने एवं केश कर्तन के बाद जंगल में जाकर व्याघ्र से भिड़ जाने की घटना आदि प्रसंगों में ही प्रवृत्ति एवं निवत्ति दर्शन का परस्पर संघर्ष का ही रूपायन है। जब नन्द केश कर्तन के पश्चात् घर आता है और अपनी विवशता पर पश्चाताप करता है। तब भी इन दोनों ही दर्शनों का द्वन्द्व स्पष्ट झलकता है। उदाहरणत:

उस समय मैं इतना सत्वहीन क्यों हो गया कि भिक्षु आनन्द के कर्तनी उठाने पर चिल्ला नहीं सका कि-ष्यह विश्वास मेरा नहीं है। "मैं तुम्हारा या किसी और का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता, नहीं जीना चाहता ।" ... सुख सुख नहीं हैं, काई पर फिसलते हुए पांव का एक स्पन्दन मात्र रेत में डूबती हुई बूंद की एक अकुलाहट ... परन्तु वह स्पन्दन, वह अकुलाहट ही क्या जीवन का पूरा अर्थ, जी लेने का कुल पुरस्कार नहीं हैं। आकाश में कहीं लटके हुए नीले बिन्दू ... कोरे सिद्धान्तों के व अधिक स्थाई, अधिक सत्य कैसे हैं? उन्होंने केश कटवा दिए, तो क्या व्यक्ति रूप में मैं अधिक सत्य हो गया? जि हवा कटवा देते, हाथ-पैर कटवा देते, तो और अधिक सत्य हो आता। कौन कह सकता है कि भ्रांति वस्तुत: किसे है; उन्हें या मुझे।

इस प्रकार नन्द प्रवृत्ति मूलक दर्शनों के बीच द्वन्द्वात्मक स्थिति में रहता हैं। वह गौतम बुद्ध के पास क्षमा-याचना के लिए गया परन्तु उन्होंने उसके केश कटवाकर उसे बौद्धतम में दीक्षित कर दिया। लेकिन उसके द्वन्द्व का निवारण न हो सका। तभी वे वह विक्षुब्ध ही कह उठता हैं; "जिस सामर्थ्य और विश्वास के बल पर जी रहा था, उसी के सामने मुझे असर्मथ और असहाय बनाकर फेंक दिया गया है।" भले ही नन्द ने निवृत्त मार्ग का विवशतावश अपनाया हो, किन्तु इतिहास इस बात का प्रमाण हैं कि उसने निवृत्ति मार्ग का अपनाया और यह भी सत्य है कि उसने प्रवृत्ति मार्ग को छोड़कर ही निवृत्ति मार्ग का अपनाया था। हाँ, यह दूसरी बात है कि लेखक ने प्रवृत्ति मार्ग को सहारा दिया हैं।

दूसरी ओर सुन्दरी प्रारम्भ में पूर्णत: प्रवृत्ति माग में दिखाई देती है। वह जीवन के सुधा को भोगना चाहती है और उसे ही श्रेयस्कर मानती है उस पर भोगवाद हावी है। इसी कारण वह गौतम बुद्ध और यशोध रा पर अनेक अशिस्ट आरोप लगाती है। भोगवादी प्रवृत्ति के ही कारण वह उसी दिन कामोत्सव का आयोजन करती है, जिस दिन यशोधरा बौद्धमत में दीक्षित होने वाली थी। लेकिन उसे समाचार मिलता है कि कामोत्सव में नियन्त्रित एक भी अतिथि नहीं आया।

सुन्दरी संध्या-वेला में कमल ताल में हंसों का कलरव सुनती हुई और वह अपनी भोगवादी प्रवृत्ति का परिचय देती हुई गौतम बुद्ध पर व्यंग्य करती हैं "कोई गौतम बुद्ध से कहे कि कभी कमलताल के पास आकर इनसे भी निर्वाण और अमरत्व की बात कहे।" यहाँ सुन्दरी अपने भोगवादी दर्शन द्वारा निवृत्ति मार्ग पर प्रहार करती हुई प्रतीत होती है। वह नन्द की तरह द्वन्द्वात्मक स्थिति में नही हैं। वह स्पष्टत: और पूर्णत: प्रवृत्ति मार्गी है। किन्तु उसे हम **"खाओ-पिओ करो आनन्द, भाड़ में जाये परमानन्द"** अथवा **"यावत् जीवेत् सखं जीवे', ऋणं कृत्वा घतं पिवेत्"** वाला चार दर्शन तो नहीं कह सकते,

टिप्पणी

पर उसे आधुनिक भौतिकवादी मार्क्स दर्शन की प्रतिनिधि और साथ ही भोगवाद की अनुसरणी भी कह सकते हैं। उनके जीवन में इस दर्शन की चरम परिणति तब देखी जा सकती है जब दीक्षित होने पर नन्द घर लौटता है और सुन्दरी के माथे पर लगे सूखे बिन्दु को गीला करने के लिए झुकता है तो वह चौंककर जाग उठती हैं। वह नन्द को केश कर्तित देख वितृष्णा से भर जाती है और अलका से कह उठती हैं

"वे लौट आए हैं!... फिर ऐसा... भयानक सपना मैंने क्यों देशा?... देखा कि मैं झूले में पड़ी हूँ... सहसा एक ठण्डे स्पर्श से आँखे खुल जाती हैं। आँख खुलते ही (सिहरकर)... देखती हूँ कि एक रूण्ड-मुण्ड आकृत्ति मेरे ऊपर झुकी हुई है, उसका हाथ मेरे हाथ पर है...तभी मेरे मुख से चीख निकल जाती है, और मैं...मैं सचमुच जाग उठती हूँ।" और जब उसे ज्ञात होता है कि उसके स्वप्न ने यर्थाथ रूप में उसके घर में प्रवेश किया है, अर्थात् नन्द वास्तव में बौद्धमत में दीक्षित होकर घर लौटा है तो वह अलका से कहती है "वह आकृति एक दु:स्वप्न नहीं...यर्थाथ हैं...मेरा अपना यर्थाथ...क्या मैं उसका सामना कर सकती हूँ?" वह फिर भी अपने प्रवृति मार्ग से विचलित नहीं होती और नन्द को पहले वाले नन्द से भिन्न मानती हुइ कहती हैं "वे नहीं आये, अलका! जो लौटकर आया है, वह व्यक्ति कोई दूसरा ही हैं...कोई दूसरा ही...।"

नन्द आड़ में खड़ा होकर यह सुन तो लेता है लेकिन सन्न रह जाता है उसे भ्रम है कि वह सचमुच नन्द नहीं हैं, क्या वह सचमुच में अपने पूर्व रूप को कहीं खो आया है "कोई दूसरा ही...तो क्या सचमुच मैं कोई दूसरा ही हूँ? भिक्षु ने यही कहा था...तुम भी अब यही कह रही हो! परन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि मैं कोई दूसरा कैसे हूँ! मात्र इसलिए कि किसी ने हठ से मेरे केश काट दिए हैं? यहाँ एक ही कोण पर दो दर्शन टकराते हैं। दोनों से एक ही ध्वनि मुखरित हो रही हैं। .... तुम वह नहीं हो.... तुम वह नहीं हो।" ' इस एक ही ध्वनि से दो मार्ग अलग-अलग हो रहे हैं। एक ओर आधुनिक भौतिक दर्शन हैं तो दूसरे ओर बुद्ध दर्शन का निवृति मार्ग। प्रश्न उठता हैं इनमें सत्य कौन-सा है। इसका उत्तर नाटककार ने नहीं दिया। तभी तो अव्यवस्थित नन्द को कहना पड़ता हैं।

"लगता है मैं चौराहे पर खड़ा नंगा व्यक्ति हूँ, जिसे सभी दिशाएं लील लेना चाहती हैं और अपने को ढकने के लिए उसके पास आवरण नहीं।" वास्तव में भौतिकता से ग्रस्त नम्न चेतना को ढकने के लिए कोई आवरण नहीं हैं। केवल द्वन्द्व है, छटपटाहट है और यह द्वन्द्व नन्द का हैं। एक ओर नन्द रात्रि भर अपनी मानसिक उलझन में फंसा हैं तो दूसरी ओर उसकी उलझन को बढ़ाने एवं व्यक्त में श्यामांग का प्रलाप सहयोग करता हैं कोई स्वर नही हैं...कोई किरण नहीं है...सब कुछ लेने दो...सुलझा लेने दो...नहीं तो अपने हाथों का मैं क्या करूँगा! कोई उपाया नहीं है...कोई मार्ग नहीं हैं...इन लहरों पर से...लहरों पर से...वह छाया हटा दो... मुझसे यह छाया नहीं ओढ़ी जाती...। स्वर नहीं हैं...कहीं कोई स्वर नहीं है...इस अंधकूप में में सब कुछ खो गया है .... मेरा स्वर .... पानी के लहरों का स्वर ..... सब कुछ एक आवर्त में घूम रहा है...एक चील...सब-कुछ झपटकर लिये जा रही है...इसे रोको...इसे रोको...।"

देखा जाए तो नन्द की अनवरत रूप से यही तड़प है "परन्तु मैं इस असहायता की स्थिति में नहीं रह सकता।... तब प्रश्न उन्होंने पूछे थे... अब मुझे ताकर उनसे कई-कई प्रश्न पूछने होंगे।" परन्तु वह प्रश्न क्या हैं? शायद द्वन्द्वग्रस्त भौतिक चेतना को नहीं पता, क्योंकि उसका जीवन निर्लक्ष्य सा रहता है। तभी तो व्याघ्र से लड़कर भी नन्द के मन को शन्ति नहीं मिली...लगता है अभी और लड़ना है, बडुत लड़ना है...ऐसे किसी से जिसके पास लड़ने के लिए भुजाएं नहीं हैं। निसंन्देह उसका संकेत बुद्ध के निवृत्ति मार्ग की ओर ही है। जिसमें व्यर्थ के संघर्ष के लिए स्थान नहीं है। यह चेतना की द्वन्द्वात्मक स्थिति ही है "अस्तित्व और अनिस्तित्व के बीच मेरी चेतना को एक प्रश्न चिन्ह...केवल एक प्रश्न चिन्ह बनाकर

टिप्पणी

छोड़ दिया गया है।...क्यों...? इस क्यों का उत्तर भौतिक जगत के सूनेपन में हैं। क्योंकि सूने कमलताल के हंस (दार्शनिक शब्दावली में हंस आत्मा एवं निर्मल चेतना का प्रतीक है) उड़ चुके हैं अर्थात् नन्द भी उड़ चुका हैं इसी कारण सुन्दरी के लिए "लगता है आज घर अपना नहीं रहा...' अत: भौतिक सत्य सही है कि "आज घर अपना नहीं रहा...।" इस तथ्य को नन्द एवं सुन्दरी दोनों ही समझ जाते हैं।

वैसे इतना तो निश्चित हैं कि इस नाटक में कोई निश्चित दर्शन प्रतिपादित नहीं हुआ है। यहाँ तो आधुनिक भौतिक जीवन-दर्शन और बौद्ध-दर्शन का द्वन्द्वात्मक मानसिक संघर्ष ही चित्रित किया गया है। अगर दार्शनिक दृष्टि से देखें तो इसमें प्रवृत्ति दर्शनों का द्वन्द्व ही प्रतिपादित हुआ है। इन्हीं दर्शनों के अन्तर्द्वन्द्व को दो समानान्तर स्तरों पर व्यक्त किया हैं। यह परिणति ही नाटकीय संचरण में वेदना को तीव्रता एवं गहराई प्रदान करती है। नाटककार का उद्देश्य किसी विशेष दर्शन को व्यक्त करना नहीं है। उसका उद्देश्य तो दो दर्शनों में उलझी हुई चेतना को स्थापित करना है और रूपायन विविध भाव-भंगिमाओं के साथ हुआ है। स्वयं नाटककार भी यहीं स्वीकारता है- नन्द और सुन्दरो की कथा एक आश्रय मात्र है, क्योंकि मुझे लगा कि इसे समय में परिक्षेपित किया जा सकता हैं। इसी कारण नाटक का मूल अन्तर्द्वन्द्व आधुनिक मानव को दर्शनों में उलझी चेतनाओं का द्वन्द्व मात्र ही है। किसी दर्शन विशेष का प्रतिष्ठापन या आस्था की अन्तिम अभिव्यक्ति अथवा परिणति नहीं।"

सुन्दरी का व्यक्तित्व नाटक के आरम्भ से ही चार्वाक दर्शन या प्रवत्ति मार्ग से प्रभावित दिखाई देता है और अन्त तक वह इसी पर अडिग रहती है। वह आरम्भ में ही कामोत्सव की तैयारी में तत्परता से लगी दिखाई देती है। वह इस आयोजन की छाप लोगों पर छोड़ना चाहती हैं। आधुनिकता के परिवेश में एक भौतिकता के प्रभाव में आज की नारी भी यहीं चाहती है। सुन्दरी भी यही चाहती है इसकी कारण वह अलका से कहती हैं

"रात बीतने दे, फिर अपने मन से पूछना। रातभर नगरवधू चन्द्रिका के अवरणों की गति से इस कथा की हवा कांपती रहेंगी और लटकती रहेगी, उसकी आखों से, उसके एक-एक अंग की गोराई से। कपिलवस्तु के राजपुरूष रातभर उस मदिरा में और अन्याय मणि-मन्दिराओं में डूबते-उतरते रहेंगे। तू देखेगी और विश्वास नहीं कर सकेगी, जो नहीं देखेंगे, वे तो कल्पना भी नहीं कर पाएंगे ।"

यहाँ प्रवत्ति मार्ग के प्रति आग्रह दिखाई देता है। परन्तु इस प्रवृत्ति मार्ग के साथ संशय का भाव भी जुड़ा हुआ है। शायद यह संशय का भाव ही इसकी दुर्बलता हैं। यही भाव अलका व्यक्त करती है "सूखा सरोवर, पत्रहीन वक्ष और घूल भरा आकाश।" फिर सुन्दरी भी कहती है "यह भरा-पूरा यौवन और हृदय में धल-भरा आकाश...कहीं यह न हो कि तू भी कल भिक्षुणी का वेश धारण करने की सोचने लगे।" वास्तव में प्रवत्ति मार्ग में संशयास्पद एवं आशंकाओं की स्थिति हमेश मनी रहती है। अत: एक साथ दो-दो धाराएं प्रवाहित होती हैं श्यामांग के शब्दों में "पिछले बसन्त में आम कैसे बौराये थे। पेड़ों की डालियाँ अपने आप पल्लों पर झुक जाती थीं।...परन्तु तब यहाँ कामोत्सव का आयोजन नहीं किया गया। आयोजन किया गया है इस बार...जब आम के वृक्षों ने भिक्षुओं का वेश धारण कर रखा है।...कल प्रात: देवी यशोधरा भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ग्रहण करेंगी और यहाँ...रातभर नृत्य होगा, आपानर चलेगा...।"

श्यामाँग की चेतना की यह विरोधात्मक स्थिति दार्शनिक द्वन्द्व की ही स्थिति हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि प्रवृत्ति मार्ग मानव चेतना को प्रतिक्रियावादी और ईष्यालु बना देता है। तभी तो सुन्दरी ठीक उसी दिन कामोत्सव करने की सोचती है जिस दिन यशोधरा बौद्धमत की दीक्षा लेना चाहती हैं। यहीं नहीं प्रवृत्ति मार्ग (सुन्दरी) से निवृत्ति मार्ग का उपहास भी उड़ाया गया है। माना अभिप्राय यही है कि देवी यशोधरा का आकर्षण यदि राजकुमार सिद्धार्थ को बांधकर अपने पास रख सकता, तो क्या वे आज राजकुमार सिद्धार्थ ही न होते। गौतम बुद्ध बनकर नहीं तट पर लोगों को उपदेश दे रहे होते?

टिप्पणी

एक और बात कि यह प्रवृत्ति मार्ग व्यक्ति को अहंकारी भी बनाता है। सुन्दरी वम्तव्य में यह अंहकार स्पष्ट झलकता हैं "नारी का आकर्षण पुरूष को पुरूष बनाता है, तो उसका आकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।" इसी प्रकार वह एक स्थल पर कहती हैं "पर मैं कहती हूँ कि कामनाओं को जीता जाए, यह भी क्या मन की एक कामना नहीं है। और ऐसी कामना किसी के मन में क्यों जागती है? इसका उत्तर स्वयं ही देती हुई सुन्दरी अलका से कहती भी है।

"इसका अर्थ इतना ही हैं अलका, कि बहुत दिन एकसार जीवन बिताकर लोग अपने से ऊब जाते हैं। तब जहां कुछ भी नवीनता दिखाई दे, वे उसी ओर उमड़ पड़ते हैं।"

हमारे विचार में सभी दर्शनों का आधारभूत तत्व यह नत्यान्वेषिणी मानव प्रकृति ही है। **लहरों के राजहंस'** में मोहन राकेश की जीवन-दर्शन सम्बन्धी चेतना है तो बस यही नत्यावेषिणी ही चेतना है। स्वभावत: ही मानव प्रकृति नत्यावेषिणी हैं। इसी कारण अनेकानेक दार्शनिक विचारधाराओं के होते हुए भी नित नए दर्शन सामने आते रहते हैं। कोई भी नया दर्शन सामने आता है तो मानव की स्थिति कमल ताल पर तैरते-डोलते राजहंस की-सी होती है। सुन्दरी के शब्दों में "कोई गौतम बुद्ध कहें कि कभी कमल ताल के पास आकर राजहंसों से भी वे निर्वाण और अमरतत्व की बात कहें। ये एक बार दृष्टि से उनकी ओर देखेंगे, काँपती हुई लहरें जिधर ले जाएँगी, उधर को तैर जाएँगे।"

'लहरों के राजहंस' में निवृत्तिमूलक भावनाएँ आरम्भ से ही उजागर होने लगती हैं। पहले ही अंक में जब कुमार नन्द आखेट से लौटकर सुन्दरी के कक्ष में आता हैं, तो उसका स्वभाव चंचल रहा होता है, क्योंकि एक आहत मृग की छाया उसके मस्तिष्क पर छायी हुई हैं। नन्द स्वयं कहता है

"हाथ से निकला भी तो नहीं।.... सच, किन उतनी शरीर की नहीं जितनी मन की हैं मन मेरे बाण से आहत नहीं हुआ, इससे मन को इनता खेद नहीं हुआ, जितना उससे .... कि जब थककर लौटने का निश्चय किया तो वही मृग... थोड़ी दूर आगे ..... रास्ते में मरा हुआ दिखाई दे गया।"

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक ने संस्कारगत गर्जी प्रवत्तियों को उभारते हुए दिखाया हैं यह उस समय और अधिक स्पष्ट हो गया है। जब नन्द कहता है

"बाण से क्षत-विक्षत मृग को देखकर मन में कभी कोई अनुभूति नहीं होती, होती भी हैं, तो केवल प्राप्ति की हल्की-सी अनुभूति। परन्तु बिना घाव के अपनी ही क्लान्ति से मरे हुए मृग को देखकर मन में जाने कैसा लगा लौटकर आते हुए अपने आप इतना थका और टूटा हुआ लगने लगा कि..." ।

अत: यह थकान वर्तमान जीवन की थकान हैं। उसकी संवेदनात्मक अनुभूति और दर्शन के अनुरूप है। नन्द द्वारा उस मृग को उठाने से आखेटक को रोक देना, उसे मृत या जीवित स्थिति में पड़े रहने देने की आजा बौद्ध दर्शन के अनुकूल है। मृत-मृत की कचोट भी नन्द को बौद्ध दर्शन की ओर खींचती है। नन्द कहता भी "वहा पड़ा हुआ वह कल कैसा लग रहा था और न जाने क्यों इस समय प्रभाव का फीका चाँद भी मुझे कुछ वैसा ही लगा...कोमल, अक्षत और निर्जीव।"

अत: मृत हिरण की याद, सुन्दरी के प्रसाधन की चेष्टा, बौद्ध नारों का सुनाई देता स्वर, दर्पण का हिलना एवं टूटना आदि सब कुछ व्यक्ति की चेतनागत अस्थिरता को व्यक्त करता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति का अपना अस्तित्व भी टूटा हुआ सा लगता है और वह कमलताल के राजहंसों की भांति उड़ जाता है। फिर वह दिशा खोज करता है। इसी को नाटक में भिक्षु आनन्द प्रकट करता हैं

"तुम अपने लिए दिखा खोज रहे हों, यह व्याकुलता ही वास्तविक आरम्भ हैं। तुम यह जानते हो, इसलिए अपनी व्याकुलता से इतना नहीं लड़ रहे हो।

टिप्पणी

लेकिन व्यक्ति सहज ही हार नहीं मान लेता, वह लड़ता जरूर है। नन्द भी अपने से लड़ने की प्रक्रिया में ही पहले व्याघ्र से लड़ता है और बाद में "मदिरा से लड़ना चाहता हैं, पर लड़ नहीं पाता, क्योंकि उसका जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल रहा है जिसे पलायनवादी भी कह सकते हैं।

लहरों के राजहंस' में मोहन राकेश प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दर्शन को एक साथ व्यक्त करता है। दोनों के बीच व्यक्ति की द्वन्द्वात्मक चेतना को व्यक्त करता है। इसी कारण नाटककारों ने नन्द की चेतना को नाटकांत तक या नन्द की अंतिम परिणति तक उसे द्वन्द्व से मुक्त नहीं होने दिया। वह एक साथ बुद्ध एवं चार्वर के शब्दों में बोलता हैं।

"इतना समझ में आता हैं कि नीचे जाने से जीवन धीर-धीरे चुक जाता है कि हर उन्मेष का परिणाम एक निमेष है और काल के विस्तार में निमेष और उन्मेष दोनों अस्थायी हैं सुख सुख नहीं हैं, काई पर फिसलते हुए पांव का एक स्पन्दन मात्र हैं, मात्र रेत में डूबती हुई बूंद की एक अकुलाहट...परन्तु वह स्पन्दन, वह अकुलाहट ही क्या जीवन का पूरा अर्थ, जी लेने का कुल पुरस्कार नहीं हैं?...आकाश में कहीं लटके हुए नीचे काले बिन्दु-कोरे सिद्धान्तों के वे अधिक स्थायी, अधिक सत्य कैसे हैं?

वह फिर बुद्ध मत से सोचता हुआ कहता है उन्होंने कहा "मैं, मैं नहीं हूँ, तुम तुम नहीं हों, वह वह नहीं हैं...किसी उंगली से आकाश में बनाए गए चित्र हैं जो बनते-बनते साथ ही मिट जाते हैं, जिनका होना न होने से भिन्ना।... श्गर मैं पूछता हूँ कि जब होने न होने में कोई अन्तर नहीं हैं, तो मेरे केश क्यों कटवा दिए?"

इतना तो स्पष्ट कहा जा सकता है कि नाटककार का आग्रह प्रवृत्ति दर्शन के प्रति अधिक हैं। तभी तो कुमार आनन्द कहता हैं।

जिस सामर्थ्य और विश्वास के बल पर जी रहा था, उसी के सामने मुझे असमर्थ और असहाय बनाकर फेंक दिया गया है।...परन्तु मैं इस असहयता की स्थिति में नहीं रह सकता।... जीने की इच्छा को कितने-कितने प्रश्नों के साथ-साथ घेर लिया है।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि **लहरों के राजहंस'** नाटक में राकेश जी ने भले ही किसी विशिष्ट दर्शन को प्रतिपादित न किया हो, लेकिन फिर भी उनका आग्रह निवृत्ति की बजाए प्रवृत्ति मार्ग का रहा है। इन सब बातों के बावजूद राकेश जी का मूल उद्देश्य तो ऐतिहासिक संदर्भ में प्रवृत्ति दर्शनों के बीच मानव-चेतना के शाश्वत द्वन्द्व को व्यक्त करना रहा हैं।

2.4 नाम की सार्थकता

कोई भी कृति निरूद्देश्य नहीं होती। किसी का भी नामकरण निरर्थक नहीं होता। प्रत्येक कृत्ति के नामकरण के पीछे लेखक का कोई-न-कोई उद्देश्य निहित होता है। अर्थात् नामकरण का कोई-न-कोई आधार होता ही हैं। लेखक या तो मुख्य पात्र के नाम पर या घटना या स्थान या उसमें निहित उद्देश्य के आधार पर नामकरण करता है। लहरों के राजहंस' का ऐतिहासिक नाटक है। अत: ऐतिहासिक नाटकों के सन्दर्भ में ही चर्चा करना तर्कसंगत ठहरता है। हिन्दी में अधिकाशत: ऐतिहासिक नाटकों का नामकरण रचना के नायक या नायिका के नाम पर ही किया जाता है। किन्तु कुछ नाटकों का नामकरण इस परिपाटी से हटकर काल-विशेष या घटना या स्थान विशेष के आधार पर भी हुआ है। अत: कहा जा सकता है कि नामकरण के सन्दर्भ में रचनाकार स्वतन्त्र है, किन्तु फिर भी यह अनिवार्यता है कि नामकरण कथा के अनुकूल एवं सार्थक होने वाला हो।

टिप्पणी

'लहरों के राजहंस' मूलतः ऐतिहासिक नाटक हैं, लेकिन नाटककार मोहन राकेश ने इसका नामकरण ऐतिहासिक नाटय परम्परा से हटकर किया है। राकेश जी अगर परम्परा से जुड़कर इसका नामकरण करते तो इसका नाम सुन्दरी, नन्द या नन्द-सुन्दरी आदि कुछ भी रख सकते थे, किन्तु उन्होंने नायक-नायिका के नाम पर न रखकर के इसमें निहित उद्देश्य को उजागर करने की दृष्टि से इसका नामकरण किया है। मोहन राकेश ने इस नाटक की भूमिका में स्वयं लिखा है कि उन्होंने इसकी प्रेरणा कवि अश्वघोष के सौन्दरानन्द' से मिली और मैंने इसे आधुनिक युग-बोध के साँचे से ढालकर प्रतीकात्मक स्वरूप दे दिया है। 'सौन्दरानन्द' में कपिलवस्तु के विलासी एवं रूपागर्विता सुन्दरी के प्रेम-पाश में उलझे राजकुमार नन्द अस्थिर मन को उपमा लहरों पर तैरते राजहंस से की गयी है। क्योंकि नन्द का मन एक ओर तो सुन्दरी के रूपाकर्षण में उलझा रहता है और दूसरी ओर गौतम बुद्ध के निवृत्ति मार्ग से भी यह प्रभावित होकर वह उधार से अपने को मुक्त नहीं कर पाता। उसी में फंसा डोलता रहता है और वह फैसला नहीं कर पाता। किन्तु अन्त में नन्द जब बुद्ध के पास क्षमा मांगने हेतू जाता है तो वहाँ बुद्ध के आदेश से मौन होकर नन्द केश कटवा लेता है। परन्तु जब बुद्ध उसे भिक्षा पात्र देते हैं तो उसकी अस्वीकृति उसे वर्जित कर देती है और वह विक्षिप्त से वनगमन कर जाता है। उससे पूर्व वह सुन्दरी का शृंगार करता हुआ उसके साथ अठखेलियाँ करता है। उसी के साथ दूसरी ओर नेपठय से बौदों के समवेत स्वर से आतंकित भी होता रहता है। बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों का समवेत स्वर

'धम्मं शरणं गच्छामि,
संधं शरणं गच्छामि,
बौद्ध शरणं गच्छामि।

यह स्वर उसकी चेतना को दो स्वरों में विभक्त कर देता है। उसकी चेतना के एक स्तर पर अनपस लावण्यमयी सुन्दरी है और दूसरे स्तर पर बौद्ध दर्शन में मिलने वाली आध्यात्मिक शान्ति है। उसका मन पानी की लहरों की तरह बहने लगता है। ये तरंग उसके मन में उठती है। जिस पर उसका मन रूपी हंसा तैरता है। किन्तु अन्ततः वह उड़कर कमलताल को छोड़ गौतम बुद्ध की शरण में चला जाता है। नन्द के इस द्वन्द्व को अश्वघोष ने निम्न श्लोक के माध्यम से बड़ी ही मार्मिकता से उजागर किया है।

"तं गौरवं बुद्धं गंत भार्यानुरागः पुनराचकर्ष।
सोडनिश्चयन्नापि यपौ ने तस्यौं तरंस्तरंगेस्विष रौजहंस"

अर्थात् नन्द को एक ओर बुद्ध का गौरव खींच रहा था दूसरी ओर सुन्दरी को अनुराग अपनी ओर खींच रहा था। अतः वह द्वन्द्वग्रस्त था कि वह किधर जाए, किसको अपनाए अतः उसकी स्थिति लहरों पर तैरते राजहंस की तरह थी। पर मोहन राकेश ने सौन्दरनन्द' के इस काव्य-चित्र को इस नाटक के नामकरण का आधार बनाकर इसका नामकण लहरों के राजहंस' किया है। यह काव्य-चित्र और नाटक का नामकरण इस नाटक के मूल द्वन्द्व भाव को व्यंजित करता है। इस नामकरण के पीछे नाटककार से जो भी प्रेरणा स्त्रोत मिले थे, उसके सन्दर्भ में स्वयं नाटककार कहता भी है "अपने वर्तमान की संगति में ऐतिहासिक संदर्भ का किस रूप में उपयोग किया जा सकता है, यह बात तब मन में स्पष्ट होने लगी थी विशेषकर इनके दो कथानकों को लेकर जो बहुत दिनों से आषाढस्य प्रथम दिवसें (कालिदास का मेघदूत)' तथा तरंगरंगेस्विस राजहंस' (सौन्दरानन्द) इस दो पंक्तियों के रूप में थे।"

अगर इसी दृष्टि से विचार करें तो इसका नामकरण पूर्णतः संगत, सार्थक, और सकारण है और इसकी वस्तु योजना में यह स्पष्ट भी हो जाता है। नाटक में लहरों को नन्द एवं सुन्दरी के जीवन की परिस्थितियाँ माना जा सकता है। और नन्द की आत्मा को उन परिस्थिति रूपी लहरों पर तैरता राजहंस माना जा सकता है। राकेश जी ने नन्द के साथ-साथ सुन्दरी को भी राजहंस ही माना है। किन्तु नाटक

टिप्पणी

में यह प्रतीत पूर्णत: प्रवाहित होता नहीं दिखाई देता, क्योंकि सुन्दरी का मन विचलित होकर भी अपने प्रवृत्ति मार्ग से विचलित नहीं हो पाया। वह आरम्भ से अन्त तक भोगवाहिनी जरूर है हाँ, यह जरूर है कि वह अस्थिर मन नन्द को अपने प्रेमाकर्षण में उलझाने रखना चाहती है पर, आहत नन्द उड़ ही जाता है। इस पर सुन्दरी कह उठती है।

"क्या उनके पंखों में इतनी शक्ति रही होगी कि अपनी इच्छा से उड़कर कहीं चले जाते? और जिस ताल में इतने दिनों से थे, उसका अभ्यास, उसका आकर्षण....क्या इतनी आसानी से छुट सकता था।"

अत: सुन्दरी की स्थिति राजहंस के समान नहीं है, यह स्थिति केवल नन्द की ही है। केवल नन्द की चेतना ही दोनों ओर फंस कर आहट एवं किंकर्तव्यविमूड़ सी हो जाती है। उस विमूठता की स्थिति में उसका मन भावों एवं विचारों की उच्चभूमि पर तैरता-डोलता और भी अधिक व्यग्र एवं आहत हो जाता है। इसी कारण सुन्दरी के उस उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर देती हुई अलका कहती है।

"सम्भव है आहत होना ही कारण रहा हो उनके उड़कर चले जाने का...।" इस तर्क को स्वीकारती हुई कहती हौं। फिर यह भी विचार आता है कि राजहंस आहत थे....कम से कम एक उनके अवश्य आहत था।" और यह स्पष्ट है कि यह आहत हंस कोई और नहीं, बल्कि नन्द ही है जो आहत होने के कारण लहरों पर तैर नहीं पाता और मुक्त होने के लिए अलक्षित दिशा की ओर उड़ जाता है।

प्रस्तुत **लहरों के राजहंस'** नाटक में कमलताल और उसके हंसो का प्रसंग कई बार आया है और उनका संबंध नाटक के मुख्य पात्रों और मूल द्वन्द्व के साथ जुड़ा हुआ है, जिससे नाटक के नामकरण की सार्थकता एवं तर्कसंगतता सिद्ध हो जाती है। नाटककार ने कमलताल के राजहंसों के कल-कूजन की योजना कथावस्तु के बीच में बड़ी ही सारगर्भित ढ़ग से की है। एक ओर सांध्यकाल में कामोत्सव के आयोजन की तैयारी हो रही है और अगले दिन देवी यशोधरा के भिक्षुणी बनने की चर्चा हो रही है। बीच में ही राजहंसों का कलख सुनाई देता है, सुन्दरी व्यंग्य से कहती है।

"इस स्वर की कहीं भी तुलना हैं? कह नहीं सकती क्या आपसे सुन्दर है ओस से लदे कमलों के बीच राजहंसों के इस जोड़े की किलोल या इस झुटपुटे में दूर से सुनाई देता इनका कुंजन! कोई गौतम बुद्ध से कहे कि कभी कमलताल के पास आकर इनके भी वे निर्माण और अमरत्व की बात कहें। ये एक बार चकित दृष्टि से उनकी ओर देखेंगे, फिर काम्यती हुई लहरें जिधर ले जाएंगी उधर को तैर जाएँगे।

स्पष्टत: यहाँ प्रवत्ति और निवत्ति मार्ग का द्वन्द्व दिखाई देता है जिससे राजहंसों के लहरों पर तैरने की बात सार्थक लगती हैं। इसमें जो द्वन्द्व चल रहा है, वह क्रमश: धुलता भी जाता है। कालान्तर में नन्द क्षमा याचना के लिए गौतम बुद्ध के पास जाता है और उसे चकित भाव से देखता है और फिर चकित भाव से ही उठकर उनके पीछे-पीछे चल देता है। और फिर "फिर काम्पती हुई लहरें जिधर ले जाती हैं, उधर ही चुपचाप तैर जाता है।" अर्थात् स्वयं पर बुद्ध के प्रभाव को मान लेता है और उसी की ओर हो जाता है। राजहंसों पर फैंके सभी प्रकार के पत्थर भी उसकी (नन्दकी) चेतना को बदल नहीं पाते, क्योंकि वहाँ राजहंसों वाले कमलताल में जो छाया पड़ती है या दिखती है, वह इतनी प्रभावी है कि छाया के पत्थर उसे तोड़ नहीं पाते, हटा नहीं पाते। वह तो लहरो एवं राजहंस को अपने व्यक्तित्व में मिला लेती है। इस सम्बन्ध में श्यामाँग की आशंका देखी जा सकती है।

"वहाँ देखा ताल की लहरों पर वह छाया उतर रही है। लहरे उसमें गुम हुई जा रही हैं, कमलताल, कमल-पत्र सब उसमें खोए जा रहें है। मुझे लगा कि वह छाया धीरे-धीरे उन सबसे लील जाएगी, ताल में तैरते हुए राजहंसों के जोड़े को भी मुझे डर लगा, मैं छाया पर पत्थर फैंकने लगा।" और श्यामांग

टिप्पणी

की यह आशंका निराधार नहीं है। अन्त में सच निकलती है हंस उड़ जाते हैं "तभी हंसों के जोड़े ने पंख फड़फड़ा दिए और जैसे छाया से बचने के लिए वे पुकार उठे।" पुकारते भी हैं और प्रयत्न भी करते हैं पर सफल नहीं हो पाते, बल्कि लहरों के राजहंस उड़ ही जाते हैं/इस नाटक में द्वन्द्व एवं दर्शन को उभारने के लिए लहरों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया है, नाटक के दो अंक में श्यामांग का नेपथ्य से ज्वरग्रस्त प्रलाप भी प्रतीकात्मकता के साथ उभरा है वह कहता भी हैं।

इन लहरों पर से...लहरों पर से...वह छाया हटा दो...मुझ से...मुझ से यह छाया नहीं ओढ़ी जाती।" वास्तव में यह परिस्थितियाँ रूपी लहरों पर पड़े, अपों में भ्रमित होते राजहंस रूपी नन्द के मन पर पड रही बुद्ध के प्रभाव रूपी छाया से बचने का चित्कार है। तभी तो कह उठता है "पानी की लहरों का स्वर सब कुछ एक-एक आवर्त में घूम रहा है...।" मूलत: यह घुमाव भी राजहंस रूपी नन्द की चेतना का ही है। पर उसमें अवरोध बनने का साहस नहीं है "मुझमें साहस नहीं हैं....किसी में साहस नहीं है ..... "लहरों में पानी नहीं है। कहीं भी पानी नहीं है....।" और राजहंस के अन्दर यह द्वन्द्वग्रस्तता बढ़ती ही जाती है और अन्त में राजहंस के जाने पर ही उस सब का परिहार हो पाता है।

लहरों का राजहंस अर्थात् नन्द नाटक में शुरू से अन्त तक द्वन्द्वग्रस्त है। वह निर्णय नहीं कर पाता कि उसका निश्चित मार्ग कौन सा है। वह केश भी कटवा लेता है, लेकिन केश कटवा लेने के बाद भी वह परिस्थितियों के साथ समझौता नहीं कर पाता और वापिस राजभवन में आ जाता है। लेकिन यहाँ भी वह द्वन्द्व से मुक्त नहीं हो पाता और फिर यहाँ से भी लौट जाता है। अत: उसकी स्थिति लहरों पर तैरते-डोलते राजहंस जैसी है। एक ओर सुन्दरी का आकर्षण है, दूसरी ओर बुद्ध के व्यक्तित्व का प्रभाव। ये दो व्यक्ति नहीं बल्कि दो भिन्न-भिन्न मार्ग हैं, विचारधारा हैं और इन दोनों का प्रभाव अकाट्य सा लगता है और यह प्रभाव अन्त तक बना रहता है। उसके पैर बार-बार उठ-उठकर रूकते-बढ़ते हैं। इसी कारण वह कह उठता है।

- "लगता है मैं चौराहे पर खड़ा एक नंगा व्यक्ति हुँ जिसे सभी दिशाएं लील लेना चाहती है और अपने को ढ़कने के लिए उसके पास कोई अवरण नहीं है। परन्तु...मैं इस असहायता की स्थिति में नहीं रह सकता।... जीने की इच्छा को कितने-कितने प्रश्नों ने एक साथ घेर लिया है...।"

और अन्त में लहरों पर तैरता-डोलता राजहंस (नन्द) अपनी अस्थिर मन:स्थितियों के घेरों को तोड़कर प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए उड़ ही जाता है। उसकी उड़ान सार्थक है या निरर्थक है। यह प्रश्न यहाँ नहीं उठता और यह भी प्रश्न नहीं उठता कि उसे अपने प्रश्नों का उत्तर मिला कि नहीं लेकिन उसके द्वन्द्व को सुधार करने के लिए **लहरो का राजहंस'** कहना सार्थक है और इसी कारण इस नाटक का नामकरण **लहरो का राजहंस'** सम्पर्णत: सार्थक है।

2.5 प्रतीकात्मकता

प्राचीनकाल से ही साहित्य में प्रतीकात्मक प्रयोग होते रहे हैं किन्तु छायावाद कवियों ने इस ओर विशेष रूख किया फिर प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता एवं साठोत्तरी काव्य में प्रतीकात्मक प्रयोग बढ़ते गए। केवल काव्य में ही नहीं कहानी, उपन्यास, नाटक में भी प्रतीकात्मकता का प्रयोग किया जाने लगा है। नाटक साहित्य में भारतेन्दु, प्रसाद, भारती आदि नाटककारों ने प्रतीक नाटकों का सर्जन किया है। नाटक के योग में मसीहा माने जाने वाले मोहन राकेश ने तो अपने नाटकों का नामकरण ही प्रतीकात्मक किया है। आषाढ का एक दिन' तथा **लहरों के राजहंस'** इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं।

लहरों के राजहंस' नाम ही प्रतीकात्मक है। इसमें ताल की लहरों पर तैरते. डोलते राजहंस को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। नाटककारों ने संस्कृत के महाकवि अश्वघोष के **सौन्दरानन्द'** को आधार

टिप्पणी

मानकर इस नाटक की रचना की है। सौन्दरानन्द में व्यवहत एक श्लोक नाटककार ने ज्यों-का-त्यों उद्घत कर दिया हैं

"तँ गौरवं बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुरागः पुनराचकर्ष
सोडनिश्चयान्नापि भयौ न तस्थौ तरंस्तरंगेस्विण राजहंस।"

अर्थात् नन्द को एक और गौतम बुद्ध का गौरव खींच रहा था तो दूसरी ओर अपनी ही पत्नी सुन्दरी का रूप गौरव अपनी ओर खींच रहा था। उनसे न जाने को बनता और न ही रूकने को, अतः उनकी स्थिति लहरों पर तैरते-डोलते राजहंस की सी थी। जिस प्रकार अस्थिर राजहंस द्वन्द्वग्रस्त रहता है, उसी प्रकार नन्द भी द्वन्द्वग्रस्त था। इसी द्वन्दग्रस्ता को नाटककार राजहंस से प्रतीक रूप में दर्शाता है। अत; नाटक का मूल कथ्य ही प्रतीकात्मक है तो उसका क्रिया-कलाप तो प्रतीकात्मक होगा ही।

'लहरों का राजहंस'नाटक की प्रतीकात्मकता पर विचार करते है तो पहला तथ्य यही हैं कि इसकी प्रतीकात्मकता सहज, सरल नहीं है। इसके कथ्य की प्रतीकात्मकता में उनके ही पूर्ववर्ती नाटक **आषाढ़ का एक दिन'** की तुलना में अधिक जटिलता है। वैसे तो सामान्यतः प्रतीकात्मकता अधिकतर नाटकों में मिल जाती हैं, क्योंकि सभी का संबंध रंगमंच से होता है। परन्तु यहाँ प्रतीकात्मकता का जटिल रूप देखने को मिलता है। नाटक का मूल द्वन्द्व प्रवत्ति (सुन्दरी) और निवत्ति (गौतम बुद्ध) से आकर्षित मानव (नन्द) के अन्तर्द्वन्द्व एवं द्विविधाग्रस्त चेतना को रूपायित करना है। इस संदर्भ में डॉ० जयदेव तनेजा का कहना है "सुन्दरी जीवन के भोग-पक्ष तथा प्रवत्ति की प्रतीक है तो गौतम बुद्ध योग पक्ष या निवत्ति के प्रतीक हैं। नन्द प्रवत्ति और निवत्ति के इन दो विपरीत धुवों के बीच निरन्तर पिसती हुई द्वन्द्वग्रस्त मानव चेतना का प्रतीक है।"

उपर्युक्त बात को स्वीकारते हुए नाटककार मोहन राकेश भी यही कहते हैं- सुन्दरी पृथ्वी के प्रतीक में, पुरूष और उसकी चेतना को अपने तक बांधे रखना चाहती है पुरूष बँधना चाहकर भी उससे ऊपर उठना, एक अपार्थिक जिज्ञासा में अपने लिए उपलब्धि ढूंढना चाहता है।' ऐतिहासिक संदर्भ में नन्द सुन्दरी के कथित विक्षोम से घबराकर, उसके प्रश्नों के उत्तर देने में अपने को असमर्थ पाकर, अपने कुछ प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए गौतम बुद्ध के पास चला जाता है, लेकिन वह केश कटवाकर भी वापिस भवन में आता है अतः अन्तिम क्षण तक भी उसके द्वन्द्व का परिहार न हो सका। इस द्वन्द्व ग्रस्त स्थिति को वह स्वयं उजागर भी करता हैं "अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच मेरी चेतना को एक प्रश्नचिन्ह, केवल एक प्रश्नचिन्ह बनाकर छोड़ दिया गया है।" यही नहीं वह एक और स्थान पर कहता है इतना समझ में आता है कि जिये जाने से जीवन धीरे-धीरे चुक जाता है कि उन्मेष का परिणाम एक निमेष है और काल के विस्तार में उन्मेष और निमेष दोनों अस्थायी हैं। सुख-सुख नहीं है, काई पर फिसलते हुए पांव का एक स्पन्दन मात्र है, मात्र रेत में डूबती हुई एक बुन्द की अनुलाहट...परन्तु वह स्पन्दन, वह अकुलाहट ही क्या जीवन का पूरा अर्थ, जी लेने का कुल पुरस्कार नहीं है? आकाश में कहीं लटकते हुए नीले-काले बिन्दु-कोरे सिद्धान्तों के वे अधिक स्थाई, अधिक सत्य कैसे हैं? का प्रश्न नन्द की द्वन्द्वग्रस्त चेतना का ही प्रश्न है, जो उसे निरपेक्ष नहीं होने देती। तभी तो वे कहते हैं-मैं, मैं नहीं हूँ, तुम तुम नहीं हो, वह नहीं है, सब किसी उंगली से आकाश में बनाये गए चित्र है जो बनते-बनते साथ-साथ ही मिट जाते हैं, जिनका होना न होने से भिन्न नहीं है, पर मैं पूछता हूँ कि जब होने न होने में कोई अन्तर नहीं है, तो मेरे केश क्यों कटवा दिये? अतः नन्द द्वन्द्वात्मक स्थिति में है और उसका यह द्वन्द्व प्रतीकात्मक है। लेकिन यहाँ प्रतीकात्मकता, दार्शनिक अवधारण जटिल है जो सामान्य दर्शक के लिए दुरूह है।

टिप्पणी

नाटक की नयी शिल्प-विद्या और रंग निर्देशों से प्रवत्ति मूलक एवं निवत्तिमूलक का द्वन्द्व यवनिका का उठते ही हो जाता है क्योंकि यवनिका का उठते ही निम्न स्वर सुनाई देता हैं

'धम्मं शरणं गच्छाामि।
संघं शरणं गच्छामि।
बुद्धं शरणं गच्छामि।'

राकेश जी ने श्यामाँग के प्रसंग को लेकर सर्वाधिक प्रतीकात्मकता की सर्जना की है। इस विषय में डॉ० सुरेश अवस्थी का कहना है "नाटक की वस्तु-योजना और उसके संबंध में श्यामाँग प्रसंग का महत्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि यह प्रसंग कई प्रकार से कई स्तरों पर नाटककार की मुख्य कथा और उसके मल संघर्ष से जुड़ा है।" इसकी सार्थकता के विषय में अवस्थी जी कहते हैं"जब श्यामाँग अंधकूप में डाल दिया जात है और नाटकीय कथा के साथ सम्बन्ध नहीं रह जाता और वह किसी प्रयोजन की सिद्धि भी नहीं कर सकता. तो नाटककार जबरन उसके अस्तित्व और उसकी प्रयोजनशीलता को बनाए रखने के लिए उसे एक प्रतीक बना देता है। इस प्रकार श्यामाँग नाटक में एक प्रतीक तो बन जाता है, किन्तु वह पात्र नहीं रह पाता और नाटक चाहता है सशक्त, जीवन्त पात्र, अस्पष्ट, निर्जीव प्रतीक नहीं।" इस प्रसंग योजना के सम्बन्ध में नाटककार भी अन्त तक द्वन्द्व से छुटकारा नहीं पा सकता। इस तथ्य की पुष्टि नाटककार की श्नाटक का यह परिवर्तित रूप' शीर्षक में की गयी इस स्वीकारोक्ति से भी हो जाती है कि"पहले अंक से उसे हटाना चाहा तो हटा नहीं सका, दूसरे अंक में उसके लिए स्थान बनाना चाहा तो वह भी नहीं बना सका।" कारणत: श्यामाँग केवल पहले अंक में ही मंच पर दिखाई देता है। बाद के अंकों में नेपथ्य से ज्वरोन्माद ग्रस्त-सा प्रलाप ही सुनाई देता है। लेकिन यह नेपथ्य का संभाषण भी प्रतीकात्मक है। इसके सम्बन्ध में डाँ० सुरेश अवस्थी का कहना है "आरम्भ में लगता है कि श्यामाँग और अलका का अत्यन्त सहज, कोमल और मौन पारस्परिक आकर्षण सुन्दरी और नन्द के उद्दाम मुखर और काम शक्ति प्रेम का ही एक प्रतिरूप है। इस प्रकार यह प्रसंग एक निश्चित नाटकीय प्रयोजन की सिद्धि की चेष्टा करता है और फिर बाद में यही श्यामाँग नन्द के अस्थिर और द्वन्द जर्जर मन का एक प्रतिरूप बन जाता है, और अपने ज्वर प्रलाप में जैसे नन्द की ही अनिश्चितता, विभ्रम और अकुलाहट ध्वनित करता है।"

अत: यह ध्वनित होना भी एक सबल प्रतीक योजना है। इसी तरह श्यामाँग के कमल ताल में पड़ी छाया से नन्द का डरना, गौतम बुद्ध के प्रभाव से डरने का प्रतीक है। इसी प्रकार दूसरे अंक में श्यामाँग का ज्वर-प्रलाप उसकी व्याकुलता की बजाए नन्द की उद्विगनता को प्रकट करता है। इसी कारण नन्द थकने पर भी रात-भर सोता नहीं। डाँ० अवस्थी के अनुसार "और तब ऐसा लगता है, जैसे कि नन्द ही रंगमंच पर अनिद्रा में अशान्त बैठा है, और नन्द ही नेपथ्य में प्रलाप कर रहा है कोई स्वर नहीं है...कोई किरण नहीं है...एक छाया है...अंधेरे कूप में भटकती हुई छाया।" अत: यह प्रतीक सबल और मानसिक उलझाव का ही प्रतीक बना रहता है। इसी कारण सुन्दरी इसे देखकर अव्यस्त सी हो जाती है और एक बार तो इसे तहखाने में डाल देने का भी आदेश देती है। श्यामाँग का प्रलाप सुनकर नन्द कहता है "कितनी लम्बी है यह रात जैसे कि इसे बीतना ही न हो। बार-बार लगता है यह स्वर रात पर पहरा दे रहा है... यही इसे बीतने नहीं देता।" पुन: वह सुनता है "स्वर नहीं हैं...कोई स्वर नहीं है...इस अंधकूप में सबकुछ खो गया है...मेरा स्वर...पानी की लहरों का स्वर...सब कुछ एक आवर्त में घूम रहा है...एक चील सब कुछ झपटकर लिये जा रही है...इसे रोको...इस रोको...।"

अत: नाटककार ने चील, अंधकूप जैसे शब्दों के द्वारा नन्द के द्वन्द्व को ही व्यक्त किया है। इसी प्रकार श्यामाँग द्वारा कमल ताल के राजहंस पर पत्थर पेंकना नन्द के अवचेतन में बुद्ध के प्रभाव का ही

टिप्पणी

प्रतीकात्मक संकेत रखता है। इससे स्पष्ट रूप से लगता है कि वह प्रवत्ति मार्ग से विमुख होकर निवत्ति मार्ग की और उन्मुख होना चाहता है।

नाटक के तीसरे अंक में भी यह प्रतीकात्मकता देखी जा सकती है। वहाँ राजहंसों के लड़ जाने से सुन्दरी को चिन्तित दिखाया है क्योंकि सुन्दरी को यह विश्वास नहीं हुआ कि वे स्वयं उड़कर चले गए हैं और न ही यह मान पाती है कि कोई उसे चुरा ले गया है। यह सच है कि हंसों का अदृश्य होना, उस विशिष्ट ताल में रहने का उनका अश्पास और उसका आकर्षण उनको रोक रखने में पर्याप्त थे, परन्तु उससे भी बड़ा सच यह है कि वे चले गए हैं। अत: वे नन्द के सुन्दरी को छोड़कर सदा के लिए बुद्ध के पास चले जाने की घटना का पूर्व संकेत दे रहे है। इस विषय में डॉ० जयदेव तनेजा का मत है "पहली बात तो यह है कि हंसों को प्रत्यक्ष मर्त-प्रतीक के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया, संवादों में उनकी चर्चा मात्र होती है, दूसरे, यदि दोनों हंस नन्द और सुन्दरी के ही प्रतीक हैं, तो अकेले नन्द के चले जाने पर दोनों हंसों के उड़ने का क्या अर्थ है? हंस सदैव के लिए चले गए हैं, किन्तु नन्द फिर लौटता है, आहत करने और आहत होने के लिए। इस विषय में नेमिचन्द जैन की यह धारणा ठीक प्रतीत होती है "राजहंसों का प्रसंग नाटकीय एकाग्रता को तोड़ता है।" अगर इस संदर्भ को प्रतीकात्मक रूप से देखा जाए तो सुन्दरी अपने यौवन का गर्व नन्द की दुर्बलता का ही चित्रण करती है। इसलिए वह कहती है "जिस ताल में इतने दिनों से उसका अश्पास, उसका आकर्षण...क्या क्या इतनी आसानी से छूट सकता था?" पर मानव की चेतना आहत होकर भी छुटकारा चाहती है। नन्द भी छुटकारा चाहता था। इस बात को अलका स्पष्ट करती हुई कहती है "सम्भव है आहत होना ही कारण रहा हो उनके उड़कर चले जाने का...।" स्पष्टत: यह आहत होना नन्द की द्वन्द्वग्रस्त चेतना का ही आहत होना है।

हिरण प्रसंग भी प्रतीकात्मक है। वह अपने अस्तित्व के लिए अन्तिम सास तक संघर्ष करने वाले और अपनी ही क्लाप्ति से मर जाने वाले अपराजेय नन्द रूपी मृग का प्रतीक रूप उभरा है। इस संदर्भ डॉ० जयदेव तनेजा का कहना है "नन्द रूपी मृग एक ओर सुन्दरी और दूसरी ओर गौतम, दो-दो शिकारियों से धिरा हुआ है। उसकी जिजीविषा उसे दोनों से बचा लेती है। परन्तु अन्तत: वह अपनी ही क्लान्ति से श्मत और जीवित- स्थिति को प्राप्त होता है। 'मृग' इस दृष्टि से भीतर-ही-भीतर निरन्तर थकते टूटते हुए, मरते हुए और बाहर से सतत् संघर्षरत एवं जीवित नन्द का चित्र प्रस्तुत करता है। नन्द के पास सबसे लड़ने की शक्ति है। बाघ से निहत्थे भिड़कर वह अपनी शारीरिक शक्ति का परिचय देता है तो समस्त देश को प्रभावित करने वाले गौतम बुद्ध के भरपूर प्रयास के बावजूद अप्रभावित लौटकर वह अपनी मानसिक आत्मिक शक्ति का प्रमाण दे देता है। शारीरिक और मानसिक रूप से प्रबल व्यक्तित्व वाला नन्द स्वयं अपने सामने निर्बल पड़ जाता है। वह स्वयं से हार जाता है। लेकिन दूसरे अंक के आरम्भ में नन्द को सो रही सुन्दरी को देखकर ऐसा लगता है कि; उस समय तुम क्रोध में थी, तो कितनी उग्र कितनी कठोर, कितनी प्रखर लग रही थी, बिल्कुल उस मृग की तरह जिसे कल वन में पड़ा छोड़ आया था। जब तक वह चुनौती देता दौड रहा था, तब तक वह भी कितना प्रखर था। परन्तु उसके बाद।" इस बाहरी समानता के अतिरिक्त अन्त में अत्यन्त सूक्ष्म रूप में भी सुन्दरी की नियति इस मृग से पूर्णत: अभिन्न प्रतीत होती है। वास्तव में गौतम बुद्ध का प्रभाव नन्द को सुन्दरी से पूर्णत: अलग नहीं कर पाता, क्योंकि वह वापिस आकर स्वीकार करता है कि मेरे हृदय में तुम्हारे लिए अब भी वही अनुराग है। आँखों में तुम्हारे रूप की वहीं छाया है" परन्तु सुन्दरी नन्द के देर से आने से अपने पराजय मान बैठती है। वह नन्द के जाने से टूट-सी जाती है, सिसकती है। अत: अपनी क्लान्ति से मरने वाला मृग सुन्दरी का प्रतीक बन जाता है।

टिप्पणी

दर्पण भी प्रतीकात्मक अर्थ रखता है। वह सुन्दरी के अहंकार और रूप गर्व का प्रतीक है। उसका टूटना सुन्दरी के अहंकार को टूटना है। यहाँ पर नाटककार ने नन्द की चेतना को दो भागों में बाँट दिया है। पर वे दोनों ही भाग समाकार नहीं है, बल्कि खण्डित होने के कारण आड़े-टेढ़े हैं। इससे प्रतीत होता है कि एक ओर सुन्दरी का रूप यौवन का गर्व टूट जाता है और भविष्य में उसका विश्वास भंग करके नन्द जो बौद्ध बनने जा रहा है, उसका आभास भी मिल जाता है। इसी कारण खण्डित दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखकर वह कहती है उन्होंने केश कटवा दिये, तो व्यक्ति रूप में मैं अधिक सत्य हो गया? जिह्म कटवा देते, हाथ कटवा देते हाथ-पैर कटवा देते, तो और अधिक सत्य हो जाता।" अत: दर्पण भी प्रतीक है।

यहाँ नन्द के केश, अलका का स्वप्न, दीपाधार, मत्स्यकार आसन, झूला, घर आदि सब प्रतीकात्मक अर्थ रखते है। इनकी प्रतीकात्मकता के बारे डॉ० जयदेव तनेजा का कहना है (नन्द के) केश काम-भावना या प्रवत्ति के द्योतक है। अलका का स्वप्न भी उसकी अतृप्त मातृत्व जनित निराशा को प्रतीक रूप में प्रस्तत करता है। पुरूष मूर्तिकला दीपाधर नन्द का और नारी-मूर्ति वाली सुन्दरी का प्रतीक है। मतस्यकार आसन उद्याम भोग-भावना को रेखांकित करता है तो भिक्षुओं का समवेत स्वर वैराग्य का संकेत देता हुआ गौतम के सर्वयाप्त प्रभाव करे प्रतिध्वनित करता है। झूला अस्थिर मन अथवा द्वन्द्व का प्रतीक है। मंच सामग्री में से सर्वाधिक उपयोग (चौदह बार) झूले का ही हुआ है। इनके अतिरिक्त **घर'** और **वास्तविक घर'** के रूप में दोहरा प्रतीकत्व प्रदान किया गया है। घर भोग या पार्थिकता का प्रतीक है तो वास्तविक घर आत्मिक शान्ति और स्थायी आश्रय देने वाले स्थान (संभवत: विहार) के लिए प्रयुक्त हुआ है। जंगल योग या अपार्थिक का प्रतीक है और अंधकूप' अवचेतन का इसके अतिरिक्त उन्होंने हवा को गौतम बुद्ध के सर्वव्यापी प्रभाव का प्रतीक माना है और सुन्दरी की बिन्दी को जिसे नन्द के लौट आने तक गीला रखने की बात कहती है को स्त्री जन्नेन्द्रिय की प्रतीक माना है।

अत: कहा जा सकता है कि **लहरों के राजहंस'** नाटक में छोटे-बड़े, स्पष्ट-अस्पष्ट, प्रभावशाली अप्रभावशाली, मूर्त-अमूर्त प्रतीकों की भरमार है जिनके भंवर में यह नाटक उलझा ही रह जाता हैं। क्योंकि यहाँ कुछ प्रतीक दुर्बोध्य हैं। जहाँ इन प्रतीकों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इन्हें सर्वथा मौलिक एवं नए प्रयोग कहा जा सकता है, वहीं यह कहना गलत न होगा कि ये प्रतीक सामान्य दर्शक/पाठक के लिए समझ से बाहर हैं।

2.6 काल्पनिकता एवं ऐतिहासिकता

'लहरों के राजहंस' नाटक का मूल आधार ऐतिहासिक है। लेकिन यहाँ नाटक राकेश जी ने ऐतिहासिकता को संशोधित कर उसे युगीन परिप्रेक्ष्य में ढ़ाला भी है। राकेश जी ने स्वयं भी इसका आधार महाकवि अश्वघोष के सौन्दरानन्द' नामक काव्य को स्वीकारा है। इसके नामकरण की प्रेरणा से सम्बन्धित सौन्दरानन्द' काव्य का निम्न श्लोक दर्शनीय है

'तं गौरवं बुद्धं गतं चकर्ष भार्यानुराग: पुनराचकर्ष।
सोडनिश्चयन्नपि ययौ न तस्थौ तरंस्तरंगौध्वव राजहंस"

अर्थात-बुद्ध का गौरव उसे अपनी ओर आकर्षित करता था तो उसकी सुन्दरी का अनुराग अपनी ओर। इस द्वन्द्वग्रस्तता में उससे न तो अपनी पत्नी सुन्दरी का ही त्याग हो रहा थ और न ही उसके पास रह पा रहा था। बुद्ध का प्रभाव उसे खींच रहा था। उसकी स्थिति लहरों पर तैरते-डोलते राजहंस के समान थी। वास्तव में समूची नाट्य प्रक्रिया का आधार यहीं है और इसी को युगीन संदर्भ में रूपायित करने की कोशिश राकेश जी ने की है। अत: नाटककार ने इस द्वन्द्वग्रस्ता को ऐतिहासिकता की बजाए आधुनिकता

टिप्पणी

के प्ररिप्रेक्ष्य में उद्‌घाटित किया है। अत्यधिक प्रबलता के साथ यहाँ आधुनिक भाव बोध ही व्यक्त हुआ है। निश्चित तौर से इस समन्विति का कारण कथानक का स्तर भी बढ़ा है। उसकी साहित्यिक और व्यवहारिक उपयोगिता भी बढ़ी है। अत: ऐतिहासिकता को युगीन परिप्रेक्ष्य में दिखाने-सजाने-संवारने के लिए कल्पना का भी प्रयास किया है। अत: इस नाटक को कल्पना प्रधान ऐतिहासिक रोमांस का नाटक कहा जा सकता है। राकेश जी ने नाटक के कथ्य के मल उत्स को भूमिका में व्यक्त करते हुए लिखा है "कथा का आधार अवश्घोष का सौन्दरानन्द' काव्य है, परन्त समय के विस्तार में स्थिति का परिक्षेपण करने के कारण यह काल्पनिक भी है।" क्योकि साहित्य केलव इतिहास नहीं हो सकता और न ही वह इतिहास के नीरस विषयों को ढ़ो सकता है। कोई इतिहास साहित्य तभी बन सकता है जब यह युगीन भाव-बोध में ढल जाए। क्योंकि साहित्य समय के बंधनों में नहीं बंधता, जबकि इतिहास समय-बंध होता है। साहित्य जीवन के तत्वों को लेकर ही अपने कलेवर का सृजन करता है, उसे सजाता एवं संवारता भी है। साहित्य जनहित की साधना एवं भावना से इतिहास को व्यापकता एवं विशालता प्रदान करता है। इस संबंध में डॉ० सुरेश अवस्थी का कहना है.

- "वास्तव में ऐतिहासिक कथानकों के आधार पर श्रेष्ठ और सशक्त नाटकों की रचना तभी हो सकती है, जब नाटककार ऐतिहासिक पात्रों और कथा स्थितियों को '**अनैतिहासिक**' और '**युगीन**' बना दे तथा कथा के अन्तर्द्वन्द्व को आधुनिक अर्थ-व्यंजना प्रदान कर दे ।"

'स्पष्ट रूप से देखा जाए तो लहरों के राजहंस' नाटक में ऐसा ही हुआ है तभी तो वह एक सफल ऐतिहासिक रोमांस बन गया है। साहित्य और इतिहास के संदभों को नाटककार ने नाटक की भूमिका में स्पष्ट करते हुए लिखा है- "साहित्य में इतिहास अपनी यथातथ्य घटनाओं में व्यक्त नहीं होता घटनाओं को जोड़ने वाली कल्पनाओं में व्यक्त होता है जो अपने एक नए और अलग रूप में इतिहास का निर्माण करती है।" इतिहास और साहित्य की ओर अधिक व्याख्या करते हुए राकेश जी आगे लिखते हैं"इतिहास या ऐतिहासिक व्यक्तित्व का आश्रय साहित्य को इतिहास नहीं देता। इतिहास तथ्यों का संकलन करता हैं, उन्हें एक समय तालिका में प्रस्तुत करता है। साहित्य का ऐसा उद्देश्य कभी नहीं रहा। इतिहास के रिक्त कोष्ठों की पूर्ति करना भी साहित्य का उपलब्धि क्षेत्र नहीं है।" ' उपलब्धि क्षेत्र की विभिन्नता के अतिरिक्त भी समय एवं आश्रम में भी विभिन्नता रहती है। वास्तव में इतिहास तो युगों-युगों से मानव-जीवन विस्तार तालिका भर है। लेकिन यह तालिका कड़ी रूप में है और इसी कड़ी ने मानवता को राष्ट्र या देश आदि की सीमाओं में सुसंबद्ध कर रखा है। अत: इतिहास एक धारा है और साहित्य ही करता है। इसके स्वीकारते हुए राकेश जी कहते हैं

- "साहित्य इतिहास के समय में बंधता नहीं, समय में इतिहास का विस्तार करता है। युग से युग को अलग नहीं, कई-कई युगों को साथ जोड़ देता है। इस तरह इतिहास **'आज'** और **'कल'** नहीं रह जाते, समय की असीमतता में कुछ ऐसे जुड़ जाते हैं जो जीवन को दिशा-संकेत देने में अविभाज्य हैं।"

अत: राकेश जी की दृष्टि साहित्य में इतिहास के बिखरे तत्वों, तथ्यों को जोड़ने वाला साधन मानती है। उनका यह भी मानना है कि साहित्यकार इतिहास में से प्रत्येक युग, परिस्थिति से मेल खाने वाले जीवनोपयोगी तथ्यों एवं सत्यों को संकलित कर उन्हें साहित्य में इतिहास अपनी यथा तथ्य घटनाओं में व्यक्त नहीं होता, घटनाओं को जोड़ने वाली ऐसी कल्पनाओं में व्यक्त होता है जो अपने ही एक नए अलग रूप में इतिहास का निर्माण करती है। यह निर्माण रूढ़िगत अर्थ में इतिहास नहीं है। उस इतिहास की खोज के लिए इतिहास की शोध पुस्तकों की ओर जाना चाहिए। स्पष्टत: कहा जा सकता

टिप्पणी

है कि साहित्य की कोई भी सर्जनात्मक प्रक्रिया इतिहास नहीं है और उसमें केवल ऐतिहासिक तत्व नहीं खोजना चाहिए बल्कि उसमें जीवन के शाश्वत सत्य एवं तथ्य खोजने चाहिए।

अत: इन संदभों के आधार पर हम लहरों के राजहंस' नाटक की ऐतिहासिकता पर विचार कर सकते हैं। राकेश जी के वक्तव्य से यह माना जा सकता है कि यह नाटक ऐतिहासिक संदभों, तथ्यों का मात्र ब्यौरा नहीं हैं, बल्कि इतिहास के वक्त पर सहज द्वन्द्वग्रस्त मानव चेतना की सर्जनात्मक प्रक्रिया है। इसी विषय में स्वयं राकेश कहता है।

"प्रस्तुत नाटक का आधार भी ऐतिहासिक है परन्तु उतने ही अर्थ में जितना इस व्याख्या में आता है। कथा का आधार अश्वघोष का सौन्दरानन्द' काव्य है, परन्तु समय के विस्तार में स्थितियों का परिक्षेपण करने के कारण यह काल्पनिक भी है। काल्पनिक अश्वघोष का सौन्दरानन्द भी है, क्योंकि संस्कृत तथा पालि साहित्य में जो कथा उपलब्ध थी, उसका अश्वघोष ने अपनी दृष्टि से परिक्षेपण किया है, यह काल्पनिक अन्विति से उसे विस्तार किया है।"

इसको विस्तार किस तरह से दिया गया है, इस बात को स्वयं नाटककार स्पष्ट करता है 'धम्मपद' की टीका में नन्द और सुन्दरी की जो टीका है, सौन्दरानन्द' की कथा और विस्तार में उससे कहीं आगे जाती है। 'सौन्दरानन्द' में नन्द और सुन्दरी के जीवन के जो तथ्य आते हैं, उनके जीवन के सीमित ऐतिहासिक तथ्यों से कहीं भिन्न हैं, शोधग्रंथों में प्रमाणिक तथ्य तो उनके सम्बन्ध में उपलब्ध ही नहीं हैं।"

वास्तव में 'सौन्दरानन्द' के रचयिता अश्वघोष स्वयं बौद्ध मत को मानने वाला था। उसकी 'सौन्दरानन्द' काव्य सज्रना के पीदे उद्देश्य बौद्ध-मत की व्यापकता और प्रभाव को अंकित करना अधिक था। वह उजागर करना चाहता था कि नन्द जैसा विलासी व्यक्ति पत्नी सन्दरी के सौन्दर्य के जाल को तोड़कर भी बद्ध के प्रभाव से बौद्ध बन गया। हाँ, यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य है कि नाटककार का उद्देश्य अंत में बौद्ध मत में दीक्षित होते दिखाना नहीं है, बल्कि द्वन्द्वग्रस्त मानव चेतना उजागर करना है। इस दृष्टि से इस नाटक में मात्र ऐतिहासिक तथ्य खोजना तर्कसंगत नहीं, इतिहास को बस इतना है कि गौतम बुद्ध थे, उनके सौतेले भाई नन्द थे और उनकी एक अनुपम सौन्दर्य युक्त सुन्दरी पत्नी थी। शेष सभी नाटककार की कल्पना की सृष्टि है। स्वयं नाटककार इस बात को स्वीकार करता है "यहाँ नन्द और सुन्दरी की कथा एक आश्रय मात्र है, क्योंकि मुझे लगता कि इसे समय में परिक्षेपित किया जा सकता है। नाटक का मूल अनतर्द्वन्द्व उस अर्थ में यहाँ भी आधुनिक है, जिस अर्थ में आषाढ़ का एक दिन' के अन्तर्गत है।"

अत: विवेचनात्मक दृष्टि के आधार पर कहा जा सकता है कि 'लहरों के राजहंस' नाटक को उतनी ऐतिहासिक नहीं है, जितनी कल्पना है। अत: इसका मूल्यांकन, विशेषण इतिहास की दृष्टि की बजाए ऐतिहासिकता की दृष्टि से हाना चाहिए। नाटककार ने आधुनिक भाव-बोध को व्यक्त करने के लिए ऐतिहासिक कथा का सरारा भर लिया हैं इसमें ऐतिहासिक कथानक को दोहराने की बजाए उसे आधुनिक परिप्रेक्ष्य में दिखाया है।

परिवेशगत ऐतिहासिकता

'लहरों के राजहंस' नाटक में ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि हुई है। इसमें तत्सम्बन्धित निर्देशित रंग-संकेत इतिहास सम्मत है। नन्द सुन्दरी की कथा और सुन्दरी के रूप की चर्चा, मदिरा पात्रों, मदिराओं का वर्णन, दीपाधार, महल कक्ष के गवाक्ष द्वार, उद्यान एवं उसके कमल-ताल आदि सब कुछ इतिहास सम्मत है। यही नहीं नन्द सुन्दरी तथा अन्य पात्रों को वेश-भूषा भी इतिहासबद्ध रखी गयी है। उदाहरणत: मदिरापात्र आर चषक कमल ताल के पास के चबूतरे पर रखवा देना, और वहाँ भी

टिप्पणी

आस-पास कुछ आसन बिछवा देना। जब सारी व्यवस्था हो जाए, तो आकर मुझे सूचित कर देना।" आदि-आदि ऐतिहासिकता के संकेत ही हैं।"

भाषागत ऐतिहासिकता

प्रस्तुत नाटक की भाषिक एवं संवादीय संरचना में जिस प्रकार की भाषा एवं शब्दावली का प्रयोग किया गया है। वहाँ भी ऐतिहासिक आधार विद्यमान है। जैसे - विशेषक, दीपाधर आपातक, गवाक्ष, कक्ष, उद्यान, कमल ताल, मत्स्याकार आसान, श्रृंगार कोष्ठ, मदिराकोष्ठ आदि शब्द ऐतिहासिक परिवेश का निर्माण करने वाले ही हैं। ऐतिहासिक पात्रों के साथ-साथ कतिपय पात्रों के नामों में भी पूर्णतया ऐतिहासिकता है। जैसे - श्वेतांग, श्यामांग, आर्य मैत्रेय, अलका, नीहारिका आदि। भाषा एवं संवादों में ऐतिहासिकता स्पष्ट झलकती है। उदाहरणत:

"आत्म-विनाश और आत्म-रक्षा, दोनों प्रवत्तियों के बीच एक साथ मैं कैसे जिया और क्यों? और उस तरह जीकर क्या सुख मिला और क्या सुख की ही खोज थी जिसने उस तरह जीने के लिए विवश किया? या यह केवल मन का विद्रोह था...बिना विश्वास एक विश्वास के अपने ऊपर लादे जाने के जिए? या इसलिए कि उस समय मैं इतना सत्वहीन क्यों हो गया कि भिक्षु आनन्द के कर्तनी उठाने पर चिल्ला नहीं सका कि, "यह विश्वास मेरा नहीं है। मैं तुम्हारा या किसी और का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता, नहीं जीना चाहता।"

यहाँ एक बात ध्यात्व है कि यह सब होते हुए भी इसकी आत्मा आधुनिक है उदाहरणत: "आत्म-वंचना की भी एक सीमा होती है। आज के दिन वे आशीर्वाद देंगी मुझे। मन में क्या सोच रहीं होंगी, मैं अच्छी तरह जानती हूँ।"

आधारभूत सामग्री की ऐतिहासिकता

नाटककार राकेश जी ने **लहरों के राजहंस**' की नाटकीय वस्तु-योजना में जिस आधारभूत सामग्री का उपयोग किया है, उसकी प्रमाणिकता स्वयं नाटककार भी संदिग्ध मानता है। इस नाटक के कथ्य का विकास महाकवि अश्वघोष की दो सर्जनाओं पर आधारित है बुद्ध चरित्र और 'सौन्दरानन्द'। इनमें से अधिकांश विद्वान 'सौन्दरानन्द' को प्रमाणिक सर्जना नहीं मानते। सौन्दरानन्द की अप्रमाणिकता का प्रमुख तर्क यह दिया जाता है कि इस जैसी प्रणय-कथा के अवशेष अन्य उपलब्ध रचनाओं में उपलब्ध नहीं हैं। इसी तरह नन्द के दीक्षित होने की बात 'बुद्ध चरित्र' में मिलती है और इसका आधार 'पलि-साहित्यमें प्राप्त होता है। उदान, जातक' और धम्मपद' लोक-संख्या 13-14 वर्णित कथा' में नन्दी की कथा का भी उल्लेख किया गया है। किन्तु इन ग्रंथों और 'सौन्दरानन्द' की कथा में अन्तर है। अत: निष्कर्ष निकलता है कि सौन्दरानन्द भी कल्पित है। अत: सौन्दरानन्द के मूलाधार पर रचे गए 'लहरों के राजहंस' नाटक की आधारभूत सामग्री को पूर्णत: ऐतिहासिक ही कहा जा सकता है। इस बात को स्वयं नाटककार भी स्वीकारता है कि साहित्यकार का दायित्व उतना इतिहास के प्रति नहीं होता, जितना की जीवन के चिरन्तन सत्यों एवं शाश्वत मूल्यों के प्रति होता।

पात्रो का ऐतिहासिक सन्दर्भ

इस नाटक में पूर्णत: ऐतिहासिक पात्रों में प्रथमत: राजकुमार नन्द, जो रंगमंच पर प्रस्तुत होकर समूचे वस्तु व्यापार के केन्द्र में रहकर उसकी अभिव्यक्ति करता है। नाटककार का अपनी चेतना का द्वन्द्व भी नन्द के माध्यम से ही अभिव्यक्त हो पाया है और इसे भी नाटक का अन्तिम फल प्राप्त होता है। दूसरा ऐतिहासिक पात्र है-गौतम बुद्ध, परन्तु नाटककार ने उसे रंगमंच पर कहीं भी प्रस्तुत नहीं किया

टिप्पणी

है। उसके चरित्र का उद्‌घाटन नाटककार सांकेतिक संवादों एवं शब्दावली में ही कर देता है और इन संवादों को ही

नाटककार इतनी प्रबलता से प्रकट करता है कि जिससे समूचे युग-परिवेश की चेतना को प्रभावित करने वाले गौतम बुद्ध का प्रभाव अकाट्य लगता है। तीसरा पूर्णत: ऐतिहासिक पात्र है-नन्द की रूपगर्विता पत्नी सुन्दरी। हाँ, इतना सम्भव है कि सौन्दरानन्द' में ही नन्द की पत्नी का नाम सुन्दरी' कतिपय किया गया हो, पर उसकी स्थिति और उसके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि नन्द की विलासिता का आधार ही उसकी पत्नी थी। वहीं उसे मदिरा से उन्मत्त किया करती थी। इसी कारण नन्द को दीक्षित होने से पूर्व उनके प्रेम-पाश से मुक्त होने के लिए बहुत अधिक मानसिक यातना भोगनी पड़ी थी। इसका चौथा ऐतिहासिक भाग पात्र है - भिक्षु आनन्द। गौतम बुद्ध के मुख्य शिष्यों में उनका नाम-रूप चरित्र आदि सभी इतिहासबद्ध है। अगर गौतम बुद्ध का व्यक्तित्व ऐतिहासिक है तो भिक्षु आनन्द का व्यक्तित्व भी ऐतिहासिक ही ठहरता है।

शेष सभी पात्र काल्पनिक है जिनमें अलका, नीहारिका, श्वेतांग, श्यामांग, आर्य, मैत्रेय आदि हैं। किन्तु ये पात्र कल्पित नहीं लगते, क्योंकि ये नाटक के रूप विधान में इतने धुल-मिल गए हैं कि इन्हें अलग करके देखा ही नहीं जा सकता और ये नाटक के कथ्य-विस्तार और विकास में पूर्ण सहयोग भी करते हैं।

घटनाओं में ऐतिहासिकता

प्रस्तुत नाटक की घटनाओं में मात्र इतनी ऐतिहासिकता है कि कपित वस्तु का राजकुमार और गौतम बुद्ध का सौतेला भाई नन्द अपनी अनुपम सौन्दर्य युक्त पत्नी सुन्दरी के यौवन पर अत्यधिक आसक्त था। फिर भी उसने बौद्ध मत से प्रभावित होकर उसकी दीक्षा ग्रहण कर ली। काफी दिन तक तो नन्द बुद्ध के प्रभाव को बढ़ते हुए देखता रहा, उधर सुन्दरी के रूप-प्रेम का प्रभाव भी उस पर बढ़ता गया। अन्तत: वह रूप जाल से मुक्त हो बुद्ध दर्शन में दीक्षित हो गया। बस ऐतिहासिकता तो यहीं तक है। बाकी सब लेखक ने आधुनिक संदर्भ में अन्तर्द्वन्द्व चेतना को व्याख्याति किया है।

उपर्युक्त इस घटना को छोड़कर बाकी सब कुल कल्पित है। श्यामांग का प्रसंग, कामोत्सम को आयोजन, कमल ताल के हंसों का उड़ जाना, रूपगर्विता सुन्दरी का श्रृंगार-प्रसाधन विशेषक बनाना और उसका सूखना, दर्पण का टूटना, हिरण के घायल होने की घटना, केश कटवाने के बाद नन्द का जंगल की ओर हिरण को देखने जाना और वहाँ बाघ से द्वन्द्व-युद्व होना, दीक्षा के बाद भी नन्द का वापिस भवन में आना और सुन्दरी के सूखे विशेषक को गीला करने का प्रयत्न आदि सभी बातें पूर्णत: नाटककार की अपनी बौद्धिक कल्पनाएं हैं। लेकिन लेखक ने अपने बौद्धिक कौशल से इन्हें ऐतिहासिकता में फिट बैठा दिया है।

अत: कहा जा सकता है कि **लहरों के राजहंस'** में उसी सीमा तक ऐतिहासिकता है जिस सीमा तक साहित्य इतिहास को पचा सकता है। आधुनिक संदर्भ में विशेष भूमिका निभा सकता है। इस नाटक में कल्पना और इतिहास को अलग-अलग कर पाना कठिन है। इसी संदर्भ श्री विजयबापट का कथन है - ऐतिहासिक कथानकों के आधार पर श्रेष्ठ और सशक्त नाटकों की रचना तभी सम्भव है जब नाटककार ऐतिहासिक पात्रों और कथा अभिप्रायों को ऐतिहासिकता के स्थान पर युगीन बना दे। साथ ही इतिहास के संघर्ष को आधुनिक अर्थ-व्यंजना प्रदान कर दें। इस अर्थ में मोहन राकेश का यह लहरों के राजहंस' नाटक सबसे क्ति नाटक है।' समय मूल्याँकन की दृष्टि से सुरेश अवस्थी का मत भी उदधत है - सभी देशों के नाटक।

टिप्पणी

जब भी श्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटकों की रचना हुई है, तब नाटककारों ने प्राचीन कथानकों को नई दृष्टि से देखा है और उनको नई अर्थ व्यंजनाएँ दी हैं। चाहे ढाई हजार वर्ष पूर्व लिखी गई महान त्रासदियाँ हों, चाहे एलिजाबेथ-कालीन कमादियाँ और चाहे फ्रांस, जर्मनी. इंग्लैंड और अमेरिका में पिछले दस-पन्द्रह वषों में लिखे गये नई शैली के ऐतिहासिक नाटक।" इसी दृष्टि से लहरों के राजहंस' नाटक की ऐतिहासिकता असंदिग्ध है और युगीन-भाव-बोध के अनुरूप इसमें कल्पना का समावेश हुआ है। अत: इसे कल्पना प्रधान ऐतिहासिक रोमांस अधिक तर्कसंगत ठहरता है।

2.7 लहरों के राजहंस : उद्देश्य अथवा प्रतिबोध

कोई भी रचनाकार किसी भी कृति की निरूद्देश्य सर्जन नहीं करता। प्रत्येक रचना में कोई-न-कोई उद्देश्य निहित होता हैं। यह उद्देश्य प्रत्यक्ष भी हो सकता है और अप्रत्यक्ष भी। लेखक रचना में स्नानुभूत सव्य की आत्माभिव्यक्ति करता है। लेकिन इसके साथ ही उसका कोई-न-कोई मुख्य उद्देश्य होता है। वह वातावरण, समाज और परिस्थितियों के आधार पर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए कोई-न-कोई आधार ग्रहण करता है, जिस आधार पर वह कथावस्तु का ढाँचा तैयार करता हैं। **लहरों के राजहंस'** नाटक के मसीहा मोहन राकेश की कृति है, इसमें भी उद्देश्य निहित है। इसके निहित उद्देश्य पर यहाँ हम विस्तार से चर्चा करेंगे।

'लहरों के राजहंस' में निहित उद्देश्य के बारे में डॉ० सुरेश अवस्थी का कहना है लहरों के 'राजहंस' में एक ऐसे कथानक का नाटकीय पुनराख्यान है जिसमें सांसारिक सुखों और आध्यात्मिक शन्ति के पारस्परिक विरोध तथा उनके बीच खड़े हुए व्यक्ति के द्वारा निर्णय लेने का अनिवार्य द्वन्द निहित है।" इस द्वन्द्व के बारे में डॉ० अवस्थी जी आगे लिखते है "इस द्वन्द्व का एक दूसरा पक्ष स्त्री और पुरूष के पारस्परिक सम्बन्धों का अन्त: विरोध है और यह अन्त: विरोध किसी युग-विशेष या व्यक्ति विशेष का नहीं वरन् समस्त मानव जाति और युगों-युगों का है। यह अन्त: विरोध नन्द या सुन्दरी का ही नहीं, आज के स्त्री और पुरूष का भी है उतना ही गहन और भयावहना। जीवन के प्रेम श्रेय के बीच एक कृत्रिम और आरोपित विरोध है जिसके कारण के लिए चुनाव कठिन हो जाता है और उसे चुनाव करने की स्वत्रन्ता भी नहीं रह जाती। चुनाव की यातना, ही इस नाटक की कथा-बीज और उसका केन्द्र बिन्दू है। धर्म-भावना से प्रेरित इस कथानक में उलझे हुए अनेक प्रश्नों का इस कृति में नये भाव-बोध के परिवेश में परिक्षण किया गया है। मोहन राकेश ने इसकी कथा का आधार ऐतिहासिक रखा है किन्तु उनका उद्देश्य आधुनिक मनुष्य के द्वन्द्व को चित्रत करना है। राकेश जी ने ऐतिहासिक परिवेश को आधार बनाकर प्रवृत्ति एवं निवृत्ति या पार्थिक एवं अपार्थिक मूल्य का जो संर्घष या द्वन्द्व चित्रित किया है, वह आधुनिक परिप्रेक्ष्य में आधुनिक मनुष्य के अन्त: द्वन्द का ही चित्रिण है। इसकी आधुनिकता पर विचार करते हुए डॉ० जयदेव तनेजा का कहना है लहरों के राजहंस' के राजहंस की आधुनिकता पर विचार करे तो हमें प्रतित होता है कि बौद्धकालिन ऐतिहासिक परिवेश (जो स्वयं भी आधुनिकता के तमाम अभिलक्ष्णों से भरा पड़ा है) में राकेश ने नन्द और सुन्दरी को जिस प्रकार से और जिस रूप में प्रस्तुत किया है वह पति: आधुनिक है इसकी आधुनिकता का मूल रहस्य ट्रीटमेन्ट' और नाटककार के अपने वर्तमान से उसके गहरे कन्सर्न' में छिपा है। नन्द का अन्त द्वन्द, तनवा, अकेलापन, संशय उसकी अस्थिरता, व्याकुलता, घुटन और जीवन के जगत में आसक्ति नन्द के चेहरे की एक-एक रेखा उसका उतार-चढ़ाव आधुनिक मनुष्य की स्थिति और उसकी नियति का प्रमाणित दस्तावेज है।"

अत: तनेजा जी की दृष्टि में भी राकेश जी ने आधुनिक मनुष्य के द्वन्द को व्यक्त किया है। जिस द्वन्द में से हर व्यक्ति को अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं तलाशना है। दूसरे के द्वारा खोजा हुआ मार्ग चाहे

टिप्पणी

कितना भी श्रद्वापद हो, आकर्षक हो, परन्तु संवेदनशील व्यक्ति का समाधान नहीं कर सकता। इसी स्थिति का प्रकटीकरण लेखक गौतम और सुन्दरी के बीच नन्द की चेतना की द्वन्दआत्मक स्थिति की अभिव्यक्ति से करता है।

राकेश जी नाटकीय अन्तद्वन्द को आधुनिक परिवेश देने में सफल हुआ है। इस सम्बन्ध में डॉ० जयदेव तनेजा का कहना है आधुनिक मनुष्य अन्दर ही अन्दर एक ही विदीर्ण जीवन जीने के लिए अभिशक्त है। अन्त विरोध, असंगति तनाव और कारण मानसिक यातना का यह अभिशाप लहरों से राजहंस का नन्द भी आज के व्यक्ति के तरह ही भोगता हैं और उसका विश्लेषण, प्रस्तुतीकरण राकेश आज के नाटककार के तरह ही करता है।"

अत: राकेश जी ने यहाँ ऐतिहासिक कथा के साथ ही ऐतिहासिक पात्रों, घटनाओं एवं स्थान के साथ आधुनिक द्वंद्व-ग्रस्त रूपाचित किया है जिससे नाटक ऐतिहासिक होने के साथ ही आधुनिक भी हो गया है। जिसमें नाटकार ने एक युग-विशेष की कथा के माध्यम से युगों-युगों के द्वन्द्व को चित्रित कर दिया है।

वास्तव में प्रवत्ति एवं निवत्ति या पार्थिय एवं अपार्थिय में परस्पर विरोध इनमें से किसी एक के चनाव की यातना, असमर्थता, द्वन्द युगों-युगों की समस्या है, किन्तु आधुनिक परिवेश में ये समस्याएँ कठिन एवं जटिल है जिन्हें नाटककार ने युग-बोध के साथ अंकित किया है।

प्रस्तुत नाटक में कपिलवस्तु के राजकुमार नन्द के बौद्धमत से दीक्षित होने एवं उसकी पत्नी अनपस सुन्दरी के रूपाकर्षण में फंसे नन्द की कथा है। नाटक का कथानक द्वन्द के दो धरातलों पर सचरण करता है। एक स्तर पर नन्द सुन्दरी के रूप जाल में फंसा है उससे मुक्ति चाहता है, दूसरी ओर बौद्धमत की पुकार को स्वीकार करता है, लेकिन वह न तो पूर्णतया पत्नी का ही त्याग कर पाया और न ही पूर्णरूप से बौद्धमत में दीक्षित हो पाया। वह जबरन भिक्षुक बना दिया जाता है। जबरन उसके केश काट दिए जाते हैं, लेकिन वह फिर भी सुन्दरी के पास लौटता है। वह सुन्दरी के अधूरे श्रृंगार को देखकर कहता है "जिस सामर्थ्य और विश्वास के बल पर जी रहा था, उसी के सामने मुझे असमर्थ और असहाय बनाकर फेंक दिया गया है।" यहाँ अनुपम सुन्दरी की मान्यता एवं सोच टूट जाती है। उसकी सोच थी कि उसका पति नन्द कभी भी उसके सौन्दर्य पाश से मुक्त होकर बौद्ध भिक्षु नहीं बन सकता। अत: यहाँ द्वन्द के दो धरातल हैं। यहाँ राकेश का उद्देश्य नन्द के द्वन्द को आधुनिक मनुष्य के द्वन्द से जोड़कर उसे उजागर करना रहा है और इस उद्देश्य में वह सफल भी हुआ है। यहाँ महत्व इस बात का नहीं है कि उसने बौद्ध मत को स्वीकार किया या नहीं; महत्व इस बात का है कि उसकी चेतना द्वन्दग्रस्त रहती है जिसे रूपचित करना नाटककार का अभीष्ट रहा है। स्वयं राकेश जी कहते भी हैं- "यहाँ नन्द एवं सुन्दरी की कथा एक असल मात्र हैं, क्योंकि मुझे लगा कि इसे समय में परिक्षेपित किया जा सकता है। नाटक का मूल अन्तर्द्वन्द उस अर्थ में यहाँ भी आधुनिक है जिस अर्थ में आषाढ़ का एक दिन' के अन्तर्गत है।"

लहरों के राजहंस' के नन्द और सुन्दरी की कथा तो 'आधारमात्र' है। उसका वास्तविक उद्देश्य तो सामयिक चेतनाओं अथवा आधुनिक मानव की द्वन्दग्रस्त चेतना का चित्रण करना है। नाटककार इतिहास को नहीं दोहराता वह तो इतिहास के माध्यम से आधुनिक परन्तु शाश्वत समस्याओं को चित्रित करता है। इसी कारण नाटक में कथ्य को प्रतीकात्मक रूप दिया है ताकि उसके ऐतिहासिक पात्र, घटनाएँ, चरित्र आदि आधुनिक संदर्भो को व्याख्यायित कर सकें।"

टिप्पणी

नाटक के द्वन्द्वग्रस्त मुख्य पात्रों में आधुनिक युग-बोध सहज ही मिल जाता है। नन्द सुन्दरी और श्यामाग में जो तड़प, व्याकुलता एवं मुक्ति की ललक है, आधुनिक द्वन्दग्रस्त मानव में देखी जा सकती है। उदाहरणत: श्यामाँग का संवाद -

- "बस कह दिया, तो हो गया! पत्तियाँ रचामाँ के लिए छोड़ दो! श्यामाँग से पत्तियाँ न सुलझी, तो कामोत्स नहीं होगा।... श्वेताँग कहता है कुछ सोचों नहीं।... पर सोचना न सोचना बस की बात है... पिछले बसंत में आम कैसे बैराये थे! पेड़ों की डालियाँ अपने-आप हाथों पर झुक आती थीं।... परन्तु तब यहाँ कामोत्सव का आयोजन नहीं किया गया। आयोजन किया गया है इस बार...आम के वृक्षों ने भिक्षुओं का वेश धारण कर रखा है! ... कल प्रात: देवी यशोधरा भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ग्रहण करेगी और यहाँ ... यहाँ रात भर नृत्य होगा। आचानक चलेगा।"

मुक्ति की आकांक्षा से वह कहता है "नहीं ... मैं सोच...सोच कुछ भी नहीं रहा। चेष्टा कर रहा हूँ कि किसी तरह ... किसी तरह से सुलझ जाएँ और ...।"

जब सुन्दरी श्रृंगार कर रही होती है और नन्द दर्पण को हाथों में लेकर सामने खड़ा होता है तब नेपठच से बौद्ध भिक्षुओं का यह समवेत स्वर सुनाई देता है -

'धम्मं शरणम् गच्छामि,
संघं शरणम् गच्छामि,
बुद्धं शरणम् गच्छामि...।'

इस बुद्धमत के इस स्वर से नन्द-प्रभावित होता है और उसके हाथों का दर्पण हिलकर टूट जाता है। तभी सुन्दरी पूछती है "जानना चाहती हूँ कि क्या दर्पण का टूटना सचमुच अकारण ही था... या उस समय आप कोई बात सोच रहे थे?" उसके मन के संशय पर पर्दा हटा देता है। आधुनिक सभी पुरूषों के संबधों में भी यह संशयग्रस्तता देखी जा सकती है। एक तरह से यह आधुनिक नारी का विद्रोही-स्वर है/

नाटक के अन्त में नन्द एवं सुन्दरी का अन्तर्द्वन्द आधुनिक व्यक्ति का ही अन्तर्द्वन्द है। नन्द कहता है "जानता था कि वह प्रवृत्ति आत्म-विनाश की है, परन्तु उस प्रवत्ति को मैं रोक क्यों नहीं सका? क्यों मैने जान-बूझकर आत्म-विनाश को निमंत्रित किया, और फिर स्वयं ही आत्मरक्षा के लिए उस तरह लड़ गया?"

क्षत-विक्षत हम दोनों हुए ... पलायन भी एक तरह से दोनों ने ही किया ...। क्यों? आत्म-विनाश और आत्मरक्षा, दोनों प्रवतियों के बीच एक साथ मैं कैसे किया और क्यों? और इस तहर जीकर क्या सुख मिला? और क्या यह सुख कहीं की खोज थी जिसने उस तरह जीने के लिए विवश किया?' इतना ही नहीं वह और स्पष्ट कहता है

"या यह केवल मन का विद्रोह था ... बिना विश्वास के अपने ऊपर लादे जाने के लिए? या कि इसलिए कि इस समय मैं इतना सत्वहीन क्यों हो गया कि भिक्षु आनन्द के कर्तनी उठाने पर चिल्ला नहीं सका कि (यह विश्वास मेरा नहीं है) मैं तुम्हारा या किसी और का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता, नहीं जीना चाहता।"

अत: बौद्धमत में उसका विश्वास नहीं झलकता, उसकी चेतना द्वन्द्वग्रस्त है। एक और बौद्धमत है और एक ओर सुन्दरी। नन्द फिर चाहता है।

"इतना समझ में आता है कि जिसे जाने से जीवन धीरे-धीरे चुक जाता है। कि हर उन्मेष का परिणाम एक निमेष है और काल के विस्तार में निमेष और उन्मेष दोनों अस्थाई हैं। सुख सुख नहीं हैं, कहीं पर फिसलते हुए पाँव का एक स्पन्दन मात्र है, मात्र रेत में डूबती हुई बूंद की एक अकुलाहट ... परन्तु

टिप्पणी

वह स्पन्दन, वह अकुलाहट ही क्या जीवन का पूरा अर्थ, जी लेने का कुल पुरस्कार नहीं हैं?... आकाश में कहीं लटकने हुए नाले काले बिन्दु-कोरे सिद्धान्तों के वे अधिक स्थाई, अधिक सत्य कैसे हैं?"

नन्द फिर कहता है 'उन्होंने मेरे केश कटवा दिये तो क्या मैं व्यक्ति रूप में अधिक सत्य हो गया?' वह फिर प्रश्न उठाता है - जिहवा कटवा देते, हाथ-पैर कटवा देते, तो और अधिक सत्य हो आता? ... कटवा ही दिए, तो उससे अन्तर क्या पड़ता है? कुछ ही दिनों में फिर नहीं उग आएँगे? अन्तर पड़ता यदि मेरा हृदय बदल जाता, आँखे बदल जाती।' वह फिर सुन्दरी से कहता है- श्मेरे हृदय में तुम्हारे लिए अब भी वही अनुराग है, आँखों में तुम्हारे रूप की अब भी वही छाया है। अतः वह केश कटने के बाद भी सुन्दरी के रूपाकर्षण को नहीं छोड़ पाया है और बौद्धमत को स्वीकार भी नहीं कर पाया है। उसका द्वन्द आज के आधुनिक मानव का द्वन्द है, बल्कि युगों-युगों तक भी मानव चेतना का द्वन्द है। उसके प्रश्न आधुनिक मानव के प्रश्न है "अब मुझे जाकर उनके कई-कई प्रश्न पूछने होंगे ... जीने की इच्छा को कितने-कितने प्रश्नों के एक साथ घेर लिया है। व्याघ्र से लड़कर भी मन को शान्ति नहीं मिली ... लगता है अभी और लड़ना है, बहुत लड़ना है ... ऐसे किसी से जिसके पास लड़ने के लिए भुजाएँ नहीं हैं। ... मन में मृत्यु का भय है ... किसी भी प्रकार की मृत्यु का ... परन्तु उस भय में साथ एक आकर्षण भर दिया गया है। अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच मेरी चेतना को एक प्रश्न चिन्ह ... केवल एक प्रश्न चिन्ह बनाकर छोड़ दिया गया है। क्यों ... पहले इसी प्रश्न को उत्तर मुझे उनसे जानना है ... आज भी ... और अभी ...।"

नन्द शुरू से अन्त तक द्वन्द्वग्रस्त रहता है। उसकी द्वन्दग्रस्त चेतना को उजागर करना ही राकेश जी का उद्देश्य रहा है। यहाँ ऐतिहासिक कथानक के माध्यम से आधुनिक स्त्री-पुरूष के संबंधों की पड़ताल कर उन्हें अभिव्यक्त किया गया है। इसी सन्दर्भ में डॉ० जयदेव तनेजा का कहना हैं -

"नन्द और सुन्दरी के माध्यम से राकेश ने जिस तरह औरत और मर्द के आपसी रिश्ते का रेशा-रेशा उधेड़ा है, उनके संबंधों को जैसी निर्ममता और निष्ठुरता से विश्लेषित किया है, वह आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि का ही परिणाम या प्रमाण हैं।

राकेश जी ने स्त्री-पुरूष के खोखले सम्बन्धों की अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने यह भी अभिव्यक्ति किया है कि एक के बिना दूसरे का जीवन अपूर्ण है। तभी दो सुन्दरी कहती है "वहाँ वह सुना कमलताल ... यहाँ कक्ष का यह सूनापन... लगता है आज घर अपना घर नहीं रहा...।"

आज की जिन्दगी का यह सूनापन स्त्री-पुरूषों की जिन्दगी की नियति बना गया है। स्त्री कहाँ-कहाँ पुरूष कहाँ-कहाँ? कुछ पता नहीं। अगर साथ भी है तो खालीपन महसूस करते हैं। होने को भी न होना ही मान लेते हैं। यह एक नया कल्चर' आ रहा है जिस ओर नाटककार यहाँ इंगित कर रहा है। स्त्री और पुरूष दोनों ही बाह्य सुन्दरता को ही पसन्द करते हैं। तभी तो नाटक में केश कटवाने पर भी नन्द अपने केश वापिस लेना चाहता है, क्योंकि उनकी पत्नी को उन केशों की आवश्यकता है। नन्द का कहना है उन्होंने कहा कि ... वे अपने केशों की खोज में जा रहे हैं। जाकर तथागत से पूछना चाहते हैं कि उन्होंने उनके केशों का क्या किया? और यदि कुछ नहीं किया, तो क्या उनके केश उन्हें लौटाये जा सकते है? उनकी पत्नी को उनके केशों की आवश्यकता हैं ...।"

नन्द यह सब इसलिए कहता है, क्योंकि सुन्दरी नन्द को केश कर्तित देखकर चीख पड़ती है और उसका मनस्ताप (मन का दुखः) फूट पड़ता है "इतना ही तो समझ पाते हैं ये लोग... बस इतना ही तो इनकी समझ में आ पाता है।"

टिप्पणी

उपर्युक्त संवाद से आधुनिक मनुष्य का नारी के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। वैसे गम्भीरता से सोचा जाए तो युगों-युगों से ही पुरूष प्रधान समाज का नारी के प्रति यही दृष्टिकोण रहा है जो नन्द का सुन्दरी के प्रति रहा है। नन्द सुन्दरी के रूप पर ही आकर्षित है और नारी के रूप पर आकर्षित होना मनुष्य की युगों से ही वृत्ति रही है। वह नारी की हार्दिक भावनाओं को नहीं समझता वरन् वह यही समझता है कि स्त्री भी रूप सौन्दर्य और यौवन की प्यासी है। इसलिए उससे प्रेम करती है जबकि सत्य यह नहीं है। अगर सत्य यहीं होता तो सुन्दरी केश कर्तित नन्द को देखकर यह नहीं कहती कि ये लोग बस इतना ही समझते हैं। पुरूष ही क्या स्त्री की भी तो यही मानसिकता है कि पुरूष का प्रेम पाने के लिए उसे रूपाकर्षण में ही बांधकर रखा जाए। इसलिए सुन्दरो देवी यशोधरा को लांछित करती है कि तुमने आकर्षण होता तो गौतम बुद्ध राजकुमार सिद्धार्थ ही रहते बौद्ध न बनते। वह कहती है "परन्तु राजकुमार सिद्धार्थ आज गौतम बुद्ध बनकर आए, इसका श्रेय भी तो देवी यशोधरा को है।" अर्थात् वह अपने रूपाकर्षण में बांधती तो वह बंधकर ही रहते, गौतम बुद्ध न बनते। गौतम बुद्ध बनकर नदी तट पर लोगों को उपदेश दे रहे होते? बात बहुत साधारण-सी है अलका! नारी का आकर्षण पुरूष को पुरूष बनाता है, तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।"

आधुनिक नारी पाश्चात्य प्रभाव से देह सुख, भौतिक सुख को ही सबसे बड़ा सुख मानती है। नायिका सुन्दरी भी भौतिक सुख को ही सबसे बड़ा सुख मानती है। नायिका सुन्दरी भी भौतिक सुख को ही सब कुछ मानती है, जो मिथ्या और भ्रांति है। इस सन्दर्भ में डॉ० सुरेश अवस्थी का कहना "सुन्दरी के रूपपाश में बंधे हुए अनिश्चित, अस्थिर और संशयी मन वाले नन्द की यही स्थिति होती कि नाटक का अन्त होते-होते उसके हाथों में भिक्षा पात्र होता और धर्म-दीक्षा में उसके केश काट दिए जाते।"

एक और बात हैं कि आधुनिक नारी अपने पति को जबरन बाँधकर नहीं रखना चाहती। अगर उसका पति उससे खुश नहीं हैं तो वह उसे मुक्त करने में हिचकती नहीं। इस नाटक की सुन्दरी भी नन्द को मुक्त कर देती है। नाटक में जब अलका नन्द को सूचना देती है कि गौतम बुद्ध द्वार पर भिक्षा लेने आए थे, किन्तु किसी ने भिक्षा नहीं दी इसलिए वे लौट गए। यह सुनकर नन्द क्षुब्ध और अस्थिर हो गया। तभी सुन्छरी पूछती है कि क्या सोच रहे हो। नन्द कहता है कि बुद्ध से क्षमा याचना के लिए मैं जाना चाहता हूँ। सुन्दरी उसे आज्ञा दे देती है, मुक्त कर देती है। अत: यह आधुनिक स्त्री-पुरूष का युगबोधपरक अंकन है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि **लहरों के राजहंस'** नाटक में राकेश जी का मूल उद्देश्य युगों-युगों से मानव की प्रवृति एवं निवृति के बीच द्वन्दग्रस्त चेतना को उजागर करना है और साथ ही पुरूष प्रधान मानसिकता का नारी के प्रति दृष्टिकोण भी व्यक्त करना है। यदि यहीं नहीं, आधुनिक नारी की विद्रोहात्मक भावना को भी उजागर करना है। संदेहवादी और नास्तिक होने से भी नहीं हिचकिचाती। यहीं आकर आधुनिकता बुद्धिवाद से जुड़ जाती है और मनोविश्लेषण, अस्तित्वाद, विकासवाद आदि सब इसमें अन्तर्मुक्त हो जाते हैं। सम्भवत: इसलिए अवचेतन, ग्रंथियाँ, कुंठाएँ, अकेलापन, अजनवीपन, ऊब, विसंगति, संबंधों की जटिलता, उदासी और सम्प्रेसहीनता आदि को आधुनिकता के लक्षणों के रूप में माना जाने लगा है।" इस प्रकार आधुनिकता के लक्षण हैं मानव के अवचेतन मन में ग्रंथियाँ, कुंठाएँ, अजनवीपन, अकेलापन, ऊब, विसंगति, संबंधों की जटिलता, उदासी और सम्प्रेषणहीनता आदि। आधुनिकता से ही संबंद्ध यह भी एक मूलभूत तत्व है कि देश-काल के साथ सचेतन मन की गहरी और तीव्र अनुभूति और यह अनुभूति पूर्णतया से वर्तमान परिस्थितियों को स्वीकार करके समसामयिक मुहावरें में सहज कलात्मकता से अभिव्यक्त हो जाए। इस आधुनिकता को निरूपत करने वाली दृष्टि के सामने जो समस्या आती है उसके बारे में विपिन अग्रवाल का कहना है "आधुनिकता की मुख्य समस्या विषम वस्तु नहीं है... आधुनिकता की मुख्य समस्या अभिव्यक्ति की है।

टिप्पणी

अत: आधुनिकता का संबंध विषय से न होकर निरूपित करने वाली दृष्टि से है। आधुनिकता के संबंध में स्वयं मोहन राकेश का मत है "आधुनिकता मन का एक ऐसा व्यापार (प्रकिया) है जो इसकी शक्तियों को एक विशिष्ट दिशा प्रदान करता है और (वर्तमान) युग की घटनाओं तथा विशेषताओं के प्रकाश में वस्तुओं को देखने और उन्हें व्याख्यायित करने की दृष्टि देता है।" अत: जिस प्रकार चित्रकार हुसैन के रामायण पर आधारित राम, सीता, हनुमान आदि पौराणिक पात्रों के चित्र आधुनिक या प्राचीन ऐतिहासिक चित्र नहीं कहलाते, ठीक उसी प्रकार इतिहास-पुराण की कथावस्तु या पुरातन पाठों को लेकर आधुनिक दृष्टि से लिखा गया '**लहरों के राजहंस**' नाटक भी ऐतिहासिक-पौराणिक न होकर आधुनिक ही कहलाएगा। इस संदर्भ में डा० जयदेव तनेजा का कहना है "इसी दृष्टि से यदि '**लहरों के राजहंस**' की आधुनिकता पर विचार करें तो हमें प्रतीत होता है कि बौद्धकालीन ऐतिहासिक परिवेश (जो स्वयं भी आधुनिकता के तमाम अभिलक्षणों से भरा पड़ा हैं) मैं राकेश ने नन्द और सुन्दरी को जिस प्रकार से और जिस रूप में प्रस्तुत किया हैं, वह पूर्णत: आधुनिक है। इसी आधुनिकता का मूल रहस्य नाटक के '**ट्रीटमेंट**' और नाटककार के अपने वर्तमान से उसके गहरे '**कन्सर्न**' में छिपा है। नन्द का अन्तर्द्वन्द्व, तनाव, अकेलापन, संशय उसकी अस्थिरता, व्याकुलता घटन और जीवन-जगत में उसकी आसक्ति-नन्द के चेहरे की एक-एक रेखा, उसका उतार-चढ़ाव आधुनिक मनुष्य की स्थिति और उसकी नियति का प्रमाणिक दस्तावेज है। नन्द और सुन्दरी के माध्यम से राकेश ने जिस तरह औरत-मर्द के आपसी रिश्ते का रेशा-रेशा उधेड़ा है, उनके संबंधों को जैसी निर्ममता और निष्ठुरता से विश्लेषित किया है वह आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि का ही परिणाम या प्रमाण है।"

राकेश जी ने यहाँ अलका-श्यामाँग के रोमानी संबंधों के समकक्ष नन्द-सुन्दरी के आधुनिक बौद्धिक प्रेम-प्रसंग को पूरी नाटकीयता एवं काव्यात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है। इसके प्रमुख चरित्र नन्द, सुन्दरी, ङ्केगौतम बुद्ध ऐतिहासिक है। किन्तु इनका परित्राकंन पूर्णत: आधुनिक हैं। ये जटल, सस्लिाष्ट एवं व्यक्ति वैचित्र्य सम्पन्न चरित्र हैं, जो इन्हें आधुनिक चरित्र बना देती है। इनके मानसिक उद्वेग, अर्द्वन्द, तनाव कुंठाएँ, व्याग्रता और संशय इन्हें आधुनिक धरातल पर लाकर खड़ा कर देते हैं। वास्तव में मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखना ही आधुनिक दृष्टिकोण है। इसी कारण राकेश ने प्रस्तुत नाटक के सभी पात्रों को मनुष्यता के धरातल पर प्रस्तुत किया है। यहाँ तक कि इतिहास में देवत्व के स्थान पर प्रतिष्ठित गौतम बुद्ध को भी नाटककार ने सामान्य मनुष्यता के स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया है। अत: यह कथन सिद्ध होता है कि जो जितना अधिक मनुष्य है, वह उतना ही अधिक आधुनिक है। इस नाटक में यह उक्ति सार्थक भी हैं, क्योंकि नन्द को श्यामाँग और सुन्दरी को अलका से अभिन्न मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने में ऊँचे-ऊँचे या छोटे-नीचे या छोटे-बड़े की दीवारें बीच में नहीं खड़ा होती, बल्कि वे मानवीय स्तर पर संबंधों को खड़ा करते हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण में राकेश ने आधुनिक दृष्टिकोण को अपनाया है। इस विषय पर डाँ० जयदेव तनेजा का कहना है

"चरित्रांकन की दृष्टि से श्यामाँग के अस्पष्ट, उलझे और ऊल-जलूल संवादों में विसंगति को बोध भी लेखक के आधुनिकता बोध का ही परिणाम लगता है। आधुनिक नाटक में घटनाएँ बाहर कम, भीतर अधिक घटित होती है। घटनाओं की यह अन्तर्मुखता आधुनिक नाटक की एक मुख विशेषता है। इसी विशेषता को अपने ढंग से रेखांकित करते हुए मोहन राकेश के लहरों के राजहंस' की पहली भूमिका में कहा है कि नाटक का मूल अन्तर्द्वन्द उस अर्थ में यहाँ भी आधुनिक है जिस अर्थ में आषाढ़ का एक दिन' के अन्तर्गत है। इसे आधार बनाकर डाँ० प्रेमपति ने व्यंग्य करते हुए प्रश्न उठाया है अर्थात् वर्तमान की संगति अन्तर्द्वन्द में ही है और यही आधुनिकता है। क्या नाटकों के ऐतिहासिक संदर्भ में राष्ट्रवाद की जगह अन्तर्द्वन्द रख देने मात्र से नाटक रोमनी परम्परा से निकलकर आधुनिक नाटक बन जाते हैं?' तनेजा जी आगे लिखते हैं कि "काम का विचार हैं कि आधुनिक मनुष्य अन्दर-ही-अन्दर एक

टिप्पणी

सिधा-विकीर्ण जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। अन्तर्विरोध, असंगति, तनाव और अकारण मानसिक यातना का यह अभिशाप लहरों के राजहंस' का नन्द भी आज के व्यक्ति की तरह ही भोगता है और उसका विश्लेषण प्रस्तुतीकरण राकेश आज के नाटककार की तरह ही करता है।... स्ट्रिडबर्ग नाटक में आधुनिकता की मूलशर्त 'मानसिक प्रक्रिया का विश्लेषण' मानते हैं। राकेश ने इस मूल शर्त को अपने प्रत्येक नाटक की आधारशिला बनाया सदैव से ही संशय अथवा संदेह ने मानव-जीवन में एक विशेष भूमिका निभाई है। आधुनिक युग में तो इस भाव की केन्द्रीय भूमिका हो गयी हैं। इसी कारण आज अनेक विद्वान संशय को आधुनिकता का एक लक्षण ही नहीं, बल्कि एक मूल्य मानने लग गए हैं। यह कहना गलत न होगा कि पौराणिकता में जो स्थान श्रद्धा और विश्वास का था, वहीं स्थान अब आधुनिक जीवन में संदेह अथवा संशय का हो गया है। इस बात को डॉ० जयदेव तनेजा भी स्वीकार करते हैं "इसलिए **लहरों के राजहंस**' में सुन्दरी के प्रेम-प्रसंग में अंगाराभास' की स्थिति वास्तव में इसके आधुनिक होने का ही प्रमाण है। संशय ही वह धुरी हैं जिस पर नन्द और सुन्दरी घूम रहे हैं। नन्द का स्वयं को चौराहे पर खड़ा नंगा व्यक्ति समझना और लीलती दिशाओं को खुद-अपने-अपने ध्रुवों पर डगमगाते हुए अनुभव करना, उसे प्राचीन दार्शनिक की अपेक्षा आधुनिक वैज्ञानिक के अधिक निकट ले आता है जो यह मानता है कि प्रत्येक ज्ञान का आरम्भ बिन्दु श्रद्धा नहीं संशय हैं।"

संशय ही नहीं आधुनिक युग में तो व्यंग्य ने भी विशेष स्थान बना लिया है। इस बात को स्वीकारते हुए डॉ० शेरजंग गर्ग अपनी स्वातन्त्र्योतर' हिन्दी कविता में व्यंग्य नामक पुस्तक में लिखते हैं "आज का जीवन निश्चय ही विभिन्न प्रकार की विसंगतियों और विषमताओं द्वारा विसंजित किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में इस जीवन के भोक्ता मनुष्य की अभिव्यक्ति में तिक्तता, कडुवाहट और कसैलेपन का आ जाना अस्वाभविक नहीं है। बहुत गहरे में चोट खाया हुआ मनुष्य जब बोलेगा तब व्यंग्य ही बोलेगा, जब कुछ करेगा तो प्रहार ही करेगा।" ये प्रहार, व्यंग्य लहरों के राजहंस' के पहले अंक में सुन्दरी द्वारा यशोधरा और गौतम बुद्ध पर देखे जा सकते हैं और तीसरे अंक में गहरी चोट खाये नन्द और सुन्दरी के तीखे, कडुवे संवाद (व्यंग्य) आधुनिक युग परिवेश को दिखाने के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरण के रूप में सुन्दरी के निम्न संवाद अभिप्राय यही हैं कि देवी यशोधरा का आकर्षण यदि राजकुमार सिद्धार्थ को बांधकर अपने पास रख सकता, तो क्या वे आज राजकुमार सिद्धार्थ ही ना होते? गौतम बुद्ध बनकर नदी-तट पर लोगों को उपदेश दे रहे होते।" "क्यों यह सच नही? राजकुमार सिद्धार्थ क्यों चुपचाप एक रात घर से निकल पड़े थे? बात बहुत साधारण सी है। अलका! नारी को आकर्षण पुरूष का पुरूष बनाता है, तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।"

सुन्दरी तो गौतम बुद्ध पर भी व्यंग्य प्रहार करती हुई कहती है "लोग कहते हैं कि गौतम बुद्ध ने बोध प्राप्त किया है, कामनाओं को जीता है, पर मैं कहती हूँ कि कामनाओ को जीता जाए, यह भी क्या मन की एक कामना नहीं है।"

एक और उदाहरण देखिए कोई गौतम बुद्ध से कहे कि कभी कमलताल के पास आकर उनसे भी निर्वाण और अमरत्व की व कहे। ये एक बार चकित दृष्टि से उनकी और देखेंगे, फिर कांपती हुई लहरें जिधर ले जाएँगी, उधर को ही जाएँगे शायद उस दिन एक बार गौतम बुद्ध का मन नदी तट पर जाकर उपदेश देने को नहीं होगा। मैं चाहूँगी कि उस दिन... ।"

नाटक के अंत में नन्द के संवाद भी इसी कोटि के हैं "कौन कह सकता हैं कि भ्रांति वस्तुत: किसे है, उन्हें या मुझे। उन्होंने कहा, मैं, मैं नहीं हूँ, तुम तुम नहीं हो, वह वह नहीं है...सब किसी उँगली से आकाश में बनाए गए चित्र हैं जो बनते-बनते साथ ही मिटते जाते है जिनका होना न होने से भिन्न नहीं हैं ...पर मैं पूछता हूँ कि होने-न-होने में कोई अन्तर नहीं, तो मेरे केश क्यो कटवा दिए? इन

टिप्पणी

व्यंग्य प्रहारों से एक बात तो स्पष्ट है कि राकेश जी ने यहाँ व्यंग्य का प्रयोग केवल संवादों के रूप में ही नहीं बल्कि नाटकीय स्थितियों के भीतर से नाट्य विडम्बना' को सार्थक ढंग से उभारने के लिए भी किया है।

इस सन्दर्भ में आटटेयर कामू द मिय ऑफ सिसिफ्स' में कहते हैं- विसंगति का सही बोध मेरे अन्तर तीन सत्यों को जन्म देता है। जीवन के प्रति नन्द की संसक्ति उसे बड़े भाई युग पुरूष गौतम बुद्ध की अवहेलना भी करा देती है और अपनी स्वाधीनता के लिए वह त्याग से ही नहीं अपनी पत्नी सुन्दरी से भी अलग हो जाता है। वह एक स्तर पर निवृत्ति एवं प्रवत्ति दोनों ही दर्शनों का विद्रोह भी करता दिखाई देता है। इसलिए वह नाटकांत में अपने कटे हुए केश सुन्दरी के लिए लेने के लिए वापिस गौतमक बुद्ध के पास जाने के लिए कहता है

- "तब प्रश्न उन्होंने पूछे थे...अब मुझे जाकर उनसे कई-कई प्रश्न पूछने होंगे। ...जीने की इच्छा को कितने-कितने प्रश्नों ने एक साथ घेर लिया है। व्याघ्र से लड़कर भी मन को शान्ति नहीं मिली...लगता है अभी और लड़ना है, बहुत लड़ना है... ऐसे किसी से जिसके पास लड़ने के लिए भुजाएँ नहीं है।...मन में मृत्यु का भय है,.. किसी भी प्रकार की मृत्यु का... परन्तु उस भय में एक साथ आकर्षण भर दिया गया है। अस्तित्व और अनस्तित्व के बीच मेरी चेतना को एक प्रश्नचिह...केवल एक प्रश्नचिन्ह बनाकर छोड़ दिया गया है। क्यों...पहले इसी प्रश्न का उत्तर मुझे उनसे जानना है... आज ही और अभी... ।"

अत: नाटक के शुरू से अन्त तक नन्द की स्वतन्त्रता और प्रवति एवं निवृति मार्ग के वरण का संघर्ष निरन्तर चलता रहता है और राकेश जी उनकी इस संघर्ष एवं द्वन्द की चेतना को लहरों के राजहंस' नाटक में रूपायित कर देते हैं।

डॉ० जयदेव तनेजा का मानना हैं कि राकेश जी का नारी विषमक दृष्टिकोण आधुनिकता की दृष्टि केवल एक ही बात मोहन राकेश के विरूद्व जाती है और वह है उनका नारी-विषयक दृष्टिकोण। सुन्दरी को भोग के प्रतीक रूप में चित्रित करके राकेश ने मध्यकालीन दृष्टि का परिचय दिया हैं। आधुनिकता-विरोधी इस दृष्टिकोण का प्रमाण हमें उनके अन्य नाटकों में भी मिल जाता हैं। घोर अहंकारी पुरूष के निरंकुश व्यापक-अधिकारों के प्रति राकेश सदैव पूर्वाग्रही रहे हैं। इस एक बिन्दु को छोड़कर राकेश का जीवन और साहित्य नि:सन्देह आधुनिकता के रक्त-मांस, मज्जा और प्राणत्व से निर्मित है।"

आधुनिकता की अवधारणा के मूल में यह बात है कि आधुकिता का अन्त नहीं होता, वह एक प्रक्रिया हैं जो निरन्तर प्रहवान है। इसी कारण नाटक में नन्द के द्वन्द का अन्त कहीं भी नहीं है। नन्द, सुन्दरी से कटकर चला जाता है, वह फिर लौट आता है। यहाँ भी अन्त नहीं है, वह फिर कुछ प्रश्नों के उत्तर पूछने के लिए बुद्ध के पास आता है। अत: उसका द्वन्द अन्तहीन है। इस विषय में डॉ० इन्द्रनाथ मदान का कहना है ''इस नाटक का अन्त अन्तहीन ही हो सकता है और इस अन्तबोध में आधुनिकता की चुनौती है जो अन्त को निश्चित नहीं होने देती, अन्त को नए बिन्दुओं की खोज में नाटक के बाहर फेंक देती है। इस तरह, आधुनिकता की प्रकिया बन्द होने से इन्कार करती है।"

रस की दृष्टि से आधुनिकता के सन्दर्भ में इस नाटक पर विचार करते हुए जयदेव तनेजा ने कहा "दर्शक-पाठक पर पड़ने वाले अन्तिम प्रभाव की दृष्टि से कोई भी रचना तब आधुनिक होती है जब वह उसे बैचेन और परेशान करती है, गहराई से झकझोर कर उसकी समाधिस्थता भंग करके उसे सोचने पर विवश करती है। यहीं आकर आधुनिक नाटक के सन्दर्भ में तनाव, द्वन्द और संघर्ष का तत्व प्रासंगिक हो जाता है और '**रस**' तथा '**आनन्द**' निरर्थक और अप्रासंगिक इसलिए लहरों के राजहंस' में रस' का

टिप्पणी

शोधार्थी जब रसाभास' की उपलब्धि कर हताश और परेशान होता है तो वास्तव में वह प्रकारान्तर से इस नाटक के आधुनिक होने का ही प्रमाण प्रस्तुत करता है' नाट्य-शास्त्र' के रचयिता भारतमुनि की दृष्टि से देखा जाए तो इस तीन अंकीय नाटक की वस्तु संरचना और अन्य रंग-धर्मिताएँ, दृश्य-योजना, क्रिया-कलाप, संधिया, पात्र-सृष्टि कथानक संगठन आदि आधुनिक यथार्थवादी ठहरते हैं, क्योंकि इसे नाटककार ने परम्परागत नाट्य-रूढ़ियों से मुक्त आधुनिक परिवेश में निर्मित किया हैं। स्वयं नाटककार का कहना है "जातीय चेतना के नाम पर अपने संस्कारों को रूढ़ बनाना या अन्तर जातीय चेतना के नाम पर विजातीय संस्कार ख्वाह-मख्वाह आरोपित करना, दोनों ही गलत बाते हैं।" इसी कारण उनके नाटकों की आधुनिकता भारतीय और पाश्चात्य तत्वों के श्रेष्ठतम् जीवन्त अंशों के अदभुत समन्वय से उत्पन्न होती है। भारतीय नाटकों के बारे में राकेश की धारणा थी कि "हम प्रयोगशीलता के नाम पर अनुकरणात्मक प्रयोग करते हुए किन्हीं वास्तविक उपलिब्धयों तक नहीं पहुँच सकते, केवल उपलब्धियों के आभास से अपने को अपनी अग्रगामिता का झूठा विश्वास दिला सकते है। यह दृष्टि बाहर से रंगमंच को एक **नया**' और **आधुनिक**' रूप देने की हैं अपने निजी जीवन और परिवेश के अन्दर से रंगमंच की खोज की नहीं।" राकेश जी इस उक्ति पर खरे उतरते हैं। उन्होंने अपने सभी नाटकों में निजी जीवन एवं परिवेश के अन्दर से आधुनिक भारतीय रंगमंच की खोज की पूरी कोशिश की है।

अत: **लहरों के राजहंस**' की मूल संवेदना युगों-युगों से प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्गों के बीच मानव की द्वन्दग्रस्त चेतना को पात्रों एवं उनके संघर्ष के द्वारा नाटककार राकेश ने संपूर्णत: आधुनिक बोध के साथ अभिव्यक्त किया है।

2.8 कथोपकथन अथवा संवाद-योजना

संवाद नाटक के प्राण होते हैं। संवादों के अभाव में नाटक, नाटक कहलाने का अधिकार ही नहीं रखता। पात्रों के संवादों से ही नाटक के कथानक का विकास होता है और नाटक का क्रिया-व्यापार या घटनाएँ एक-दूसरे से परस्पर संयोजित होती हैं। नाटक में नाटककार अपनी ओर से कुछ भी नहीं कह सकता। उसे जो कुछ कहना है, जो भी उद्देश्य प्रतिपादित करना है, वह पात्रों के संवादों से ही संप्रेषित होता है।

संवादों से ही नाटक के कथ्य को विकास एवं गति मिलती हैं। उनमें से पात्रों के चरित्रों का स्वरूप तैया होता है और उनको विकास मिलता है। पात्रों के संवाद ही नाटक के कथ्य एवं घटनाओं को व्यक्त करते हरा प्रत्येक पात्र की प्रकृति और उनके व्यक्तित्व को भी उजागर करते हैं। नाटकीय संवादों की विशेषताओं के विषय में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का कहना है- "अरस्तु ने ड्रामा का एक तत्व भाषा' बताया है। वे शब्द जो पात्रों के रूप में मंच पर अभिनेता बोलता है। यह वह माध्यम है, जिसके द्वारा पात्र अपने विचार और अन्तत नाटक के विचार दर्शक तक सम्प्रेषित करते हैं' वास्तव में संवाद ही वह माध्यम है जिसके द्वारा नाटक के विचार दर्शक तक सम्प्रेषित होते हैं। आगे डॉ० लाल का कहना है "भाषा कथोपकथन के ही रूप में नाटक में मूलत: व्यवहत होती है। फलत: स्पष्टता, सीधेपन के अतिरिक्त इसे मनोरंजक होना आवश्यक है, वरना दर्शक के लिए उसे ग्रहण करना रूचिकर ही न हो सकेगा। भाषा को जीवन और चरित्र की आत्मा को पकडकर चलना होता है। भाषा प्रयोग के लिए नाटककार को कवि की दृष्टि चाहिए। वहीं गति, वहीं पैठ।"

अत: नाटक के संवाद सरज, सहल स्वाभाविक और पात्रानुकूल होने चाहिए। उनमें उनकी स्थिति, पद. ओहदे, एवं मनोदशा के उपयुक्त ही शब्दों का प्रयोग किया गया हो।

हिन्दी नाट्य-जगत में राकेश जी नाटक के मसीहा हैं। उन्हें उद्भुत नाट्य-कौशल प्राप्त था। उन्होंने अपनी कौशलता का परिचय अपने प्रथम नाटक आषाढ़ का एक दिन' में ही दे दिया था। उन्होंने जो

टिप्पणी

संवाद-योजना आषाढ़ का एक दिन' में रची उससे नाट्य-जगत सर्वपरिचित है। लहरों के राजहंस' नाटक की संवादीय संरचना भी अत्यन्त सशक्त, मार्मिक एवं काव्य गुणों से भरपूर है। राकेश जी की संवादीय संरचना की प्रसाद जी की संवादीय संरचना से तुलना करते हुए डॉ० सुरेश अवस्थी का कहना है "नाटक (लहरों के राजहंसश) के संवाद सुंगठित, प्रयोजनशील और काव्यश्री से समद्ध हैं। छोटे-छोटे, सुघड़ और काव्यपूर्ण नाटकीय संवाद लिखने में मोहन राकेश अत्यन्त कुशल हैं। आषाढ़ का एक दिन' में उन्होंने मल्लिका के स्वागत कथन ही सुन्दर लिखे हैं। पाठकों ओर दर्शकों ने ही इन स्वागत-कथनों में रस लिया भले ही हिन्दी के नाट्य-समीक्षक ने स्वागत कथनों को नाटक से वर्जित कर रखा हो। इस नाटक (श्लहरों के राजहंसश) में सुन्दरी का शृंगार-प्रसंग पढ़कर स्कन्दगुप्त और देवसेना का प्रणय-प्रसंग याद आ जाता है।"

'लहरों के राजहंस' नाटक की संवादीय संरचना की अब हम विस्तार से विवेचना करेंगे

1. संक्षिप्त संवाद
2. पात्रानुकूल संवाद
3. नाटकीय संवाद
4. स्वाभविक संवाद
5. सरल एवं रोचक संवाद
6. व्यंग्यात्मक संवाद
7. संवादों में गतिशीलता
8. मार्मिक संवाद
9. चरित्र प्रकाशन के संवाद

अब हम उपर्युक्त उपशीर्षकों पर विस्तार एवं उदाहरणों से चर्चा करेंगे।

संक्षिप्त संवाद

दीर्घ एवं संक्षिप्त दो प्रकार के संवाद होते हैं। नाटक में दीर्घ संवादों की अपेक्षा संक्षिप्त संवादों को अधिक महत्ता मिली है, क्योंकि दीर्घ संवाद दर्शक एवं पाठक को ऊबाऊ बना सकते हैं, जबकि संक्षिप्त संवाद कथा की गति को शीघ्रता से आगे की ओर बढ़ाते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो लहरों के राजहंस' नाटक में दीर्घ एवं संक्षिप्त दोनों तरह के संवाद उपलब्ध होते हैं। लेकिन अधिक संवाद संक्षिप्त ही हैं, जहाँ दीर्घ संवाद विहाँ भी सरसता बनी हुई हैं, क्योंकि इनमें जटिल वाक्य रचना या लम्बे-लम्बे समास नहीं हैं जिससे दर्शक एवं पाठक वर्ग में अब नहीं आती। संक्षिप्त संवाद का एक उदाहरण दृष्टव्य हैं

नन्द - कहो।

सुन्दरी- आपको माननी होगी।

नन्द - तुम्हारी बात मैंने कब नहीं मानी?

सन्दरी- आपको वचन देना होगा, कि कल रात जो कुछ हुआ, उसे आप बिल्कुल भूल जाएंगे

नन्द - मुझे तो नहीं लगता कि कल रात ऐसा कुछ हुआ भी हैं।

सुन्दरी- आप उस विषय में सोचेंगे भी नहीं

नन्द - यह तुम अपने से कहो जो अब भी उस विषय में सोच रही हो।

सुन्दरी- और कभी मुझे याद भी नहीं दिलाएगा

पात्रानुकूल संवाद

संवादीय संरचना का पात्रानुकूलता अत्यन्त आवश्यक गुण है। संवाद पात्रों की स्थिति, पद, ओहदे के

टिप्पणी

अनकल होने चाहिए। अगर पात्र सभ्य, शिक्षित है तो आवश्यक है कि उसके द्वारा बोले संवादों में उसका शिक्षित होना झलके और वह राजपुरूष है तो राजपुरूषोचित गरिमामयी ही संवाद हों। इस दृष्टि से लहरों के राजहंस' के संवाद पात्रानुकूल ही हैं। यहाँ सुन्दरी, नन्द, श्यामाँग, श्वेतांग आदि सभी पात्रों के संवादों में पात्रानुकूलता मिलती हैं।

सुन्दरी - (कटोरी लेकर रखती हुई) पता है लोग क्या कहते हैं?

नन्द -क्या कहते हैं?

सुन्दरी -कहते हैं कि आपका ब्याह एक यक्षिणी से हुआ है जो हर समय आपको अपने जादू से चलाती हैं।

नन्द - इसमें झूठ क्या हैं? सुन्दरी झूठ नहीं हैं?

नन्द - यक्षिणी हो या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता पर मानवी-तुम नहीं हो। (स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ) ऐसा रूप मानवी का नहीं होता

सुन्दरी -नहीं होता! मानवी का रूप बहुत देखा। (दर्पण उसकी ओर बढ़ा देती है) लीजिए।

(नन्द दर्पण उसके हाथ से ले लेता है) वहाँ जाकर खड़े हो जाइए। (नन्द आगे दीपाधार के पास चला जाता है) इस तरह नहीं ...। (पास जाकर दर्पण उसके साथ सटा देती है) इस तरह। (चन्दन की कटोरी हाथ में लेकर) अब मुझे विशेषक बनाने दीजिए...। सुन्दरी देवी यशोधरा के प्रति ईर्ष्या-भाव रखती है और दूसरी ओर उसे अपने रूप-सौन्दर्य का अतिरिक्त अभिमान भी हैं। निम्नलिखित संवाद में उसके इस ईर्ष्या-भाव और रूप-गर्व की बड़ी स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है

सुन्दरी - यही हो द:ख है कि आज वे राजकुमार सिद्धार्थ नहीं हैं परन्तु राजकुमार सिद्धार्थ आज गौतम बुद्ध बनकर आये, इसका श्रेय भी तो देवी यशोधरा को है। नहीं?

अलका - (अचकचाई-सी) इसका श्रेय देवी यशोधरा को हैं? आपका अभिप्राय है कि...।

सुन्दरी - अभिप्राय यही है कि देवी यशोधरा का आकर्षण यदि राजकुमार सिद्धार्थ को बांध कर अपने पास रख सकता है, तो क्या वे आज राजकुमार सिद्धार्थ ही न होते? गौतम बुद्ध बनकर नदी तट पर लोगों को उपदेश दे रहे होते?

नाटकीय संवाद

नाटक रंगमंच के लिए होता है। उसके संवाद रंगमंच पर बोले जाते हैं, इसलिए यह आवश्यक कर नाटकीयता का गुण विद्यमान गुण हो। विशेषकर स्थगत कथन को नाटक का शेष माना जाता रहा है कि उसमें यदि नाटकीयता का गुण विद्यमान है तो वह मार्मिक बन जाता है। इससे दर्शक ऊबते नहीं, अपित कर लेते हैं। इस नाटक में स्वगत कथन नन्द, सुन्दरी और श्यामाँग के संवादों में हैं। नाटक के दूसरे अंक से

उद्धरण दृष्टव्य है

नेपथ्य - (कोई स्वर नही हैं... कोई किरण नहीं हैं... सब कुछ... सब कुछ इस अंधकपर डूब गया है।... मुझे सुलझा लेने दो... सुलझा लेने दो... नहीं तो अपने हाथों का मैं क्या करूंगी..... कोई उपाय नहीं है.....कोई मार्ग नहीं हैं..... इन लहरों पर से..... लहरों पर से..... यह छाया हटा दो..... मुझसे यह छाया नहीं ओढ़ी जाती.....)। नन्द बोलता है, तो नेपथ्य का स्वर....)। नन्द बोलता हैं, तो नेपथ्य का स्वर अपेक्षया मंद पड़ जाता है। स्पष्टतया नन्द के स्वर में रहती हैं, परन्तु दोनों के स्वर एक-दूसरे को काटते चलते हैं।

टिप्पणी

नन्द(बड़े दीपाधार के पास से झले की ओर आती हई छायाकृति-स्वर दबा-दबा स्वगत)-(कितनी लंबी है यह रात, जैसे कि इसे बीतना ही न हो। बार-बार लगता है यह स्वर रात पर पहरा दे रहा है..... यही इसे बीतने नहीं देता।)

नेपथ्य -(स्वर नहीं हैं..... कहीं कोई स्वर नहीं है..... इस अंधकूप में सब कुछ खो गया है ....मेरा स्वर.....पानी की लहरों का स्वर.... सब कुछ एक आवर्त में धूम रहा है.....एक चील.....एक चील सब कुछ झपटकर लिए जा रही है ..... इसे रोको ..... इसे रोको.....)।

स्वाभाविक संवाद

नाटक में संवाद सरल स्वाभाविक होने चाहिए, क्योंकि अस्वाभाविक संवाद कश्च की गति अवरोध पैदा करते हैं जिससे पात्रों और दर्शकों के बीच का तादात्म्य भी टूट जाता है। कारणत: दर्शक उबाऊपन महसूस करते हैं और नाटक की रंगमचीयता पर प्रश्न चिह्न लग जाता है। इस दृष्टि से लहरों के राजहंस' नाटक की संवादीय संरचना में स्वाभाविकता का गुण विद्यमान हैं। यथा

सुन्दरी - आप व्यवस्था के संबंध में कुछ कह रहे थे?

नन्द आकर आगे के दीपाधार के पास खड़ा हो जाता है।

नन्द - हाँ, मैं कह रहा था कि संभव है उतने लोग न भी आएँ, जितने लोगों के आने की हम आशा कर रहे हैं।

सुन्दरी - (थोड़ा तमककर)- क्यों? आज तक कभी हुआ हैं कि कपिलवस्तु के किसी राजपुरूष ने इस भवन से निमन्त्रण पाकर अपने को कृतार्थ न समझा हो? कोई एक भी व्यक्ति कभी समय पर आने से रहा हो? अस्वस्थता के कारण या नगर से बाहर रहने के कारण कोई न कोई आ पाए, तो बात दूसरी है।

नन्द -मैं यहीं तो कह रहा था कि ..... संभव हैं..... कुछ लोगों के लिए ऐसे कुछ कारण हो जाए। सोमदत्त और विशाखदेव के यहाँ मैं अभी स्वयं होकर आया था.....।

सुन्दरी - (आवेश में उसके पास आकर)-आप स्वयं ..... उन लोगों के यहाँ होकर आए हैं? क्यों? आपका स्वयं लोगों के यहाँ जाना .... विशेष रूप से यह कहने के लिए ..... यह क्या अपमान का विषय नहीं हैं?

इसी प्रकार भिक्षु आनन्द के संवाद उनकी पात्र-स्थिति को उजागर करने वाले है। उनमें दार्शनिकता के साथ बौद्धमत का प्रभाव परिलक्षित होता है। **उदाहरणत:**

भिक्षु आनन्द - तुम इस समय बहुत उद्विग्न हो। बन में व्याघ्र के साथ हुए द्वंद्व में ....।

नन्द -जानता हूँ तुम सारा समय छाया की तरह मेरे साथ रहे हो।..... व्याघ्र के साथ हुए द्वंद्व में मैं ङ्केविक्षत हुआ.

सरल एवं रोचक संवाद

नाटक में सहज सरल और रोचक संवाद की आवश्यकता होती हैं क्योंकि नाटक रंगमंच के लिए होता है। अगर संवादों में दुरूहता है तो पाठक और दर्शक वर्ग पर लम्बे समय तक कोई भी पात्र छाप नहीं छोड़ सकता। इस दृष्टि से लहरों के राजहंस' के संवादों में कहीं-कहीं प्रतीकात्मकता हैं, जिससे दुरूहता का एहसास होता हैं, किन्तु सरलता सर्वत्र विद्यमान है। इस नाटक के सभी पात्र अपने कथन को बड़ी ही सरलता से प्रस्तुत कर देता है। यहाँ विषय गम्भीर जरूर है उसको समझना कठिन जरूर है लेकिन भाषा में कहीं भी दुरूहता नहीं हैं। उदाहरणत:

टिप्पणी

सुन्दरी - परन्तु इन सबसे कहने जाने की आवश्यकता आपको क्यों हुई? क्या आप पहले से जानते थे कि ये लोग नहीं आएँगे?

मैत्रेय - इसका उत्तर कुमार दे सकते हैं।

मदिराकोष्ठ के पास जाकर चषक में मदिरा डालने लगता है।

सुन्दरी - (आवेशपूर्ण स्वर में नन्द से) तो क्या इन सबने आपको संदेश भेजा था कि ये नहीं आएँगे? सीधे नन्द की आँखों में देखती है। नन्द आँखें दूसरी ओर हटा लेता है। नन्द - सबने तो नहीं..... पर इनमें से कई लोगों ने संदेश भेजा था।

सुन्दरी - और आपने इसकी चर्चा तक मुझसे करना आवश्यक नहीं समझा

नन्द - मैं तुम्हारे उत्साह में बाधा डालना नहीं चाहता था। सोचा था कि इनमें से अधिकांश लोग एक बार जाकर कहने से

सुन्दरी - कितना मान होता मेरा कि जाकर कहने से जो लागे आते, उनका मुझे इस घर में स्वागत करना पड़ता! आपने यह नहीं सोचा कि मैं ....कि मैं.....।

जहाँ लेखक चेतना के अन्तर्द्वन्द को मुखरित करता हैं, वहाँ कुछ दुरूहता जरूर आ गयी।

नाटकीय संवादों में रोचकता का गुण भी आवश्यक माना गया है क्योंकि रोचकता ही उसकी रसानुभूति में सहायक होती है। अगर संवाद शुष्क हैं तो नाटक नीरस दस्तावेज बनकर रह जाता है। लहरों के राजहंस' में यह गुण भी सर्वत्र विद्यमान है। रोचक संवाद ही पाठक, दर्शक को भावविहवल और आकर्षित करते हैं।

लहरों के राजहंस' नाटक के संवाद भी दर्शक एवं पाठक को आकर्षित प्रभावित तो करते ही हैं उसे अन्त तक बाँधे रहते हैं। अलका और श्वेतांग का यह संवाद दृष्टिव्य हैं

अलका - फिर?

श्वेतांग - अन्त में किसी तरह अवसर मिला, तो उन्होंने प्रणाम करके तथागत से अपने यहाँ आ स्वीकार करने के लिए कहाँ?

अलका - आतिथ्य स्वीकार करने के लिए कहा। ..... और उन्होंने स्वीकार कर लिया।

श्वेतांग - नहीं! उन्होंने इसका उत्तर न देकर अपना भिक्षापात्र कुमार के हाथों में दे दिया

अलका - (स्तम्भित-सी) उन्होंने अपना भिक्षापात्र कुमार के हाथों में दे दिया।

श्वेतांग - बताने वालों ने मुझे यही बताया है, कुमार उस समय इतने अव्यवस्थित थे कि भिशाप हाथ में लिए हुए ही लौटकर यहाँ आने लगे।

व्यंग्यात्मकता सम्वाद

नाटक सजीव पात्रों के द्वारा रंगमंच पर खेला जाता है। इसलिए उसमें व्यंग्यात्मकता की आवश्यकता पड़ती हैं, क्योंकि व्यंग्यात्मकता से जहाँ एक ओर मनोरंजन होता हैं, वहीं दूसरी ओर लेखक के उद्देश्य की पूर्ति होती दिखाई देती है। लहरों के राजहंस' में प्रतीकात्मकता विद्यमान है, इसलिए उसमें व्यंग्यात्मकता के भी दर्शन होते हैं। यहाँ सुन्दरी, नन्द, श्यामांग के संवादों में व्यंग्यात्मकता देखी जा सकती है। उदाहरण के रूप में सुन्दरी का निम्न संवाद जिसमें वह गौतम बुद्ध एवं बौद्धमत पर व्यंग्य करती थी।

टिप्पणी

"अभिप्राय यही है कि देवी यशोधरा का आकर्षण यदि राजकुमार सिद्धार्थ को बांधकर अपने पर रख सकता, तो क्या वे आज राजकुमार सिद्धार्थ ही न होते? गौतम बुद्ध बनकर नदी तट पर लोगों को उपदेश दे रहे होते?' वह फिर कहती है।

"नारी का आकर्षण पुरूष को पुरूष बनाता है, तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।" इसी प्रकार वह एक स्थल पर और कहती हैं "पर मैं कहती हूँ कि कामनाओं को जीता जाए, यह भी क्या मन की एक कामना नहीं हैं? और ऐसी कामना किसी के मन में क्यों जगती हैं?" इसका उत्तर स्वयं ही सुन्दर देती है "इसका अर्थ इतना ही है अलका, कि बहुत दिन एकातार जीवन बिताकर लोग अपने से ऊब जाते हैं तब जहाँ कुछ भी नवीनता दिखाई दे, वे उसी ओर उमड़ पड़ते हैं।"

संवादों में गतिशीलता

नाटक के संवादों में गतिशीलता का गुण भी महत्वणूर्ण होता है। अगर संवादों में गतिशीलता नहीं हैं तो नाटकीय कथा अवरूद्ध हो जाती है। इस दृष्टि से लहरों के राजहंस' के संवाद कथा को शीघ्रता से आगे बढ़ाने वाले हैं। उदाहरण के रूप में निम्न संवाद है

भिक्षु आनंद - देख रहा हूँ। घर सुन्दर हैं, कक्ष बहुत ही सुन्दर है।

नन्द - हाँ, सुन्दरी को तो तुमने देखा नहीं। भिक्षु हो इसलिए, देखोगे भी नहीं। सम्भवत: तुम्हारी दृष्टि में उसका यहाँ होना यथार्थ नहीं, केवल एक भ्रांति है। परन्तु उस तरह में एक भ्रांति नहीं हूँ? तुम एक भ्रांति नहीं हो? तुम्हारा कहा हुआ हर वाक्य एक भ्रांति नहीं है।

भिक्ष आनंद - दूसरों को इस सत्य तक पहुँचने में बहुत समय लगता है। मुझें प्रसन्ता है तुमने शीघ्र इसे ग्रहण कर लिया है।

नन्द - (आवेगपूर्वक) ग्रहण कर लिया है?.....यह कहकर तुम्हारे मन को सन्तोष मिलता हो, तो मैं तुम्हें उससे वंचित करना नहीं चाहूँगा।

मार्मिक सम्वाद

नाटक के संवाद मार्मिक होने चाहिए। मार्मिकता का गुण ही उन्हें दर्शकों, एवं पाठकों के लिए हृदयग्राह्य बनाता है। मार्मिकता के कारण ही संवाद दर्शकों, पाठकों पर छा जाते हैं, उनके मन में रच-बस जाते हैं जिसे वे सहज ही नहीं भूलते। लहरों के राजहंस' के संवादों में भी मार्मिकता का यह गुण सर्वत्र विद्यमान है। यथा है। पर यह दुरूहता विषय के अनुकूल है और भाव-सम्प्रेषण में बाधा नहीं आती। उदाहरणत: नन्द की द्वन्द्वग्रस्त चेतना को मुखरित करने वाला श्यामांग का प्रलाप देखा जा सकता है "मुझमें साहस नहीं हैं..... किसी में साहस नहीं हैं.....यह चील मुझे लिए जा रही है..... जाने कहाँ..... नहीं चली नहीं हैं...एक छाया है.....काले अंधेरे कूप में भटकती हुई छाया..... अकेली..... (कराहकर) मुझे इस कूप से निकालो..... इस कूप में पानी नहीं हैं..... इसका पानी कहाँ गया? इसका पानी कौन ले गया?..... मुझे पानी दो.....पानी....."

नन्द -इसमें झूठ क्या हैं?

सुन्दरी - झूठ नहीं हैं।

नन्द - यक्षिणी हो या नहीं यह तो मैं नहीं कह सकता पर मानवी तुम नहीं हो। (स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ) ऐसा रूप मानवी का नहीं होता।

सुन्दरी -नहीं होता? मानवी का रूप बहुत देखा? दर्पण उसकी ओर बढ़ा देती है। लीजिए। नन्द दर्पण उसके हाथ से ले लेता है। वहाँ जाकर खड़े हो जाइए। नन्द आगे के दीपाधार के पास चला

टिप्पणी

जाता है। इस तरह नही.....। पास जाकर दर्पण उसके साथ सटा देती है। इस तरह। (चंदन की कटोरी हाथ में लेकर)अब मुझे।

चरित्र प्रकाशन के सम्वाद

नाटक दृश्य विद्या हैं इसलिए इसके संवादों में पात्रों के चरित्र उनकी मनोदशा, अन्तर्द्वन्द, बाहरी सम्बन्ध आदि को उजागर करने की क्षमता होती चाहिए। इस दृष्टि से लहरों के राजहंस' के संवाद खरे उतरते हैं। सुन्दरी के संवाद उसकी चारित्रिक विशेषताओं, रूप-गर्व, ईर्ष्या-भाव को पूर्णत: स्पष्ट करने वाले हैं।

उदाहरणत:

सुन्दरी - ऐसी असंभव बात मैं सोच सकती थी? सोच रही थी कि शायद आखेट में बहुत दूर निकल गए हैं। डर रही थी कि सब लोग आ चुकेंगे, तो अन्त में आने वाले अतिथि आप ही न हों।

नन्द - (जैसे कुछ और बात सोचता हुआ)-अन्त में आनेवाला अतिथि.....! चबुतरे पर जाकर विश्राम की मुद्रा में बैठ जाता है। मैं जानता था तुम प्रतीक्षा में होगी। इसलिए..... (सहसा बात बदलकर) आखेट में बहुत देर तो नहीं लगी।..... तुम्हें लगा कि बहुत देर लगी हैं?

सुन्दरी -वे जानती थीं न! मुझे पता था वे अवश्य जानती हैं.....क्या कहा उन्होंने?

नन्द - कहा कि अपनी व्यवस्तता के कारण तुम न भी आ सको, तो मैं तुम्हें उनका आशीर्वाद .....!

सुन्दरी चबूतरे का सहारा छोड़कर खड़ी हो जाती हैं।

सुन्दरी - (कुछ तीव्र स्वर में) आत्म-वंचना की भी एक होती है। आज के दिन वे आशीर्वाद देंगी और मुझे! मन में क्या सोच रही होंगी, मैं अच्छी तरह जानती हूँ उन्हीं के कारण.....।

इस नाटक में नन्द मानव ही द्वन्दग्रस्त चेतना के प्रतीक रूप में उभरा है। उसकी इस चारित्रिक विशेषता को उजागर करने वाला सुन्दरी का निम्न संवाद दृष्टत्वय हैं

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मोहन राकेश कृत लहरों के राजहंस' नाटक के संसार पात्रानुकूल, स्वाभाविक, व्यंग्यात्मक, सरल, रोचक, गतिशील और चरित्र के प्रकाशन की क्षमता रखने वाले है और ये संवाद नाटक को मंचीय बनाने में सफल, सबल हैं।

2.11 लहरों के राजहंस-भाषा-शैली

भाषा ही वह साधन हैं जिसके द्वारा हम अपने भावों एवं विचारों को दूसरों तक पहुँचा सकते हैं। नाटक दृश्य काव्य हैं। नाटक की पहली शर्त हैं उसका मंचित होना। नाटक के कथ्य को पाठकों, दर्शकों तक सम्प्रषित करने में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषा की किलस्टता नाटक की रंगमचीयता पर प्रश्नचिन्ह लगा देती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि नाटक की भाषा ऐसी हो कि उसे सामान्य दर्शक भी आसानी से समझ सकें। यह बोधगम्यता नाटकीय भाषा की पहली और अनिवार्य शर्त है। राकेश प्रयोगधर्मी नाटककार रहे हैं। उनमें नाटक में शब्द की उचित एवं सार्थक जगह खोजने की छटपटाहट और बैचेनी देखी जा सकती है। उनका मानना है कि केवल शब्द ही महत्वपूर्ण नहीं हैं, उनका आसपास के शब्दों से संबंध और संदर्भ ही उन्हें अर्थपूर्ण बनाता है, इसलिए ध्वनि, मौन और बिम्ब के पारस्परिक संबंधों की जाँच-पड़ताल करना आवश्यक हैं। इस विषय में स्वय राकेश जी का मत है "शब्दों का सृजनात्मक प्रयोग उन संदभों की लय में और नयी-नयी लय खोज सकना है इसलिए कोई भी शब्द योजना बिना अपनी एक आन्तरिक लय के प्राणवान नहीं होती, और यह लय या ध्वनि का ग्राफ ही उनकी वास्तविक अर्थक्ता है।" वे लय नियोजन पर इसलिए बल देते है कि "यह

टिप्पणी

लय नियोजन अपने से ही कई-कई बिम्बों तथा मिथकों के संसर्ग मन में जागकर शब्दों के व्याकरण विश्लेषित अर्थ से परे बहुत-से अनिर्वचनीय तथा विश्लेषणहीन अर्थों की अनुगूंज मन में पैदा कर सकता है।" भले ही वे अपनी पूरी नाट्य यात्रा के दौरान सही लय-नियोजन को पहचानने और पकड़ने में लगे रहे।" इस विषय में प्रसिद्ध नाट्य समीक्षक जयदेव तनेजा का कहना है कि- "यह आकस्मिक नहीं हैं कि लहरों के राजहंस' के लगभग सभी चरित्र किसी बनावटी बाहरी भंगिमा का सहारा लिए बिना ही केवल अपनी-अपनी भाषा की अलग आन्तरिक सूक्ष्म लय के सहारे अपने विशिष्ट व्यक्ति को स्थापित करते है।"

नाट्य-जगत में मोहन राकेश केवल तीन नाटक-लिखकर नाटक के मसीहा कहलाते हैं। क्योंकि उनके तीनों ही नाटक सशक्त, सफल, मंचित नाटक हैं। उनके नाटक अपनी सहज, सरल, प्रभावी और मार्मिक भाषा के कारण दर्शकों पर जादू-सा कर देते हैं। लहरों के राजहंस भी अनेक बार मंचित हो, दर्शकों पर अपना प्रभाव छोड़ चुका है इसकी भाषा के विषय में श्री जयदेव तनेजा का कहना है-"लहरों के राजहंस की भाषा राकेश के अपने व्यक्तित्व, नाटक की वस्तु चरित वातावरण तथा रंगमंचीय रूढ़ियों और आज के दर्शक पाठक की मानसिकता के भीतर से रूप ग्रहण करती है। प्रसाद और राकेश की भाषा का यही मूलभूत अन्तर है। स्वय राकेश के ही पहले दो नाटकों और तीसरे नाटक की भाषा का अन्तर इसी सत्य को रेखांकित करता है कि राकेश ने भाषा के सन्दर्भ में अपने व्यक्तित्व के मुकाबले नाटक की आन्तरिक अपेक्षाओं को अधिक महत्व दिया।"

श्लहरों के राजहंस' नाटक की भाषा का अध्ययन और विश्लेषण हम आगे विस्तार से करेंगे

काव्यात्मकता

आषाढ़ का एक दिन' की हो भाँति लहरों के राजहंस' नाटक की भाषा भावात्मक एवं काव्यात्मक है। इस प्रकार की भाषा अधिकतर नन्द के स्वगत कथनों में मिलती है। यथा

सन्दरी -क्यों, यह सच नहीं? राजकुमार सिद्धार्थ क्यों चुपचाप एक रात घर से निकल पड़े थे? बात बहत साधारण सी अलका! नारी का आकर्षण पुरूष को पुरूष बनाता है, तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।

अलका - (पल-भर चुप रहकर)-तो आप यह कहना वाहती हैं कि .....।

सुन्दरी - कहना चाहने की बात नहीं, अलका! मैं एक छोटी सी सच्चाई तुझे बतला रहीं हूँ। लोग कहते हैं कि गौतम बुद्ध ने बोध प्राप्त किया है; कामनाओं को जीता हैं। पर मैं कहती हैं कि कामनाओं को जीता जाए, यह भी क्या मन की एक कामना नहीं हैं? और ऐसी कामना किसी के मन में क्यों जागती हैं?

नन्द - हाथ! से निकला भी तो नहीं।..... सच, थकान उतनी शरीर की नहीं जितनी मन की है। मृग मेरे बाण से आहत नहीं हुआ, इससे मन को उतना खेद नहीं हुआ, जितना इससे.....कि जब थककर लौटने का निश्चय किया, तो वही मृग.....थोड़ी ही दूर आगे.....रास्ते में मरा हुआ दिखाई दे गया।

सन्दरी - किसी और के बाण से आहत हुआ वह?

नन्द - नहीं! किसी के बाण से आहत नहीं हुआ, अपनी थकान से मर गया। बाण से क्षत-विक्षत मृग को देखकर मन में कभी कोई अनुभूति नहीं होती, होती भी हैं, तो केवल प्राप्ति की हल्की सी अनुभूति। परन्तु बिना घाव के अपनी ही क्लांति से मरे हुए मृग को देखकर मन में जाने कैसा लगा! और लौटकर आते हुए अपने आप इतना थका और टूटा लगने लगा कि.....।

टिप्पणी

प्रसंगानुकूलता

राकेश जी की यह एक गहरी विशेषता हैं कि उनकी भाषा प्रसंगानुकूलता होती है चाहे वह 'आषाढ़ का एक दिन' ही हो, आधे अधूरे' की हो या फिर लहरों के राजहंस' की हो। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने अन्तर्द्वन्द प्रधान प्रसंगों की भाषा गंभीर और तत्सम प्रधान रही है। वहीं हल्के-फुलके प्रसंगों की भाषा आम बोलचाल की रही है। राज सेवकों की भाषा उनके स्तर के अनुकूल हो जबकि नन्द एवं सुन्दरी के अन्तर्द्वन्द को स्पष्ट करने के लिए संस्कृतनिष्ठ शब्तावली का भी प्रयोग किया है। अत: जहाँ पर जैसा प्रसंग है वहाँ पर वैसी ही भाषा हैं। यथा

एक उदाहरण और देखिए

नन्द -या यह केवल मन का विद्रोह था..... बिना विश्वास एक विश्वास के अपने, ऊपर लादे जाने के लिए? या कि इसलिए कि उस समय मैं इतना सत्वहीन क्यों हो गया कि भिक्षु आनन्द के कर्तनी उठाने पर चिल्ला नहीं सका कि "यह विश्वास मेरा नहीं है। मैं तुम्हारा या किसी और का विश्वास ओढ़ कर नहीं जी सकता, नहीं जीना चाहता।" पर समझ में आता है कि जिये जाने से जीवन धीरे-धीरे चुक जाता है, कि हर उन्मेश का परिणाम एक निमेष है और काल के विस्तार में निमेष और उन्मेष दोनों अस्थायी हैं, सुख सुख नहीं हैं, काई पर फिसलते हुए पाव का एक स्पन्दन मात्र हैं, मात्र रेत में डूबती हुई बूंद की एक अकुलाहट.....परन्तु वह स्पन्दन, वह अकुलाहट ही क्या जीवन का पूरा अर्थ, जी लेने का कुल पुरस्कार नहीं हैं? आकाश में कहीं लटके हुए नीले काले बिन्दु.....कोरे सिद्धान्तो के.....वे अधिक स्थायी, अधिक सत्य कैसे हैं?

सरल एवं रोचकता

लहरों के राजहंस' नाटक की भाषा सहज, स्वाभाविक और रोचक है। इसका ऐतिहासिक कथानक होते हुए भी भाषा में बोधगम्यता और प्रवाहपूर्णता है। राकेश जी ने इसे सफल मंचीय नाटक बनाने के लिए इसमें सामान्य बोलचाल के शब्दों का भी प्रयोग किया है।

एक उदाहरण और दृष्टव्य है

नन्द - तुम बुरा तो नहीं मान गई हैं?

सुन्दरी - किस बात का?

नन्द -मेरे अकारण बाहर रूके रहने का ..... देर से लौटकर आने का?

सुन्दरी - नहीं तो। आप समय से पहले तो आ जी गए हैं।

नन्द -फिर ऐसी क्यों हो रही हो?

सुन्दरी -कैसी हो रही हूँ?

नन्द - यह तो मैं ही देख सकता हूँ....जो तुम्हारे चेहरे का दर्पण हूँ।

सुन्दरी - रहने दीजिए, मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।

नन्द - अच्छा नहीं लगता! मगर यह बात मेरी नहीं, तुम्हारी कही हुई है। तुम्हें याद नहीं?

सुन्दरी -आज मुझे कुछ भी याद नहीं।

श्यामांग - बस कह दिया, तो हो गया! पत्तियाँ श्यामांग के लिए छोड़ दो! श्यामांग से पत्तियाँ न सुलझी, तो कामोत्सव नहीं होगा।....श्वेतांग कहता है कुछ सोचो नहीं।.....पर सोचना न सोचना न सोचना अपने बस की बात है?.....पिछले बसन्त में आम कैसे बौराये थे? पेड़ों की डालियां अपने आप हाथों

टिप्पणी

पर झुक आती थी।.....परन्तु तब यहाँ कामोत्सव का आयोजन नहीं किया गया। आयोजन किया गया है इस बार जब आम के वृक्षों ने भिक्षुओं का वेश धारण कर रखा है।.....कल प्रातः देवी यशोधरा भिक्षुओं के रूप में दीक्षा ग्रहण करेंगी

और यहाँ.....यहाँ रात भर नृत्य होगा, आपानक चलेगा.....।

१०.९.४. मार्मिकता

प्रस्तुत नाटक की भाषा सहज, स्वाभाविक के साथ-साथ बड़ी ही मार्मिक है, हृदयस्पर्शी है। निश्चित समय पर जब नन्द नहीं लौटता तो सुन्दरी के मन को अदम्य आघात लगता है, जिसे नाटककार ने बड़ी ही मार्मिकता के साथ व्यक्त किया। उदाहरणतः

अलका - धृष्टता के लिए क्षमा चाहती हूँ, देवी! परन्तु.....।

सुन्दरी -क्षमा चाहने की आवश्यकता नहीं। बात कहने में धृष्टता नहीं होती। मैं तेरी बात सुनना चाहती हूँ।

अलका - देवी यशोधरा की बात आप जानें। परन्तु प्रजा के बच्चों बूढ़ों तक में क्यों इतना उत्साह है? वे संध्या होते ही क्यों नदी-तट की ओर उमड़ पड़ते हैं.....? क्या इसका अर्थ यहीं नहीं हैं कि....?

सुन्दरी - (सहसा अलका की ओर मुड़कर)

तू समझती हैं कि मैं उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रही हूँ? (आँखें उस ओर से हटाकर अन्तर्मुख भाव से) प्रतीक्षा कर रही होती, तो अपने माथे का विशेषक, यह बिन्दु, सुख जाने न देती। परन्तु जितना समय इसे सीला रखना चाहिए था, उससे कहीं अधिक समय मैंने इसे गीला रखा। एक पहर, दो पहर, तीन पहर। हर बीतता हुआ क्षण मेरे प्रयत्न का उपहास उड़ाता था, फिर भी मैं अपने अन्दर के विरोध से लड़ती रही, मन के विदोह को किसी तरह समझाती रही। परन्तु एक क्षण आया जब वह प्रयत्न मन से हार गया। मेरा गीला हाथ माथे तक जाकर लौट आया और मैंने उसे फिर गीला नहीं किया।

इसी प्रकार एक उदाहरण और देखिए

सुन्दरी - आप मेरा सारा प्रसाधन करेंगे?

नन्द - क्यों नहीं करूंगा?

प्रात्रानुकूलता

लहरों के राजहंस' नाटक की भाषा पात्रों के चरित्र चित्रण और उनकी मनः स्थिति के अनुकूल है जहाँ सामान्य पात्र खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग करते हैं तो राजपुरूष अपने पद एवं ओहदे की गरिमागयी भाषा का प्रयोग करते हैं। इसी कारण तो श्यामांग श्वेताँग की अपेक्षा अधिक परिष्कृत हिन्दी बोलता है। उदाहरणतः

श्वेताँग - आदमी काम करना चाहे तो उपाय यही है, राजकर्मचारी के लिए विशेष रूप से।

श्यामांग -तुम कहना चाहते हो कि.....मुझे.....मुझे भी.....सोचना नहीं चाहिए यही न?.....पर मैं.... मैं कम सोचना चाहता हूँ? बिना चाहे मस्तिष्क सोचता रहे, सोचते रहे, तो आदमी क्या कर सकता है?

इसी प्रकार सुन्दरी की भाषा में उनके पद एवं ओहदे की गरिमा झलकती है, जैसे

सुन्दरी -(मदिराकोष्ठ की ओर जाती हुई) कामोत्सव कामना का उत्सव है, आर्य मैत्रेय! मैं अपनी आज की कामना कल के लिए टाल रखू.....क्यों मेरी कामना मेरे अन्तर की है। मेरे अन्तर में ही

टिप्पणी

उसकी पूर्ति भी हो सकती है। बाहर का आयोजन उसके लिए उतना महत्व नहीं रखता जितना कुछ लोग समझ रहे हैं।

व्यंग्य की भाषा

राकेश जी अपने पात्रों के माध्यम से जहाँ आवश्यकता होती है वहाँ व्यंग्य करने से नहीं चूकते। आषाढ़ का एक दिन' तथा आधे-अधूरे' की भाँति ही लहरों के राजहंस' की भाषा में भी व्यंग्यात्मकता विद्यामान हैं। व्यंग्यात्मकता से भाषा में जहाँ वैचित्रय आता है, वहाँ चमत्कार भी उत्पन्न उत्पन्न हो जाता है। नन्द, सुन्दरी, भिक्षु आनन्द, श्यामांग तथा श्वेताँग आदि पात्रों के संवादों में व्यंग्य की भाषा के दर्शन होते हैं। यथा

भिक्षु आनन्द - दूसरों को इस सत्य तक पहुँचने में बहुत समय लगता है। मुझे प्रसन्नता है तुमने शीघ्र इसे ग्रहण कर लिया है।

नन्द - ग्रहण कर लिया है!.....यह कह कर तुम्हारे मन को संतोष मिलता हो, तो मैं तुम्हें उससे वंचित करना नहीं चाँहूगा

इसी प्रकार सुन्दरी और नन्द का संवाद जो वाद-विवादपूर्ण है

सुन्दरी - आप व्यवस्था के सम्बन्ध में कुछ कह रहे थे

नन्द आकर आगे के दीपाधार के पास खड़ा हो जाता है।

नन्द - हाँ, मैं कह रहा था कि संभव है-उतने लोग न भी आएं, जितने लोगें के आने की हम आशा कर रहे हैं।

सुन्दरी - (थोड़ा तमककर)-क्यों? आज तक कभी हुआ है कि कपिलवस्तु के किसी राजपुरूष ने इस भवन से निमंत्रण पाकर अपने को कृतार्थ न समझा हो? कोई एक भी व्यक्ति कभी समय पर आने से रहा हो? अस्वस्थता के कारण या नगर से बाहर रहने के कारण कोई न आ पाए, तो बात दूसरी है।

नन्द - मैं यही तो कह रहा था कि.....संभव है.....कुछ लोगों के लिए ऐसी कुछ कारण हो जाएं।. ....सोमदत्त और विशाखादेव के यहाँ मैं अभी स्वयं होकर आया था.....।

सुन्दरी - (आवेश में उसके पास आकर) आप स्वयं....उन लोगों के यहाँ होकर आए हैं? क्यों? आपका स्वयं लोगों के यहाँ जाना.....विशेष रूप से यह कहने के लिए.....यह क्या अपमान का विषय नहीं हैं? १०.९.७. शब्दिक भाषा

हम पहले भी कह चुके हैं कि राकेश जी प्रयोगधर्मी नाटककार रहे हैं। उन्होंने शब्दगत प्रयोग भी किए हैं। लहरों के राजहंस' नाटक का कथानक ऐतिहासिक है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि इसको तत्सम प्रधान शब्दावली हो और ऐसा है भी। परन्तु इसकी यह विशेषता ही है कि तत्मस, तद्भव शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया है जिससे नाटक के कथानक को बल ही मिला है। इससे भाषा में सहजता और बोधगम्यता के गुण आ गए हैं।

तत्सम शब्द - नाटक में ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण करने के लिए राकेश जी ने संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग किया है। यथा - आपानक, मदिराकोष्ठ, शृंगारकोष्ठ, विशेषक, गवाक्ष, लोहिताक्ष, मैत्रेय आदि कुछ दुरूह शब्द हैं, लेकिन ये सभी प्रसंगवश ही हैं अन्यथा जिन तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है, वे सुबोध ही हैं। यथा-कामना, कामोत्सव, अग्निकाष्ठ, अंतर, महत्वशङ्यन्त्र, अव्यवस्थित तथा मस्तिष्क आदि।

टिप्पणी

तद्भव शब्द - भले ही यह ऐतिहासिक नाटक हो, लेकिन इसमें संस्कृतनिष्ठ शब्दों के साथ-साथ तद्भव शब्दों का भी प्रयोग किया गया हैं। लेकिन ये शब्द नाटक की ऐतिहासिकता बनाए रखने के लिए बहुत ही कम हैं। यथा सांस (श्वास), पत्तियाँ, हाथ, पहर, कांपना तथा नींद आदि।

बिम्बात्मकता - राकेश जी की यह भी एक विशेषता ही है कि ये नाटकीय भाषा में सशक्त बिम्ब खड़ा कर देते हैं। आज की जटिल संशिलस्ट संवेदना को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए अनेक दृष्टियों से बिम्ब का प्रयोग नाट्य भाषा के लिए आवश्यक हो गया हैं। इस विषय में गोविन्द चातक का कहना है "वस्तुतः कथा-वस्तु के संयोजन, कथ्य को गति, अर्थ का संकेत अथवा प्रतीकार्थ प्रदान करने तथा पात्र की मानसिक स्थिति के उद्घाटन में बिम्ब का प्रयोग नाटक में बड़ी सफलता से किया जा सकता है जैसा कि लेविस ने कहा है, "नाटक मेटाझर तथा बिम्बविधान के लिए काव्य की अपेक्षा अधिक अवसर प्रदान करता है।" लहरों के राजहंस' नाटक के बिम्ब विधान में डॉ० जयदेव तनेजा का मत है "पुरूष-मूर्ति और नारी-मूर्ति के दो दीपाधारों के मूल बिम्ब की बात स्वयं राकेश ने कही हैं। यह बिम्ब सदैव उनके मन में रहा (यद्यपि श्रात बीतने तक' में यह कहीं नहीं है, सम्भव है इस मंचीय नाटक को रेडियो नाटक बनाते समय यह छोड़ देना पड़ा हो) और नाटक के दोनों संस्करणों में स्थूल रूप से मंच-सज्जा का अनिवार्य अंग बनकर

उपस्थित हुआ। भोग-अभोग, पार्थिव-अपार्थिव अथवा भौतिक-आध्यात्मिक के बीच 'अनिश्चय में उठ सके एक पैर' के व्यापक नाट्य-बिम्ब को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना। इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है जिसे राकेश ने नर-नारी संबंधों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।" यहाँ अधिकतर बिम्ब पार्थिव और अपार्थिव के लिए प्रयक्त हुए हैं। इस विषय में जयदेव तनेजा का कहना है "एक ओर यदि मत्स्यकार आसन, मदिराकोष्ठ, अग्निकोष्ठ, ओस लदे कमल, उद्यान, बसंत, शयन कक्ष, घर, कामोत्सव, बौराये आम, फूल, केश, चन्द्रिका, दक्षिणी इत्यादि हैं तो दूसरी और पत्रहीन, वृक्ष, धूल भरा आकाश सूखा सरोवर, नदी तट, विहार, रेत, कर्तनी, जंगल इत्यादि।" बिम्बात्मकता का प्रभावी प्रयोग श्यामाँग के शब्दों में देखा जा सकता है।

"कमलताल के पास जो अंधेरा कोना हैं, कुछ देर के लिए वहाँ चला गया था। वहाँ देखा, ताल की लहरों पर वह छाया उतर रही हैं। लहरें उसमें गुम हुई जा रही हैं, कमलताल, कमलपत्र सब उसे खोये जा रहे हैं। मुझे लगा कि वह छाया धीरे-धीरे उन सबको लील जाएगी, ताल में तैरते हुए राजहंसों के जोड़े को भी। मुझे डर लगा। मैं छाया पर पत्थर फैंकने लगा।"

2.12 शैली

लहरों के राजहंस' नाटक में नाटकीय एवं मनोविश्लेषणात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है। नाटकीय शैली का उदाहरण दृष्टव्य है

मैत्रेय - (गम्भीर भाव से आगे आता हुआ) हाँ, पहला.....और शायद एकमात्र अतिथि!

नन्द - एकमात्र अतिथि! तो क्या और लोगों में से .....?

मैत्रेय - जिन-जिन से मैं मिला हूँ, उनमें से हरेक ने किसी-न-किसी कारण अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए क्षमा याचना की है-रविदत्त, अग्निवर्मा, नीलवर्मा, ईषाण, शैवाल-सभी ने।

नन्द -(अव्यवस्थित-सा) और पदमकांत, रूद्रदेव, लोहिताक्ष, शालिमित्र.....?

इस नाटक में विशलेषणात्मक शैली स्वगत-कथनों में प्रयुक्त की गयी है। यह शैली पात्रों की मन-स्थिति और उनके अन्तर्द्वन्द को उजागर करती है। उदाहरण के रूप में नन्द का एक संवाद "(लौटकर झले

टिप्पणी

के पास चला जाता है और पल-भर स्निग्ध दृष्टि से देखता रहता है।) अच्छा है, तुम सो रही हो। जाग रही होती, तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर शायद मैं न दे पाता। (उसके पास से हटकर टहलता हुआ पीछे के दीपाधार की ओर जाता है।) मैंने कहा था तुम्हारा विशेषक सूखने से पहले ही मैं लौट आऊंगा, परन्तु नहीं आ सका। तुम पूछती, क्यों तो मैं क्या उत्तर देता? क्या कहता कि तथागत के पास से उठ आने के बाद क्यों मन में कल के मरे हुए मृग को देखने की कामना इतनी प्रबल हो आई थी कि किसी भी तरह अपने को वहाँ जाने से रोक नहीं सका? कैसे बताता कि मृग के स्थान पर एक नोंच खायी ठठरी को देखकर मुझे कैसा लगा? और फिर क्यों मैं अचानक उस गुरगुराकर सामने से आते व्याघ्र से उलझ गया? जानता था कि यह प्रवृति आत्म-विनाश की है, परन्तु उस प्रवृत्ति को मैं रोक नहीं सका? क्यों मैंने जानबूझकर आत्म-विनाश को निमंत्रित किया और फिर स्वयं ही आत्म-रक्षा के लिए उस तरह लड़ गया। क्षत-विक्षत हम दोनों हुए-पलायन भी एक तरह से दोनों ने ही किया-क्यों? आत्म-विनाश और आत्मरक्षा, दोनों प्रवृत्तियों के बीच एक साथ मैं कैसे जिया और क्यों? और उस तरह जीकर क्या सुख मिला? और क्या यह सुख की ही खोज थी जिसने उस तरह जीने के लिए विवश किया?"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मोहन राकेश कृत लहरों के राजहंस' नाटक की भाषा एवं शैली उसके ऐतिहासिक कथ्य के अनुकूल है और वह नाटककार के उद्देश्य आधुनिक संदर्भ में मानव की अन्तर्द्वन्द चेतना को उजागर करने में सक्षम है। उसमें भावात्मकता, सरसता, रोचकता, पात्रानुकूलता, मार्मिकता के गुणों के साथ-साथ नाटक की आवश्यकता समझे जाने वाले व्यंग्य भी विद्यमान हैं।

2.13 लहरों के राजहंस और अभिनेयता

नाटक से सम्बन्धित अभिनेयता और रंगमंचीयता दो अलग-अलग तत्व हैं। रंगमंचीयता शब्द इस ओर संकेत देता है कि अमुक नाटक रंगमंच पर प्रदर्शित होने के उपर्युक्त है या नहीं, अर्थात् रंगमंच में नाटकीय संविधान आता हैं और अभिनय का सीधा संबंध अभिनेता से है। अर्थात् पात्रों के कार्य-व्यापार से है। भरतमनि ने अपने नाट्य-शास्त्र में अभिनय के चार अंग बताए हैं

1. **आंगिक** - शारीरिक अंगों से किया जाने वाला अभिनय।
2. **वाचिक** - वाणी के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति।
3. **आहार्य** - वेषभूषा, साज-सज्जा (मेकअप) से अपने को प्रकट करना।
4. **सात्विक** - एकाग्र मन से भय, आश्चर्य, उत्सुकता आदि का अभिनय।

अभिनय' शब्द समय पारिभाषिक अर्थ में नाट्य प्रयोग की सकल सम्भावना व प्रकिया सूचित करता है और इस सकल सम्भावना और प्रक्रिया को चरितार्थ करने वाला अभिनेता ही होता है। अभिनेता नाट्य-अभिनय के द्वारा ही अपने आप को प्रकट, परिभाषित, विस्तारित और रूपांतरित करता है और वह देह, वाणी, वाय सामग्री और मन को आंगिक वाचिक, आहार्य और सात्विक अभिनय से ही निस्पन्न करता है।

अत: लहरों के राजहंस' नाटक की अभिनय तत्वों के आधार पर समीक्षा करना तर्क संगत ठहरता है।

आंगिक अभिनय

आप शारिरिक अंगों के द्वारा किया गया अभिनेय आंगिक अभिनय कहलाता है। इस अभिनय के संकेत यहाँ स्थान-स्थान पर पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं, उदाहरण के रूप में निम्न संवाद में रचामाँ और अलका का आंगिक अभिनय देखा जा सकता है। सुन्दरी- हाँ इसी चेष्ठा से तो ये सुलझेगी! जाओं, जाकर यह काम किसी और को सौंप दो और.....।

टिप्पणी

श्यामाँग जैसे बहुत प्रयत्न से आगे सुनने की प्रतीक्षा करता है। (कुछ शीघ्रता के साथ) और कहीं एकांत में बैठकर सोचो कि जब कोई काम हाथ में ना रहें, तो हाथों को क्या करना चाहिए/

श्यामाँग उलझी हुई पत्तियों को, फिर अपने हाथों को देखता है। फिर जैसे कुछ भी न सोच पाने को पत्तियों के ढेर में उलझा हुआ झुककर अभिवादन करता है। बाई ओर के द्वार से जाते हुए वह एक बार अलका की ओर चुंधियाई-सी आँखों से देख लेता है। सुन्दरी पलभर शृंगार कोष्ठ के पास रूकती है, फिर मत्यसाकार आसन पर जा बैठती हैं। माया तू अपने सपने की बात कह रही थी न अलका... ..क्या सह रही थी.....क्या देखा था.....सूखा सरोवर पत्रहीन वृक्ष और धूल-भरा आकाश? अलका होंठ काटकर सिर हिलाती है और उसके पास चली जाती हैं।

वाचिक अभिनय

ऊपर भी संकेत किया जा चुका है कि पात्रों द्वारा वाणी के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति को वांचिक अभिनय कहते हैं। कोई भी अभिनेता नाट्य-अभिनय में वाणी से ही परिभाषित करता है। इस अभिनय के भी नाटक से यथानश्चक संकेत मिल जाते हैं, उदाहरण स्वरूप सुन्दरी का परिहास के स्वर में बोलना एवं अलका

अन्तमख हो कहना सुन्दरी (परिहास के स्वर में) सुना हैं सच होते हैं। इसलिए तो उपाय करना होगा नहीं यह न हो कि तू भी कल भिक्षुणी का वेश धारण करने की सोचने लगे।

अलका (कुछ अंतर्मुख)मैं और भिक्षुणी का वेश.....नहीं, मैं ऐसी बात नहीं सोच सकती। अभी नहीं.. मैं तो यह सोचकर ही सिहर जाती हूँ कि कल..... सच, कल भिक्षुणी के वेश में देवी यशोधरा कैसी लगेगी, देवी? १०.१०.३. आहार्य अभिनय वेशभूषा, मेकअप और मंच सामग्री से जुड़ा यह अभिनय एक ऐसा तत्व है, जिसमें निर्देशक की भूमिका विशेष महत्व रखती है। क्योंकि किस पात्र की वेशभूषा कैसी हो, अभिनय करते समय उसके हाथों में प्रसंगवश क्या हो या न हो यह सब निर्देशक पर निर्भर करता है, परन्तु नाटककार भी अपने नाटक-शिल्प की कोशलता से कहीं-कहीं संकेत दे देता है। लहरों के राजहंस' में भी राकेश जी ने आहार्य अभिनय के पर्याप्त संकेत दिए हैं। यथा "अलका अपने को व्यस्त के लिए शृंगार कोष्ठ की सामाग्री को सहेजती है। फिर चबूतरे के पास जाकर तकियों की सलवटें निकालने लगती है।"

यहाँ लेखक ने श्रृंगार कोष्ठ की सामग्री भी कर दिया है। अब सामग्री में क्या-क्या दिखाना है यह सब निर्भर निर्देशक पर ही करता है। इसी प्रकार मदिराकोष्ठ, चषक मदिरा आदि का भी प्रयोग किया गया है "नन्द मदिराकोष्ठ के पास आकर चषक में मदिरा डालता है। तभी सुन्दरी की दृष्टि उस पर पड़ती है।" (चौंककर) आप?.....आप कब आए? अभी-अभी तो मैं.....। अत: आहार्य अभिनय के पर्याप्त संकेत मिल जाते हैं।

सात्विक अभिनय

एकाग्र मन से किया जाने वाला भय, आश्चर्य और उत्सुकता आदि का अभिनय सात्विक अभिनय कहलाता है। तकनीक की दृष्टि से भरतमुनि ने विस्तार से विचार नहीं किया, इसका एक ही कारण लगता हैं, बाकी अभिनय तत्वों की तकनीक बताई जा सकती हैं, सात्विक की नहीं। अभिनेता सात्विक अभिनय में अपने को हर-बार एक नए सिरे से परिभाषित करता है। सात्विक अभिनय का प्रयोग हर बार नया हो जाता हैं, क्योंकि किसी भी नाटक को फिर से खेलते समय केवल आहार्य में ऊपरी फेरबदल या आंगिक या वांचिक की अदायगी में कुछ घटा या जोड़ देने से प्रयोग में आमूलभूत परिवर्तन नहीं हो जाता। वास्तव में सात्विक को ही हर बार नए सिरे से करना होता है, इसलिए एक ही नाटक, एक

टिप्पणी

ही रंगमण्डली, एक ही अभिनेता द्वारा रंगमंच पर किया जाने पर हर-बार नया हो जाता है। लहरों के राजहंस' नाटक में सात्विक अभिनय के पर्याप्त संकेत विद्यमान है।

श्वेताँग -(कुछ संकोच के साथ) मैं कहना चाहता था देवि, कि आज की रात....।

सुन्दरी -(अधीर होकर) मैंने जो आदेश दिया है, उसका पालन करो। जाओ

यहाँ पर संकोच के साथ संवाद बोलना या अधीर होकर बोलना सात्विक अभिनय ही हैं। तब तक कोई भी पात्र वास्तविक पात्र की ही तरह अधीर नहीं होकर बोलता तब तक सात्विक अभिनय नहीं कहला सक इसी तरह मैत्रेय का निम्न संवाद देखिए

(गंभीर भाव से आगे आता हुआ) हाँ..... और, शायद एकमात्र अतिथि!

इसी तरह सुन्दरी का निम्न संवाद देखिए।

सुन्दरी - (आपे से बाहर होकर) अपने उद्वेग का वास्तविक कारण मैं स्वयं हूँ और किसी को यह अधिकार मैं नहीं देती कि वह में उद्वेग का कारण बन सके। आये मैत्रेय यदि जाना चाहते हैं, तो इन्हें भी जाने दीजिए। की दीजिए कह जिनके यहाँ ये होकर आए हैं, जाते हुए भी एक बार उनके यहाँ होते जाएँ। उन सबसे कह दें कि मेरे यहाँ आने के लिए किसी कल की प्रतिक्षा में वे न रहें। वह कल अब उनके लिए कभी नहीं आएगा, कभी नहीं....."

अत: प्रस्तुत नाट्यत कृति में अभिनेय के चारों तत्व-उमंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक मिल जाते हैं और इन्हीं में रहकर नाटक मंच पर अभिनीत होता है। नाटक में वार्णित कुछ चित्र दर्शक की जिज्ञासा को बढ़ाने के लिए प्रयुक्त हुए हैं जो प्रतिकात्मक अर्थ रखते हैं। जैसे नाटक के मध्य में चित्रित प्रेम-प्रसंग, दर्पण का हिलना और गिरकर टूट जाना। इसी तरह श्यामाँग की दोहरी प्रतीकात्मक भूमिका और उसका प्रलाप भी दर्शक की जिज्ञासा को बढ़ाता है। किन्तु नाटक की भूमिका में डाँ० सुरेश अवस्थी ने इसे अनुचित एवं दुर्विध माना है। "लेकिन श्यामाँग प्रसंग नाटकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण होकर भी दर्शक की रूचि और नाटक के सहज प्रभाव में बाधक बनता है। इसका कारण यह है कि श्यामाँग की चरित्रगत अवधारणा और उसके कार्यो और कथनों में अनत्य स्पष्ट नहीं है और ऐसा लगता है कि उसके संबंध में नाटककार द्विधाग्रस्त है। आरम्भ में लगता है कि श्यामाँग और अलका का अत्यन्त, सहज, कोमल और मौन पारस्परिक आकर्षण सुन्दरी और नन्द के उद्याम, मुखर और कामासिक्त प्रेम का ही एक प्रतिरूप है। इस प्रकार यह प्रसंग एक निश्चित नाटकीय सिद्धि की चेष्टा करता है और फिर बाद में वहीं श्यामाँग नन्द के अस्थिर और द्वन्द जंजीर मन का एक प्रतिरूप बन जाता है।.... श्यामाँग प्रतिक बनकर नाटकीय कथा के सीधे, स्पष्ट द्वन्द को केवल अस्पष्ट, नहीं बनाता, बल्कि वह वस्तु विधान को भी कमजोर करता है। नेपठय से श्यामाँग के स्वर का जिस प्रकार संगीत-खण्ड़ों के समान प्रयोग किया जाता है, वह प्रदर्शन को भी कमजोर और कृत्रिम बना देता है।"

यहाँ स्वाभाविक प्रश्न उठता हैं कि डाँ० अवस्थी स्वयं उसे नन्द और सुन्दरी के उद्दाम प्रेम को प्रतीक मानते हैं, फिर भी यह विरोधाभास क्यों? श्यामाँग नन्द और सुन्दरी के अन्तर्द्वन्द को गहरा करने के निमित्त ही प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुआ है। निष्कर्षत: लहरों के राजहंस एवं सफल अभिनेय नाटक है और इसे अनेक बार मंच पर प्रतिभाशाली, प्रयोगशील निर्देशकों के द्वारा अभिनीत भी किया जा चुका है/

2.14 लहरों के राजहंस की रंगमंचीयता

लहरों के राजहंस : एक विवेचना

कुछ विद्वान रंगमंचीयता और अभिनेयता को एक ही मानते हैं जबकि यह भ्रामक धारणा है। वास्तव में दोनों प्रथक प्रथक तत्व हैं। रंगमचीयता शब्द इस ओर संकेत देता हैं कि अमुक नाटक रंगमंच पर

टिप्पणी

प्रदर्शित होने के उपर्युक्त है नहीं, अर्थात् रंगमंच में नाटकीय दृश्य विधान आता है। रंगमंचीयता और अभिनेयता के अभाव में किसी भी नाट्यालेख को नाटक की संज्ञा देना समीचीन नहीं होगा। जब नाट्य-आलेख रंगमंच पर प्रस्तुतीकरण के माध्यम से अपने नाट्यानुभव को पूर्ण संप्रेषित कर देता है तब नाटककार की सृष्टि साकार रूप धारण कर लेती है और सृष्टि की पुर्नसृष्टि करता है। निर्देशक, रंगशिल्पी और अभिनेता के माध्यम से। नाट्य-रचना की अंतिम परिणति रंगमचीय अभिव्यक्ति के रूप में ही घटित होती है। अगर यह अभिव्यक्ति रंगमंचीय रूप में सफल नहीं हुई तो मानना चाहिए कि नाटक अपनी अभिव्यक्ति की प्रकिया में कहीं-न-कहीं अवरूद्ध हो गया है। नाटक की रंगमंचीयता के संदर्भ में धर्मवीर भारती का कहना है - "नाटक जब तक प्रदर्शित नहीं होता उसके गुण-दोष छिपे रह जाते हैं। रंगमंच ही उसकी सूक्ति एवं सीमा उजागर करता है। नाटक यदि मंचित हो न हो तो उसका विकास असंभव है।"

मोहन राकेश आधुनिक हिन्दी नाट्य-जगत के मसीहा माने जाते हैं। उनके दोनों ही नाटकों का अनेक बार मंचन हो चुका है। उनका पहला नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' प्रकाशित होते ही रंगमंच पर खेला गया। खेलते ही उसे अपार ख्याति मिली। यह नाटक दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, कलकत्ता, नागपुर एवं ग्वालियर आदि स्थानों के साथ-साथ अमेरिका, कनाडा आदि विदेशे में भी मंचित हो चुका है। 'लहरों के राजहंस' में रंगमंचीयता के सभी गुण मौजद होने के कारण ही यह अनेक बार मंचित हो चुका है। रंगमंच से गहन रूप से जुड़े सुप्रसिद्व निर्देशक श्यामानन्द जालान एवं ओमशिवपुरी के निर्देशन में यह नाटक दिल्ली, कलकत्ता एवं इलाहाबाद में कई बार मंचित हो चुका है। रंगमंच को लेकर यहाँ मोहन राकेश सतत् जागरूक दिखाई देते हैं। उन्होंने इस नाटक में आधुनिक यथार्थवादी नाट्य-शैली को अपनाया है। इस संदर्भ में डॉ० सुरेश अवस्थी का मत है - 'लहरों के राजहंस' आधुनिक उसी पद्धति के व्यवहारों और रूढ़ियों का पालन किया गया है, एक ही दृश्यबंध (मेल) पर नाटकीय कथा घटित होती है और कथा का विभाजन किया गया। यथार्थवादी नाट्य-रचना पद्धति में एक दृश्यबंध और तीन अंकों वाले नाटकों का विकास आधुनिक रंगमंच के स्वरूप और प्रदर्शन की परिस्थितियों तथा साधनों के कारण हुआ है और उसके पीछे एक शिल्पगत अनिवार्यता

अत: लहरों के राजहंस' एक सफल रंगमंचीय नाटक है, फिर भी अपने विषय की विवेचना के लिए हम इसकी रंगमंचीयता पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

कथानक की दृष्टि से

लहरों के राजहंस' ऐतिहासिक धरातल पर रचा गया काल्पनिक रोमांस नाटक है। इसमें एक ऐतिहासिक और प्रख्यात प्रसंग को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया गया है। संस्कृत आचार्यो ने नाटक की कथा वस्तु का प्रख्यात होना आवश्यक माना है। इस विषय में आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण' में लिखा है 'नाटक रत्यातवंस्यात् पंच संधि सन्वितम' अर्थात् नाटकीय कथ्य प्रख्यात हो और पाँच संधियों में समन्वित हो। इस नाटक के ऐतिहासिक कथानक के बारे में स्वयं नाटककार कहता है - "प्रस्तुत नाटक का आधार ऐतिहासिक है.....कथा का आधार अवश्घोष का 'सोन्दरानन्द' काव्य है परन्तु समय के विस्तार में स्थितियों का परिक्षेपण करने के कारण यह काल्पनिक भी है। काल्पनिक अश्वघोष का सोन्दरानन्द' भी हैं, क्योंकि सस्कृत तथा मलि भाषा में जो कथा उपलब्ध थी, उसका अश्वघोष ने अपनी दृष्टि से परिक्षेपण किया है। एक काल्पनिक अन्विति से उसे विस्तार दिया है। धम्मपद' की दीका में नन्द और सुन्दरी की जो कथा है, सौन्दरानन्द' की कथा का प्रभाव और विस्तार में उसे कहीं आगे जाती है।.... यहाँ नन्द और सुन्दरी की कथा एक आश्रय मात्र हैं, क्योंकि मुझे लगा कि उसे समय में परिक्षेपित किया जा सकता है।" अत: ऐतिहासिक कथानक अवश्य है पर उसमें कल्पना का समावेश

टिप्पणी

भी है। यही कारण है कि नाटक अपनी रोचकता में जहाँ पुरातनता की याद दिलाता है, वहीं उसमें चित्रित अन्तर्द्वन्द विशुद्ध आधुनिक सन्दर्भ लिए हुए है। अत: बेशक आधार ऐतिहासिक हो पर रूपाचित वर्णन आधुनिक है। इसके विषय में डॉ० सुरेश अवस्थी का कहना है -

लहरों के राजहंस' में एक ऐसे कथानक का नाटकीय पुराख्यान है जिसमें सांसारिक सुखों और आध्यात्मिक शक्ति के पारस्परिक विरोध तथा उनके बीच खड़े हुए व्यक्ति के द्वारा निर्णय लेने का अनिवार्य द्वन्द निहित है। इस द्वन्द का एक दूसरा पक्ष स्त्री और पुरूष के पारस्परिक संबंधों का अन्तर्विरोध है। जीवन के प्रेम और श्रेय के बीच एक कृत्रिम और आरोपित विरोध है, जिसके कारण व्यक्ति के लिए चुनाव कठिन हो जाता है और उसे चुनाव करने की भी स्वतन्त्रता भी नहीं रह जाती। चुनाव की यातना ही इस नाटक का कथा-बीज और उसका केन्द्र बिन्दु है। धर्म-भावना से प्रेरित इस कथानक में उलझे हुए ऐसे ही अनेक प्रश्नो का इस कृति में नये भाव-बोध के परिवेश में परीक्षण किया गया है।" अत: इस नाटक का कथानक ऐतिहासिक होते हुए भी आधुनिक है। नन्द एक ओर प्रवृत्ति मार्गी अनुपम सौन्दर्य युक्त अपनी पत्नी सुन्दरी के रूपजल में फंसा है। उससे निकलने की छटपटाहट हैं, मुक्ति की आकांक्षा है तो दूसरी ओर गौतम बुद्ध के निवृत्ति मार्ग से प्रभावित है जिसे अपनाने की तीव्र आकांक्षा है। एक ओर उससे सुन्दरी का त्याग नहीं किया जाता तो दूसरी और बौद्धमत को पूर्णत: स्वीकार भी नहीं किया जाता है। लेखक उसकी इस द्वन्दग्रस्त चेतना को ही आधुनिक संदर्भ में व्यक्त करता है। स्वयं राकेश जी का कहना है - "यहाँ नन्द और सुन्दरी की कथा आश्रय-मात्र है, क्योंकि मुझे लगा कि इसे समय में परिक्षेपित किया जा सकता है। नाटक का मूल अन्तर्द्वन्द उस अर्थ में यहाँ भी आधुनिक है जिस अर्थ में आषाढ़ का एक दिन' के अन्तर्गत है।"

दृश्य योजना

इस नाटक की दृश्य-योजना बड़ी ही आकर्षक एवं व्व्वास्थित ढंग की है। यह नाटक तीन अंकों में विभाजित है। तीनों ही अंक एक ही दृश्यबंध (मेज) पर मंचित होते हैं। अंकों को दृश्यों में विभाजित नहीं किया गया है। घटनाओं का केन्द्र सुन्दरी का कक्ष है। जिसमें सभी घटनाएँ घटित होती है। दृश्यबंध के बारे में लेखक प्रारम्भ में ही अपनी निर्देशकीय वृद्धि से करता है।

दाई ओर गोलाकार चबूतरा। सुंदर विधावन, तकिए। पीछे एक ऊँचा दीपाधार; शिखर पर पुरूषभूमि बाहें फैली हुई तथा आँखे आकाश की ओर उठी हुई। बाई ओर एक झूला ओर उससे थोडा हटकर एक मत्स्याकार आसन। आसन के पास ही मदिराकोष्ठ। इसी ओर मंच के आगे के भाग में एक छोटा सा दीपाधार-शिखर पर नारीमूर्ति-बाहें संवलित तथा आँखे धरती की ओर झुकी हुई। दाई ओर आगे के कोने में श्रृंगारकोष्ठ। खुले भाग में डोरी से बंधी पत्तियों का ढेर।

एक द्वार सामने, खुला होने पर पीछे के गवाक्ष दिखाई देते हैं। दूसरा दाई ओर, अन्दर के कक्षों में जाने के लिए। तीसरा बाई ओर; मत्सयकार आसन और दीपाधार के बीच बाहर उद्यान में जाने के लिए।

पर्दा उठने पर मंच पर दो व्यक्ति है, श्वेताँग और श्यामाँग। श्वेतांग अग्निकोष्ठ से बड़े दीपाधार के दीपक जला रहा है। श्यामाँग पत्तियों के ढेर में उलझा हुआ उन्हें सुलझाने का प्रयत्न कर रहा है।

इसी दृश्य-बंध पर नाटक को तीनों अंक प्रदर्शित होते हैं। एक बात और आजकल नाटकों में मध्यान्तराल भी रखा जाता है। इसी दृष्टि से इस नाटक को खेलते समय अधिकतर निर्देशक दो अंकों के उपरान्त ही दस या पन्द्रह मिनट का मध्यान्तराल भी रख देते हैं। इस नाटक का कथ्य यथार्थ और काल्पनिकता से ऐतिहासिकता का पट देकर गढ़ा गया है। वो भी इतना गंभीर कि दर्शक वर्ग को मध्यान्तराल में भी सीधे तौर पर एक मजबूती के साथ पकड़े रहता है।

टिप्पणी

संकलन त्रय

संकलन-त्रय से अभिप्राय काल, स्थान और कार्य की नाट्य-आन्वतियों से हैं, अर्थात् समय की एकता, स्थान की एकता तथा कार्य की एकता।

(क) समय की एकता -संस्कृत नाट्याचार्य समय की एकता के संबंध में अंक में काल-नियम' के अन्तर्गत विचार करते हैं। लेकिन आधुनिक नाट्य परिपेक्ष्य में इसका अर्थ परिवर्तन हो चुका है। आज के रंगमंच के परिपेक्ष्य में इसका अर्थ लिया जाता है कि नाटक एक ही समय में समाप्त होना चाहिए इस दृष्टि से देखा जाए तो प्रस्तुत नाटक लगभग दो घंटे में खेला जा सकता है।

(ख) स्थान की एकता -भारतीय नाटयशास्त्रकार स्थान की एकता को प्रतिपादित करते हुए इसका संबंध देश नियम' से लेते हैं। इसका अर्थ भी परिवर्तित हो गया है। नाटक एक ही समय में एक ही स्थान पर होना चाहिए जिससे कि पात्रों और दर्शकों को स्थान परिवर्तन न करना पड़े। स्थान-परिवर्तन दर्शक में उबाऊपन आ जाता है और नाट्यानुभूति के रसार-वादन में भी बाध्यता आती है।

इस दृष्टि से यह नाटक एक ही स्थान पर, एक ही रंगमंच पर, एक ही समय में बखूबी से खेला भी जा चुका है। और खेला भी जा सकता है, अत: कोई भी बाधा नहीं है।

(ग) कार्य की एकता - इसका अर्थ है कि नाटक में ऐसी कोई भी घटना समाहित न की जाए जो प्रमुख घटना से संबंध न रखती हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि नाटक में गौण कथाओं का समावेश ही न किया जाए। आवश्यकतानुसार गौण कथाओं का समावेश इस ढंग से हो कि यह मूल कथा के विकास में सहायक और इसमें संयोजित हो।

इस दृष्टि से प्रस्तुत नाटक में कार्य की एकता विद्यमान है। मूल रूप से इसमें एक ही घटना व्यापक हैं, नन्द की द्वन्दग्रस्त चेतना को उजागर करना। अत: संकलन-त्रय की दृष्टि से यह सफल रंगमंचीय नाटक है।

मंच सज्जा

मंच की प्रकिया में लेखक की स्थिति एक अजनबी जैसी होती है। यह सच है, किन्तु यह भी सच ही है कि रंगमंच के बारे में लेखक का ज्ञान सीमित होता है और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि लेखक गम्भीर रूप से रंगमंच से जुड़े हुए नहीं होते, परन्तु आज स्थिति बदल गयी है। फिर मोहन राकेश के बारे में तो यह बिल्कुल भी नहीं कहा जा सकता कि इनका रंगमंच का ज्ञान सीमित हैं, क्योंकि इनके प्रत्येक नाटक का एक नहीं अनेक बार मंचन हो चुका है। लहरों के राजहंस' नाटक में नाटक काटने यत्र-तत्र पर्याप्त रंग-संकेत दिए हैं जिनके आधार पर सहज ही में स्वाभाविक और सुन्दर मंच-सज्जा हो सकती है। हंसों की फड़फड़ाहट, उनका क्रन्दन, भिक्षुओं का समवेत स्वर तथा प्रात:कालीन शंख ध्वनि आदि रंग-संकेत नाटकीय कथा में विशेष प्रयोजन की सिद्धि हेतु रखे गये हैं और रंगमंच के अनुकूल भी हैं। मंच सामग्री के लिए लेखक संकेत देता है "सुन्दर बिछावन, तकिए, पीछे एक ऊँचा दीपाधारा शिखर पर पुरूष मूर्ति-बाहें फैली हुई तथा आँखे आकाश की ओर उठा हुई। बाई ओर एक झूला और उससे थोड़ा हटकर एक मत्यसाकार आसन। आसन के पास ही मदिराकोष्ठ। इसी ओर मंच के आगे के भाग में एक छोटा दीपाधार; शिखर पर नारी मूर्ति-बाहें संवलित तथा आँखे धरती की ओर झुकी हुई।" अत: मंच सज्जा में उपयोग आने वाली सामग्री ऐसी है कि जिसे आसानी से जुटाया जा सकता है।

टिप्पणी

पात्र-योजना

किसी नाटक में अगर पात्रों की संख्या कम अथवा सीमित हैं तो निर्देशक को ही नहीं, दर्शकों को भी कथ्य की पकड़ में सुविधा रहती है। दर्शक वर्ग पात्रों को उनकी वेशभूषा और संवादों से ही पहचानते है। अगर संख्या ज्यादा होगी तो दर्शक को पहचानने में परेशानी होगी, जो नाट्य सम्प्रेषणीयता में दोष माना जाता है।

इस दृष्टि से देखें भी तो प्रस्तुत नाटक में पात्र-संख्या सीमित है और दर्शक शीघ्र ही उनसे तादात्म्य कर लेते हैं। पात्रों के कम होने के कारण उनके वस्त्राभूषण की समस्या भी जटिल नहीं हो सकी है। सबसे बड़ी बात यह है कि पात्रों के वस्त्र-परिवर्तन की योजना भी नहीं रखी है। अत: इस दृष्टि से भी लहरों के राजहंस' सफल रंगमंचीय नाटक ठहरता है।

या उपर्युक्त रंगमंचीय तत्वों से हटकर भी अगर हम नाटक की रंगमंचीयता पर कुछ विचार करें तो उसकी भाषिक एवं संवादीय संरचना भी उसके मंचन की सफलता और असफलता से जुड़ी हुई है। मंचन की दृष्टि से संवाद संक्षिप्त, प्रवाहपूर्ण, सक्षम और मार्मिक होने चाहिए। उनमें रोचकता और कौतुहल होना चाहिए बल्कि दर्शक वर्ग का तादात्म्य बना रहे। इस दृष्टि विवेचना करने पर हम पाते हैं कि लहरों के राजहंस' के संवाद रंगमंचीय है। इसके संवाद संक्षिप्त, कलात्मक, मार्मिक, यथार्थपरक और व्यग्यपूर्ण है; जिन्हें सुनने में दर्शक आनन्द का अनुभव करता है। रही भाषा की बात। नाटक को रंगमंचीय बनाने में उसके भाव-सम्प्रेषण के लिए भाषा के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। नाटक को रंगमंचीय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी भाषा इतनी सहज, सरल, और रोचक होनी चाहिए। कि सामान्य दर्शक भी उसे आसानी से समझ सके। लहरों के राजहंस' की भाषा किलष्ट नहीं है। इसका कथानक यद्यपि ऐतिहासिक है फिर भी भाषागत किलष्टता नहीं है। हाँ परिवेशगत यथार्थता के निर्वाह के लिए गवाक्ष, आपानर, विशेषक आदि कुड विशिष्ट ओर अप्रचलित शब्दों का प्रयोग अवश्य हुआ है किन्तु समग्र रूप से नाटकीय भाषा की बात हैं, वह सहज, सरल एवं बोधगम्य ही है।

निष्कर्षत लहरों के राजहंस' एक सफल रंगमंचीय नाटक है, परन्तु ध्यान रखने की बात यह है कि रंगमंच पर यह नाटक बड़ी-ही-सूझ-बूझ से अभिनीत किया जाता है, क्योंकि नाटक का विषय नन्द की अन्तर्द्वन्द ग्रस्त चेतना हो उजागर करना अपने आप में जटिल है जिसे रंगमंच पर दिखाना सहज नहीं, कठिन जरूर है, पर असंभव नही हैं।

2.15 पात्र का चरित्र-चित्रण

मोहन राकेश ने लहरों के राजहंस' नाटक की सर्जना एक द्वन्द्वप्रधान नाटक के रूप में की है। इसकी वस्तु-योजना एवं पात्र-योजना में द्वन्द्व को प्रबल रूप से मुखरित किया है। असल में, यहाँ नाटककार ने नाटक के प्रमुख पात्रों के माध्यम से आधुनिक एवं युगों-युगों की द्वन्द्वग्रस्त चेतना को अभिव्यक्त किया है। यहाँ सभी प्रधान पात्रों का चरित्र द्वन्द्वग्रस्त है। नाटक में नन्द, सुन्दरी ही नहीं श्यामाँग का चरित्र भी द्वन्द्वग्रस्त है। वास्तव में इन द्वन्द्वग्रस्त पात्रों के माध्यम से नाटककार ने प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दर्शनों के द्वन्द्वों से ग्रस्त मानव चेतना को मखरित किया है। यह आधुनिक भी हो सकता है और सार्वकालिक भी इस विषय में स्वयं मोहन राकेश जी नाटक की भूमिका में लिखते हैं -

"यहाँ नन्द और सुन्दरी की कथा एक आश्रय मात्र है, क्योंकि मुझे लगा कि इसे समय में परिक्षेपित किया जा सकता है। नाटक का मूल अन्तर्द्वन्द्व उस अर्थ में यहाँ भी आधुनिक है, जिस अर्थ में "आषाढ़ का एक दिन' के अन्तर्गत है।"

टिप्पणी

अत: नाटककार के इस वक्तव्य को ध्यान में रखकर लहरों के राजहंस' के मुख्य पात्र नन्द के चरित्र-वित्रण की विवेचना की करना अधिक सभीचीन होगा। नन्द इस नाटक का सशक्त एवं सर्वाधिक द्वन्द्वग्रस्त पात्र है। वह नाटक का प्रमुख पात्र है और नायक के रूप में उभरा है। वह नाटकीय कथा में आदि में अन्त तक उपस्थित रहता है। राकेशजी ने युगों-युगों से प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्ग के बीच मानव चेतना की द्वन्द्वग्रस्ता के प्रतीक रूप में नन्द को प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिकता में नन्द कपिलवस्तु का राजकुमार है और भगवान गौतम बुद्ध का सौतेला भाई है। अनुपम सुन्दरी का पति है और नित्यप्रति भोग विलास का जीवन जीने का अभ्यस्त है।

1. नन्द-द्वन्द्वग्रस्त चेतना का प्रतीक

नाटककार ने नन्द को द्वन्द्वग्रस्त चेतना के प्रतीक रूप में उभारा है। वह प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्गों के बीच खड़ा है। खड़ा क्या डोल रहा है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार लहरों पर हंस तैरता या डोलता रहता है। वह इन दोनों में से एक के चुनाव की यातना का भोक्ता है। उसे नाटककार ने प्रवृत्ति एवं निवृत्ति मार्गों के बीच युगों से द्वन्द्वग्रस्त मानव चेतना के प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है। इसलिए वह भौतिक विलासमय जीवन जीता है और पारलौलिक सुख की खोज में बौद्धमत को स्वीकारने की कोशिश करता है। वह न अपनी पत्नी (प्रवृत्ति मार्ग) को छोड़ पाता है न ही पूर्णतया से बौद्धमत को स्वीकारने की कोशिश करता है। उसका दोनों के प्रति आकर्षण है और यहीं अन्तविरोध उसे किसी एक का नहीं होने देता। वह सुन्दरी से प्यार करता है। उसकी सुन्दता पर वह मोहित है। उसका प्रसाधन भी अपने हाथों से करना चाहता है। जब सुन्दरी प्रसाधन कर रही होती है तो वह हाथों में दर्पण लेकर खड़ा हो जाता है। लेकिन जब उसे सूचना मिलती है कि द्वार पर गौतम बुद्ध भिक्षा लेने आए थे और किसी ने भी भिक्षा नहीं डाली तो वह विक्षुब्ध हो जाता है और वह अस्थिर हो जाता है जिससे दर्पण हिलकर गिरकर टूट जाता है। दर्पण का टूटना प्रतीकात्मक अर्थ रखता है। दर्पण का टूटना वास्तव में उसके हृदय का टूटना है जिससे सुन्दरी अपनी खण्डित रूपाकृति देखकर सिहर उठती है। वह बुद्ध के पास क्षमा याचना के लिए जाना चाहता है और चला भी जाता है, किन्तु बुद्ध जबरन उसके केश कटवा देता है जिससे वह ग्लानिवश घर नहीं लौटता, वन की और चला जाता है और वहाँ प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों से सीधे साक्षात्कार करता है। एक व्याघ्र से भी भिड़ता है फिर क्षत-विक्षत होकर घर की और लौटता है और अपने अन्तर्द्वन्द्व को उजागर करता हुआ भिक्षु आनन्द से कहता है -

- "और नहीं भिक्षु। यह बातों का खेल हमारे बीच और नहीं खेला जाएगा स्वर्ग और नरक, वैराग्य और विवेक, शील और संयम, आर्यसत्य और अमृत मैं जानता हूँ, वाणी के छल से तुम मुझे किस ओर ले जाना चाहते हो। मैं तथागत के सामने कह चुका हूँ और अब फिर से कहे देता हूँ कि वह दिशा मेरी नहीं हैं कदापि नहीं है।"
- उसके स्वगत कथनों में यह अन्तर्द्वन्द्व और भी अधिक मार्मिकता के साथ मुखरित हुआ है। यथा -"जानता था कि यह प्रवत्तिआत्म-विनाश की है, परन्तु उस प्रवृत्ति को मैं रोक क्यों नहीं सका? क्यों मैंने जानबूझकर आत्म विनाश को निर्मंत्रित किया, और फिर स्वयं ही आत्म-रक्षा के लिए उस तरह लड गया? क्षत-विक्षत हम दोनों हुए.....पलायन भी एक तरह से दोनों ने किया ....."

आत्म-विनाश और आत्म-रक्षा, दोनों प्रवृत्तियों के बीच एक साथ मैं कैसे जिया और क्यों और उस तरह जी कर क्या सुख मिला? और क्या यह सुख की ही खोज थी जिसने उस तरह जीने

टिप्पणी

के लिए विवश किया? या यह केवल मन का विद्रोह था..... बिना विश्वास एक विश्वास के अपने ऊपर लादे जाने के लिए) या इसलिए कि इस समय मैं इतना सत्वहीन क्यों हो गया कि भिक्षुआनन्द के कर्तनी उठाने पर चिल्ला नहीं सका कि - "यह विश्वास मेरा नहीं हैं। मैं तुम्हारा या किसी और का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता, नहीं जीना चाहता ।" .....उन्होंने केश कटवा दिए, तो क्या व्यक्तिरूप में मैं अधिक सत्य हो गया? जि हवा कटवा देते. हाथ-पैर कटवा देते, तो और अधिक सत्य हो जाता। कोन कह सकता है कि भ्रांति वस्तुतः किसे हैं, उन्हें या मुझे?"

"उन्होंने कहा, मैं मैं नहीं हूँ, तुम तुम नहीं हो, वह वह नहीं हैं.....सब किसी उंगली से आकाश में बनाए गए चित्र हैं जो बनते-बनते साथ ही मिटते जाते हैं, जिनका होना न होने से भिन्न नहीं हैं।.....पर मैं पूछता हूँ कि जब होने न होने में कोई अन्तर नहीं हैं, तो मेरे केश क्यों कटवा दिए? कटवा ही दिए तो उससे अन्तर क्या पड़ता है। कुछ ही दिनों में फिर नहीं उग आएंगे?..... अन्तर पड़ता यदि मेरा ह्रदय बदल जाता, आँखे बदल जाती। मेरे हृदय में तुम्हारे लिए अब भी वहीं अनुराग हैं, आँखों में तुम्हारे रूप की वही छाया है।"

इससे भी तीव्रतम स्थिति नन्द के निम्न संवाद में देखिए "तब प्रश्न उन्होंने पूछे थे.....अब मुझे जाकर उनसे कई-कई प्रश्न पूछने होंगे.....जीने की इच्छा को कितने-कितने प्रश्नों ने एक साथ घेर लिया है। व्याघ्र से लड़कर भी मन को शांति नहीं मिली।....लगता है अभी और लड़ना है, बहुत लड़ना है....ऐसे किसी से जिसके पास लड़ने के लिए भुजाएं नहीं हैं।.....मन में मृत्यु का भय है.....किसी भी प्रकार की मृत्यु का.....परन्तु उस भय में साथ एक आकर्षण भर दिया गया है। अस्तित्व और अस्तित्व के बीच मेरी चेतना को एक प्रश्नचि ह....केवल एक प्रश्नचिह् बनाकर छोड़ दिया गया है। क्यों ... पहले इसी प्रश्न का उत्तर मुझे उनसे जानना है..... आज ही और अभी।

उपर्युक्त उद्धारणों से स्पष्ट होता है कि नाटककार ने नंद को द्वन्द्वग्रस्त चेतना के प्रतीक रूप मे उभारा है।

2. नंदः

विलासी राजकुमार :

नंद का विलासी व्यक्तित्व है वह अपनी अनुपम सौन्दर्य युक्त पत्नी सुन्दरी के रूप में ही उलझा रहता है वह मदिरापान भी करता है। तभी तो नाटककार ने कहा- नंद मदिराकोष्ठ के पास आकर चषक में मंदिरा डालता है। तभी सुन्दरी की दृष्टि उस पर पड़ती है)

सुन्दरी : (चौंककर) आप? ..... आप कब आए? अभी-अभी तो मैं..

नंद : (चषक होठों के पास ले जाकर) मैं अभी आया हूँ।

(चषक खाली करके यथास्थान रख देता है)

एक ओर तो कपिलवस्तु के राजपुरूष, राजकर्मचारी और सामान्य लोग बौद्धमत में दीक्षा ग्रहण कर रहे थे, और दूसरी ओर नंद अपनी पत्नी सुन्दरी द्वारा कामोत्सव के आयोजन की तैयार) में सहयोग देते दिखाई देते

"हां... नहीं ... ऐसी कुछ विशेष बात नहीं थी। मैं यही कहना चाहता था कि.... व्यवस्था यदि उद्यान के स्थान पर कक्ष में की जाए, तो..... ।"

नंद तो सुन्दरी के प्रसाधन में भी सहयोग करता है। वह दर्पण हाथ में लेकर खड़ा हो जाता है:

"कि मैं किस अधिक मुग्ध हूँ..... तुम्हारी सुंदरता पर या तुम्हारी चातुरी पर।"

वह दतना विलासमयी है कि बौद्धधर्म में दीक्षित होने पर भी वापिस सुन्दरी के पास आता है। उसे निहारता है और बौद्धमत में अपनो अस्वीकृति दिखाता है।

"यह केवल मन का विद्रोह था.... बिना विश्वास एक विश्वास के अपने ऊपर लादे जाने के लिए? या कि इसलिए कि उस समय में इतना सत्वहीन क्यों हो गया कि भिक्षु आनन्द के कर्तनी उठाने पर चिल्ला नहीं सका कि यह विश्वास मेरा नहीं है। मै तुम्हारा या किसी और का विश्वास ओढ़कर नहीं जी सकता, नहीं जीना चाहता।"

वह केश कटने के बाद अपने को सुन्दरी के बिना अकेला महसूस करता है। इसीलिए वह कहता है "तब नहीं लगा था, पर अब लगता है कि केश काटकर उन्होंने मुझे अकेला कर दिया है। घर से.... और अपने आपसे भी अकेला! जिस सामर्थ्य और विश्वास के बल पर जी रहा था, उसी के सामने मुझे असमर्थ और असहाय बनाकर फेंक दिया गया है।"

नंद विलासी होने के कारण ही किसी एक पथ को नहीं चुन पाया। नहीं तो वह दोनों में ही एक मार्ग का चयन कर लेता।

3. अस्थिर व्यक्ति्व :

नन्द का स्थिर व्यक्तित्व नहीं है और उसमें स्थिर लेने की भी क्षमता नहीं है। शक्ति हो भी तो साहस नहीं करता। यह केवल सुन्दरी के रूप पर मोहित है। वह पूर्णत: भोगवादी दिखाई देता है, लेकिन ज्योंकि उसे श्बुद्ध' शहणं गच्छामि? का समवेत स्वर प्रबलता से सुनाई देता है तो उसका सुन्दरी (प्रव तिमार्गी) के प्रति आकर्षित मन टूट जाता है और वह बौद्ध मत की शरण में भागता है। केश कर्तन करवा लेता है, किन्तु वह वहाँ भी नहीं ठहर पाता, वापिस लौटता है पर ग्लानिवश वन की ओर चला जाता है। वहाँ भी एक व्याघ्र से भिड़ता है, अथार्त-प्रवति मार्ग से साक्षात्कार करता है। फिर क्षत-विक्षत घर लौट ही आता है। किन्तु उसका अस्थिर मन यहाँ भी नहीं टिकता। वह फिर कुछ प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए बुद्ध के पास जाता है। अत: उसका अस्थिर मन उसे कहीं भी नहीं टिकने देता, कोई भी स्थिर निर्णय नहीं लेने देता। वह अन्त तक कमलताल की लहरों पर तैरते-डोलते राजहंसो की तरह अस्थिर बना रहता है।

4. नंद: एक अहिसंक व्यक्ति:

नंद एक अहिंसक मानव है। वह बौद्ध दर्शन के अनुरूप ही अंहिसात्मकता का पालन करता है। उसकी यह भावनाहिरण के प्रसंग से स्पष्ट हो जती है। संध्याकाल में नंद जब आखेट से वापिस आता है तो सुन्दरी से अपनी अहिंसात्मक भावना को व्यक्त करता हुआ कहता है।

"सच, थकान उतनी शरीर की नहीं जितनी मन की है। मृग मेरे बाण से आहत नहीं हुआ इससे मन को उतना खेद नहीं हुआ, जितना इससे..... कि जब थककर लौटने का निश्चय किया तो वही मृग..... थोड़ी ही दूर आगे.... रास्ते में मरा हुआ दिखाई दे गया।" मृत्यु का यह शरीरी आतंक वास्तव में बुद्ध दर्शन की चेतना का ही आतंक है जिसने उसके मन में अहिंसा-भाव का जन्म दे दिया है। इसी विषय में वह आगे कहता है।

"मैने कभी सोचा तक नहीं था कि मरा हुआ मृग भी इतना सजीव लग सकता है ऐसे लग रहा था जैसे हाथ लगाते ही वह आशंका से कांप जाएगा और सहसा उठकर भाग खड़ा होगा।

टिप्पणी

पर मैं उसे हाथ भी तो नहीं लगा सका। आखेटकों ने उसे उठा लाना चाहा, तो मैने मना कर दिया। कहा कि उसे वहीं रहने दो, उसी रूप में मृत और.... जीवित।"

नंद दूसरे दिन तक भी सृग के प्रसंग को भूल नहीं पाया ओर अपने कक्ष के गवाक्ष से अनन्त क्षितिज की ओर देखता हुआ उसी के बारे सोचता रहता है। सुन्दरी के पूछने पर कहता है- "नहीं, उस मृग की बात सोच रहा था। सोच रहा था कि घने वृक्षों की ओट में पड़ा हुआ वह....। वहाँ पड़ा हुआ वह कैसा लग रहा था। और न जाने क्यों इस समय प्रभात का फीका चाँद भी मुझे कुछ वैसा ही लगा..... कोमल, अक्षत और निर्जीव।"

जब गौतम बुद्ध उसके केश कटवा देते हैं तो वह फिर भी मृग को देखने के लिए जाता है और उसकी ठठरी देखकर कांपने लगता है। वापिस घर आने पर वह सोयी हुयी सुन्दरी के पास जाकर कहता है।

तुम पूछती, क्यों, तो मैं क्या उत्तर देता? क्या कहता कि तथागत के पास से उठ आने के बाद क्यों मन में कल के मरे हुए मृग को देखने की कामना इतनी प्रबल हो आयी थी कि किसी भी तरह अपने को वहाँ जाने से रोक नहीं सका? कैसे बताता कि मृग के स्थान पर एक नोच खायी ठठरी को देखकर मुझे कैसा लगा।"

5. नंद : उद्दाम प्रेम का प्रतीकः

राकेश जी ने नंद को उद्दाम प्रेम का प्रतीक प्रस्तुत किया है। वह सुन्दरी से अत्यधिक प्रेम करता है। वह तो सुन्दरी के प्रेम से आतंकित भी दिखाई देता है। जो विलास-भावना उसके मन में जागती है, वह सुन्दरी के प्रेम के कारण ही जागती है। यथा

नंद : एक बात का मैं कभी निश्चय नहीं कर पाता।

सुंदरी : किस बात का?

नंद : कि मै किस पर अधिक मुग्ध हूँ.... तुम्हारी सुन्दरता पा या तुम्हारी चातुरी पर।

सुन्दरी : आप मुझे चतुर कहते हैं?

नंद : नहीं हो तुम?

सुन्दरी :कहते हैं, आपका ब्याह एक यक्षिणी से हुआ है जो हर समय आपको अपने जादू से चलाती है।

नंद :इसमें झूठ क्या है?

सुन्दरी :झूठ नहीं है?

नन्द : यक्षिणी हो या नहीं, यह तो मै नहीं कह सकता पर मानवी तुम नहीं हो। ऐसा रूप मानवी का नहीं होता।

वह गौतम बुद्ध के निवत्ति मार्ग से प्रभावित है। बुद्ध के पास जाकर केश कर्तन भी करवा लेता है, बौद्ध धर्म की दीक्षा ले लेता है, किन्तु फिर भी वह अपने उद्दाम का परित्याग नहीं कर पाया, बल्कि बुद्ध धर्म की दीक्षा ले लेता है, किन्तु फिर भी वह अपने उद्दाम प्रेम का परित्याग नहीं कर पाया, बल्कि बुद्ध मत में ही अविश्वास प्रकट करता हुआ कहता है।

टिप्पणी

"पर मै पूछता हूँ कि तब होने न होने में कोई अन्तर नहीं है, तो मेरे केश क्यों कटवा दिए? कटवा ही दिए, तो उससे अन्तर क्या पड़ता है। कुछ ही दिनों में फिर नहीं उग पाएंगे। (झूले के पास रूककर) अन्तर पड़ता यदि मेरा हृदय बदल जाता, आँखे बदल जाती। मेरे हृदय में तुम्हारे लिए अब भी वही अनुराग है, आँखों में तुम्हारे रूप की अब भी वही छाया है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि नंद एक उद्दाम प्रेम का प्रतीक रूप है।

अत: यहाँ राकेश जी ने ऐतिहासिक नंद के चरित्र को विलासिता के युगों से प्रवत्ति एवं निवत्ति मार्ग के बीच मानव की द्वन्द्वग्रस्त चेतना के अस्थिर व्यक्तित्व के, मानव मन की अहिंसात्मक भावना के आधुनिक प्रतीक रूप में उभारा है। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राकेश जी ने उन्हे नायक बनाया है। वह नायक ठहरता भी है, क्योंकि वह नाटककार के उद्देश्यों की पूर्ति करता है।

मोहन राकेश ने लहरो के राजहंस' नाटक की सर्जना एक द्वन्द्वप्रधान नाटक के रूप में की है। इसकी वस्तु-योजना एवं पात्र योजना में द्वन्द्व को प्रबल रूप से मुखरित किया है। असल में, यहाँ नाटककार ने नाटक के प्रमुख पात्रों के माध्यम से आधुनिक एवं युगों-युगों की द्वन्द्वग्रस्त चेतना को अभिव्यक्त किया है। यहाँ सभी प्रमुख पात्रों का चरित्र द्वन्द्वग्रस्त है। नाटक में नंद, सुन्दरी ही नहीं श्यामाँग का चरित्र भी द्वन्द्वग्रस्त है। वास्तव में इन द्वन्द्वग्रस्त पात्रों के माध्यम से नाटकार ने प्रवत्ति एवं निवत्ति दर्शनों के द्वन्द्वों से ग्रस्त मानव चेतना को मुखरित किया है। यह आधुनिक भी हो सकता है और सार्वकालिक भी इस विषय में स्वंय मोहन राकेश का नाटक की भूमिका में कहना है

यहाँ नंद और सुन्दरी की कथा एक आश्रय मात्र है, क्योंकि मुझे लगा कि इसे समय में परिक्षेपित किया जा सकता है। नाटक का मूल अर्न्तद्वन्द्व उस अर्थ में यहाँ भी आधुनिक है, जिस अर्थ में आषाढ़ का एक दिन' के अन्तर्गत है।"

अत: नाटककार के इस वक्तव्य को ध्यान में रखकर 'लहरों के राजहंस' की मुख्य पात्र सुन्दरी के चरित्र-चित्रण की विवेचना करना अधिक समाचीन होगा।

सुन्दरी 'लहरों के राजहंस' नाटक की नायिका और नायक नंद की पत्नी है। वह प्रवत्ति मार्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रतीकात्मक पात्रा है। वह गौतम बुद्ध के निवत्ति मार्ग में आस्था नहीं रखती वरन् उसके विपरीत भौतिक देह-सुख भोग को ही अपना अभीष्ट मानती है और देवी यशाधरा से स्वभावत: ईर्ष्या करती है। अत: उसके चरित्र पर विस्तार से चर्चा करना अपेक्षित है।

1. **भोगवाद की प्रतीक सुन्दरी:**

   राकेश जी ने सुन्दरी के चरित्र को प्रवृत्ति मार्गी दर्शन के प्रतीकात्मक रूप में उभारा है। वह जीवन के भौतिक -सुख-भोग को ही जीवन का सबसे बड़ा सुख और अभीष्ट मानती है। वह अपनी कामेच्छाओं का स्थगत स्वीकार नहीं कर सकती। उसे पता है कि देवी यशोधरा कल प्रात: गौतम बुद्ध के निवृत्ति मार्ग में दीक्षा ग्रहण करेगी, इसलिए वह उससे पूर्व की रात्रि में कामोत्सव का आयोजन करती है। वह अपनी भोगवत्ति का उजागर स्वंय ही करती है।

   "रात बीतने दे, फिर अपने मन से पूछना। रात-भर नगरवधू चन्द्रिका के चरणों की गति से इस कक्ष की हवा कांपती रहेगी। हवा कांपती रहेगी, और डुलती रहेगी मदिरा उसकी आँखों से, उसके एक-एक अंग की गोराई से। कपिलवस्तु के राजपुरूष रात-भर मदिरा में और अन्यान्यमणि-मदिराओं में डूबते-उतराते रहेंगे। तु देखेगी और विश्वास नहीं कर सकेगी। जो नहीं देखें, वे तो कल्पना भी नहीं कर पायेंगे।"

टिप्पणी

एक ओर तो कपिलवस्तु के राजपुरूष, राजकर्मचारी और जन-सामान्य सांसारिकता से विमुख होकर गौतम बुद्ध के निर्वाण मार्ग में दीक्षा ग्रहण कर रहे हैं, दूसरी ओर भोग की प्रतीक प्रवृति मार्गी सुन्दरी कामोत्सव का आयोजन करती है जिसमें रात्रि के अंतिम पहर तक भोजन, आपानक नृत्य चलेगा। इसका उजागर करता हुआ श्यामाँग कहता है।

"पिछले वसंत में आम कैसे बौराये थे! पेड़ो की डालियाँ अपने आप हाथों पर झुक आती थीं.... परन्तु तब यहाँ कामोत्सव का आयोजन नहीं किया गया। आयोजन किया गया है इस बार..... जब आम के वृक्षों ने भिक्षुओं का वेश धारण कर रखा है।..... कल प्रातः देवी यशोधरा भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ग्रहण करेंगी और यहाँ.... रात-भर, नृत्य होगा, अपानक चलेगा।

सुन्दरी भोगवाद में विश्वास रखती है तभी तो वह शशांक नामक राजसेवक को पुराने रस और आसव मिलाकर कई प्रकार के नए सम्मिश्रण बनाने के लिए आदेश देती है। वह गौतम बुद्ध के निवत्ति मार्ग को, उसके दष्टिकोण को श्रेष्ठ मानती है। इसीलिए तो वह गौतम बुद्ध पर आरोप लगती है।

"कहना चाहने की बात नहीं, अलका! मै तुझे एक छोटी-सी सच्चाई बतला रही हूँ। लोग कहते हैं कि गौतम बुद्ध ने बोध प्राप्त किया है। कामनाओं को जीता है। पर मैं कहती हूँ और ऐसी कामना किसी के मन में क्यों जागती है?"

सुन्दरी का यह उपर्युक्त तथ्य स्वीकार नहीं है क्योंकि अगर ऐसा होता तो कपिलवस्तु के समस्त राजपुरूष, सामान्य-जन बौद्धमत में क्यों दीक्षित हो रहा है? सभी के सभी बौद्धमत को स्वीकार करने में इतना उत्साह क्यों दिखा रहे हैं? सुन्दरी इसके प्रत्युत्तर में कहती है "इसका अर्थ इतना ही है अलका, कि बहुत दिन एक तार जीवन बताकर लोग अपने से ऊब जाते है। तब जहाँ कुछ भी नवीनता दिखाई दे, वे उसी ओर उमड़ पड़ते हैं। यह उत्साह दूध फेन का उबाल है। चार दिन रहेगा, फिर शान्त हो जाएगा।" यही नहीं वह गौतम बुद्ध के निवत्ति मार्ग पर व्यंग्य भी करती है। वह अलका से कहती है।

कोई गौतम बुद्ध से कहे कि कभी कमलताल के पास आकर इनसे (राजहंसो) भी वे निर्वाण और अमरत्व की बात कहे। ये एक बार चकित दृष्टि से उनकी ओर देखेगे, फिर कांपती लहरें जिधर ले जाएगी, उधर को तैर जायेंगे। शायद उस दिन एक बार गौतम बुद्ध का मन नदी तट पर जाकर उपदेश दने को नहीं होगा। मैं चाहूँगी कि उस दिन.....।

सुन्दरी कामोत्सव का आयोजन करती है। लेकिन कोमोत्सव में निमंत्रित व्यक्तियों में से कोई भी नहीं आता, केवल एक मैत्रेय आता है। वह भी सुन्दरी को परामर्श देता है कि कामोत्सव को एक दिन के लिए स्थगत स्वीकार नहीं कर सकती। उसे पता है कि देवी यशोधरा कल प्रातः गौतम बुद्ध के निवृत्ति मार्ग में दीक्षा ग्रहण करेगी, इसलिए वह उससे पूर्व की रात्रि में कामोत्सव का आयोजन करती है। वह अपनी भोगवत्ति का उजागर स्वंय ही करती है।

"रात बीतने दे, फिर अपने मन से पूछना। रात-भर नगरवधू चन्द्रिका के चरणों की गति से इस कक्ष की हवा कांपती रहेगी। हवा कांपती रहेगी, और डुलती रहेगी मदिरा उसकी आँखों से, उसके एक-एक अंग की गोराई से। कपिलवस्तु के राजपुरूष रात-भर मदिरा में और अन्यान्यमणि-मदिराओं में डूबते-उतराते रहेंगे। त देखेगी और विश्वास नहीं कर सकेगी। जो नहीं देखें, वे तो कल्पना भी नहीं कर पायेंगे।"

एक ओर तो कपिलवस्तु के राजपुरूष, राजकर्मचारी और जन-सामान्य सांसारिकता से विमुख होकर गौतम बुद्ध के निर्वाण मार्ग में दीक्षा ग्रहण कर रहे हैं, दूसरी ओर भोग की प्रतीक प्रवृति मार्गी सुन्दरी कामोत्सव का आयोजन करती है जिसमें रात्रि के अंतिम पहर तक भोजन, आपानक नृत्य चलेगा। इसका उजागर करता हुआ श्यामाँग कहता है।

"पिछले वसंत में आम कैसे बौराये थे! पेड़ो की डालियाँ अपने आप हाथों पर झुक आती थीं.... परन्तु तब यहाँ कामोत्सव का आयोजन नहीं किया गया। आयोजन किया गया है इस बार..... जब आम के वृक्षों ने भिक्षुओं का वेश धारण कर रखा है।..... कल प्रातः देवी यशोध रा भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ग्रहण करेंगी और यहाँ.... रात-भर, नृत्य होगा, अपानक चलेगा।

सुन्दरी भोगवाद में विश्वास रखती है तभी तो वह शशांक नामक राजसेवक को पुराने रस और आसव मिलाकर कई प्रकार के नए सम्मिश्रण बनाने के लिए आदेश देती है। वह गौतम बुद्ध के निवत्ति मार्ग को, उसके दष्टिकोण को श्रेष्ठ मानती है। इसीलिए तो वह गौतम बुद्ध पर आरोप लगती है।

"कहना चाहने की बात नहीं, अलका! मै तुझे एक छोटी-सी सच्चाई बतला रही हूँ। लोग कहते हैं कि गौतम बुद्ध ने बोध प्राप्त किया है। कामनाओं को जीता है। पर मैं कहती हूँ और ऐसी कामना किसी के मन में क्यों जागती है?"

सुन्दरी का यह उपर्युक्त तथ्य स्वीकार नहीं है क्योंकि अगर ऐसा होता तो कपिलवस्तु के समस्त राजपुरूष, सामान्य-जन बौद्धमत में क्यों दीक्षित हो रहा है? सभी के सभी बौद्धमत को स्वीकार करने में इतना उत्साह क्यों दिखा रहे हैं? सुन्दरी इसके प्रत्युत्तर में कहती है "इसका अर्थ इतना ही है अलका, कि बहुत दिन एक तार जीवन बताकर लोग अपने से ऊब जाते है। तब जहाँ कुछ भी नवीनता दिखाई दे, वे उसी ओर उमड़ पड़ते हैं। यह उत्साह दूध फेन का उबाल है। चार दिन रहेगा, फिर शान्त हो जाएगा।" यही नहीं वह गौतम बुद्ध के निवत्ति मार्ग पर व्यंग्य भी करती है। वह अलका से कहती है/

"कोई गौतम बुद्ध से कहे कि कभी कमलताल के पास आकर इनसे (राजहंसो) भी वे निर्वाण और अमरत्व की बात कहे। ये एक बार चकित दृष्टि से उनकी ओर देखेगे, फिर कांपती लहरें जिधर ले जाएगी, उधर को तैर जायेंगे। शायद उस दिन एक बार गौतम बुद्ध का मन नदी तट पर जाकर उपदेश दने को नहीं होगा। मैं चाहूँगी कि उस दिन.....।

सुन्दरी कामोत्सव का आयोजन करती है। लेकिन कोमोत्सव में निमंत्रित व्यक्तियों में से कोई भी नहीं आता, केवल एक मैत्रेय आता है। वह भी सुन्दरी को परामर्श देता है कि कामोत्सव को एक दिन के लिए

स्थगित कर दिया जाए, यह सुनकर सुन्दरी तकदम मततमा उठती है, क्योंकि यह उसके प्रवत्ति मार्ग पर निवत्ति मार्ग की ओर से एक प्रहार था और सुन्दरी पराजित होना नहीं चाहती थी, तुरन्त कहती है

"कामोत्सव कामना का उत्सव है, आर्य मैत्रेय! मै अपनी आज की कामना कल के लिए टाल रखू। क्यों? मेरी कामना मेरे अन्तर की है। मेरे अन्तर में उसकी पूर्ति भी हो सकती है। बाहर का आयोजन उसके लिए उतना महत्व नहीं रखता जितना कुछ लोग समझ रहे हैं।"

2. आधुनिक अभिजात्य नारी की प्रतीक

सुन्दरी आधुनिक अभिजात्य वर्ग की प्रतीक रूप में उभरी है। उसके व्यक्तित्व में राकेश जी

टिप्पणी

ने आधुनिक नारी जीवन के अनेक तत्वों का समावेश हुआ है। इसी कारण वह अपने प्रत्येक सामान्य या विशेष सामयिक या असामायकि कार्य को चिरस्मरणीय बनाना चाहती है। इसीलिए वह कामोत्सव के बारे में अपने कर्मचारियों से कहती है-"हाँ, रात के अंतिम पहर तक! भोज आपानक और नृत्य; वर्षों तक याद बनी रहनी चाहिए लोगों के मन मे।" । उसके दर्शन को हम चार्वाक दर्शन से प्रभावित मान सकते है या आधुनिक पाश्चात्य Eat- drink and mary की धारणा पर आधारित मान सकते हैं। वह अलका से कहती है..." रात भर नगरवधू चन्द्रिका के चरणों की गति से इस कथा की हवा कांपती रहेगी। हवा कांपती रहेगी और ढुलती रहेगी मदिरा, उसकी आँखों से, उसके एक-एक अंग की गौराई से.....।

सुन्दरी के व्यक्तित्व में अभिजात्य वर्ग की नारी जैसा शासन भाव भी विद्यमान है। इसी कारण वह अपनी बातों को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देती है....." क्यों आज तक कभी हुआ है कि कपिलवस्तु के किसी राजपुरूष ने इस भवन में निमन्त्रण पाकर अपने को कृतार्थ समझा हो? नंद कामोत्सव में भाग लेने के लिए अनेक लोगों के पास स्वयं जाता है, लेकिन कोई नहीं आता, इस बात का जब सुन्दरी को पता चलता है तो वह अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठती है और कहती है- "मेरे उत्सव में लोग अनुरोध करने से आए, इससे उनका न आना ही अच्छा है।" वह अत्यन्त उद्विग्न अवस्था में आर्य मैत्रेय से कहती है। "आर्य मैत्रेय यदि जाना चाहते हैं, जाते हुए भी एक बार उनके यहाँ होते जाएं। उन सबसे कह दें कि मेरे यहाँ आने के लिए किसी कल की प्रतिक्षा में वे लोग न रहें। वह कल अब उनके लिए कभी नहीं आएगा, कभी नहीं..... ।"

देखा जाए तो यह उतावलापन सुन्दरी के व्यक्तित्व के खोखलेपन का ही द्योतक है और यह खोखलापन आधुनिक दृष्टिकोण से परखते हुए डॉ. जयदेव तनेजा का कहना है।

"नन्द और सुन्दरी के माध्यम से राकेश ने जिस तरह औरत और मर्द के आपसी रिश्ते का रेशा-रेशा उधेड़ा है, उनके संबंधों को जैसी निर्ममता और निष्ठुरता से विश्लेषित किया है, वह आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि का ही परिणाम या प्रमाण है।"

3. अनुपम सौन्दर्यशालिनी

सुन्दरी अनुपम सौन्दर्यशालिनी नारी है। उसका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक हैं वह अभिजात्यवर्गीय सौन्दर्य से युक्त हैं वह शारीरिक के साथ-साथ व्यवहारिक सौन्दर्य की स्वामिनी हैं नंद उसके सौन्दर्य पर मोहित एक नतमस्तक, तो है, ही कुछ आतंकित भी है। उदाहरणत:

नंद - एक बात का मैं कभी निश्चय नहीं कर पाता।

सुन्दरी - किस बात का?

नंद -कि मैं किस पर अधिक मुग्ध हूँ.....तुम्हारी सुन्दरता पर या तुम्हारी चातुरी पर।

सुन्दरी-आप मुझे चतुर कहते हैं?

नंद-नहीं तो तुम?

सुन्दरी-(जैसे बहुत भोलेपन से) नहीं तो।

सुन्दरी-पता है लोग क्या कहते हैं?

सुन्दरी - कहते हैं, आपका ब्याह एक यक्षिणी से हुआ है जो हर समय आपको अपने जादू से चलाती है।

टिप्पणी

नंद - इसमें झूठ कया हैं?

सुन्दरी - झूठ नहीं है?

नंद-यक्षिणी हो या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता, पर मानवी तुम नहीं हो। (स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ) ऐसा रूप मानवी का नहीं होता।

4. ईर्ष्यालु नारी

सुन्दरी स्वभावत: नारीगत ईर्ष्या-भाव की शिकार है यह देवी यशोधरा से ईर्ष्या करती है। इसी कारण वह उसी पूर्व रात्रि में कामोत्सव का आयोजन करती है जिस दिन देवी यशोधरा बौद्धमत में दीक्षा ग्रहण करती है। वह राजकुमार सिद्धार्थ के गौतम बनने के पीछे देवी यशोधरा को ही कारण मानती हुई व्यंग्यात्मक शब्दों में कहती है "यही तो दु;ख है कि आज वे राजकुमार सिद्धार्थ नहीं है। परन्तु राजकुमार सिद्धार्थ आज गौतम बुद्ध बनकर आए, इसका श्रेय भी तो देवी यशोधरा को हैं नहीं?

एक स्थल पर श्यामाँग सुन्दरी के ईर्ष्या भाव को व्यक्त करता है। "कामोत्सव का आयोजन किया गया है, इस बार जब आम के वृक्षों ने भिक्षुओं का वेश धारण कर रखा है। ..... कल प्रात: देवी यशोधरा भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ग्रहण करेंगी और यहाँ .... यहाँ रात भर नृत्य होगा, आपानक चलेगा... ।"

सुन्दरी के इस ईष्यालु भाव से नंद परिचित है, इसलिए जब यशोधरा कहती है कि वह भिक्षुणी बनने से पहले अपने संबंधियों में मिलना चाहती है और मिलने के लिए नंद के पास निमंत्रण भी भेजती है। नंद सुन्दरी को बिना बातये ही यशोधरा से मिलने चला जाता है। वापित आने पर जब वह सुन्दरी को बताता है कि वह देवी यशोधरा से मिलकर आ रहा है और तुम्हारे लिए उन्होंने आर्शीवाद भेजा, है तभी वह तमतमा उठती है और कहने लगती है

"आत्म-वंचना की भी एक सीमा होती है। आज के दिन वे आशीर्वाद देंगी और मुझे। मन में क्या सोच रही होगी, मैं अच्छी तरह जानती हूँ उन्हीं के कारण .....।"

अत: सुन्दरी का ईष्यामत्व सपष्ट हो जाता है।

5. सुन्दरी का विद्रोह एवं द्वन्द्व

सुन्दरी का पूर्ण विश्वास था कि उसका पति नंद कभी भी उसके सौन्दर्य-पाश से मुक्त होकर बौद्ध भिक्षु नहीं बन सकता। लेकिन जब वह प्रसाधन कर कर रही होती है। और नंद अपने आथों में दर्पण लिए हुए होता है तो वह हिलकर गिरकर टूट जाता है, तभी वह शंकाग्रस्त होकर कहती है "जानना चाहती हूँ कि कया दर्पण का टूटना सचमुच आकारण ही था...या उस समय आप कोई और बात सोच रहे थे?" इसी के साथ उसका विश्वास भी खण्डित हो जाता है, लेकिन उसे इस विश्वास के खण्डित होने का एहसास तब होता है जब वह एक ओर अपने अधूरे शृंगार को देखती है तो दूसरी ओर अपने सम्मुख केश कर्तित नंद को देखती है। उसकी इस स्थिति के विषय में डॉ० सुरेश अवस्थी का कहना है।

"एक ओर तो नन्द के मन का यह द्वन्द्व है, और दूसरी ओर रूपगर्विता सुन्दरी के इस खण्डित विश्वास की पीड़ा कि उसमें आसक्त उसका पति कैसे उसके रूपपाश से मुक्त होकर बौद्ध भिक्षु होकर उन्हीं हाथों में विक्षापात्र लेकर उसे पास लौटा है, जिन हाथों में उसे शृंगार के लिए उसने दर्पण उठाया था। ..... नाटक के अन्त में जब वह नन्द के द्वारा चन्दन लेप का

टिप्पणी

बिन्दु बनाए जाने पर चौंककर जाग जाती है तो उसकी दृष्टि नंद के केश कटे हुए भिक्षु-वेशी मुख पर पड़ती है। उसका मुख वितृष्णा से भर जाता है ।"

नंद केश कटवा कर घर आता है तो वह सुन्दरी को निहारकर सोचता है कि सुन्दरी को तुम्हारे केश चाहिए अर्थात, सुन्दरमा चाहिए जिसमें केशों का होना अनिवार्य है इसीलिए वह केश लेने के लिए वापिस गौतम बुद्ध के पास जाता है। लेकिन सुन्दरी की सोच इसके विपरीत आधुनिक नारी की सी है। वह पुरुषवादी इस सोच के प्रति विद्रोह-भावना रखती है। इसी कारण उसका अन्तर्द्वन्द्व और अधिक गहन हो उठता है और वह विद्रोहात्मक भावना को व्यक्त करती हुई कहती है

"इतना ही तो समझ पाते हैं ये लोग ..... बस इतना ही तो इनकी समझ में आ पाता है।..... इससे कभी समझ भी नहीं पाएंगे ये ..... कभी नहीं समझ पाएंगे।"

6. अहंनिष्ठ नारी

सुन्दरी अंहनिष्ठ नारी है। वह कामोत्सव का आयोजन करती है लेकिन मैत्रेय को छोड़कर निमंत्रित व्यक्तियों में से कोई भी नहीं आता। मैत्रैय भी यह परामर्श देता है कि कामोत्सव को स्थगति कर दिया जाए, यह सुनते ही वह तमतमा उठती है, क्योंकि वह इसे निवृत्ति मार्ग की ओर से एक ग्राड्यनत्र मानती है। और कहती है "मैं अल्पवस्थित नहीं हूँ। किसी का कोई शड़यन्त्र मुझे अत्यवस्थित नहीं कर सकता ।"

मैत्रैय यह सुनकर वापित जाना चाहता है लेकिन नंद उसे रोकने की कोशिश करता है। इसी समय सुन्दरी बड़ी उद्विग्नता से जा कहती है उसे उसकी अहं भावना ही झलकती है

"(आप से बाहर होकर) अपने उद्वेग का वास्तविक कारण मैं स्वयं हूँ। और किसी को यह अधिकार मैं नहीं देती कि वह मेरे उद्वेग का कारण बन सके। आर्य मैत्रेय यदि जाना चाहते हैं, तो इन्हें भी जाने दीजिए। कह दीजिए कि जिनके यहाँ से होकर आए हैं, जाते हुए एक बार उसके यहाँ होते जाएं उन सबसे कह दें कि मेरे यहाँ आने के लिए किस कल की प्रतिक्षा में वे न रहें। वह कल अब उसके लिए कभी नहीं आएगा। कभी नहीं ...."

अत: कहा जा सकता है कि लेखक के मूल उद्देश्य युगों-युगों से मानव की प्रवृत्ति एंव निवृत्ति दर्शन के बीच द्वन्द्वग्रस्त चेतना को मुखरित करने में सुन्दरी एक ओर प्रवृत्ति मार्ग के दर्शक का प्रतिनिधित्व करती है तो दूसरी ओर पुरुष प्रधान समाज की नारी के प्रति सोच का आधुनिक नारी के रूप में विद्रोह भी प्रकट करती है। वह अनुपम सौन्दर्य शालिनी है इसीजिए उसे अपने रूप सौन्दर्य पर गर्व है और वह राजरानी है इसलिए वह अहंनिष्ठ भी है।

2.13 श्यामसांग अर्थववता

मोहन राकेश ने लहरों के राजहंस नाटक में श्यामाँग नाटक में श्यामाँग प्रसंग को जिस प्रकार से प्रयक्त किया है, उससे वह चर्चा का विषय बन गया है। सामान्यत: अधिकांश विद्वान श्यामाँग को कुमार नंद की द्वन्द्वग्रस्त चेतना का प्रतीक मानते हैं। परन्तु वे यह भूल जाते है कि ऐसा मानने से उसका व्यक्तित्व नंद के व्यक्तित्व में ही अन्तनिर्हित होकर रह जाता है। अगर हम यह मान भी लें कि वह नंद की अन्तद्व न्द्व चेतना का प्रतीक है तो भी नाटक में उसका अलग से व्यक्तित्व अवश्य बना रहता है। उसकी महत्ता एवं आर्वता नाटक के प्रारम्भ से ही स्पष्ट होने लगती है। नाटकारम्भ्य में ही उसका स्वर नाटकीय कथा को उद्घाटित करता है और ध्यान आकर्षित करता है और नाटकांक तक उसका स्वर सुनाई देता रहता है। आरम्भ में ही वह पत्तियों को तोड़ने और सुलझाने में व्यस्तभाव से श्वेतांग से कहता है एक "मुझे

टिप्पणी

तुमसे ईर्ष्या होती है।" यह ईर्ष्या क्यों है? क्योंकि श्वेतांग अपने कार्य में लगा रहता है जबकि श्यामाँग अपनी मानसिक उलझनों में ही उलझा रहता है। वह ईर्ष्या का कारण स्वंय बताता है- "देखो न एक के बाद एक दीपक जलता जाता है। न कुछ उलझता है, न कुछ बिखरता है।" मार श्यामाँग की इस उलझन में नाटक की सारी कथा-प्रक्रिया उलझी ही दिखाई देती है। उसे प्रकाश की कोई भी किरण दिखाई नही देती। नन्द अपनी यातनामयी स्थिति को निर्णय के हाथों में सौंपकर चला जाता है किन्तु फिर भी श्यामाँग का स्वर सुनाई देता है- "केवल एक किरण ... केवल एक किरण..." श्यामाँग के इस प्रलाप से ऐसा लगता है कि विवशता से ही सही नंद से निर्णय की एक किरण मिल ही जाती है जबकि श्यामाँग को वह नहीं मिल पाती।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट हो जाता है कि श्यामाँग का व्यक्तित्व नन्द में अन्तर्हित होकर भी उससे अलग अस्तित्व रखता है। कारणत: कहा जा सकता है कि आधुनिक द्वन्द्वग्रस्त चेतना का अंकन जितना श्यामाँग के व्यक्तित्व से हुआ है, उतना नंद के व्यक्तित्व से नहीं हुआ। शायद श्यामाँग के इसी प्रसंग के कारण नाटककार की स्वंय की चेतना भी अन्तद्वन्द्वग्रस्त रही है। तभी तो उन्होंने नाटक का यह परिवर्तित रूप' शीर्षक की भूमिका में लिखा- "पहले अंक से हटाना चाहा तो हटा नहीं सका, दूसरे अंक में उसके लिए स्थान बनाना चाहा तो वह भी बना नहीं सका।" इसी कारण श्यामाँग पहले अंक के बाद रंगमंच पर दिखाई नहीं देता। पर इतना जरूर है कि दूसरे और तीसरे अंकों में नेपथ्य से उसका ज्वर-प्रताप संगीत खण्डों में अवश्य सुनाई देता रहता है। यह ज्वर-प्रलाप नंद की द्वन्द्वग्रस्त चेतना को गहराई भी देता है जिससे यह प्रलाप प्रतीकात्मक बन जाता है। यह प्रतीक केवल नन्द की द्वन्द्वग्रस्त चेतना को ही मुखर नहीं करता। बल्कि मनुष्य के युगों-युगों के द्वन्द्व से मुखर करता है। शायद इसी कारण नाटककार ने श्यामाँग के रूप में उसकी अत्यधिक आकर्षक एवं सशक्त सजीव पात्र की ऐतिहासिक परिवेश में सर्जना की है। कुछ आलोचक श्यामाँग और अलका के मौन आकर्षक और प्रेम को नन्द और सुन्दरी के उद्दाम प्रेम का प्रतीक मानते है। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि किसी एक का प्रेम दूसरे का प्रेम का प्रतीक कैसे हो सकता है? हमारे विचार में यह कल्पना निरर्थक है। क्योंकि ऐसा मानने से श्यामाँग और अलका के अस्तित्व को नकार देना है और नंद एवं सुन्दरी के अस्तित्व, व्यक्तित्व में जान-बूझकर अन्तर्हित करने का प्रयत्न करना है। अगर ऐसा होता तो न नाटककार अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त रहता और न ही वह श्यामाँग को पहले अंक से हटाकर दूसरे अंक में लाने का असफल प्रयत्न करता। भले ही श्यामाँग कल्पित पात्र है, लेकिन वह नाटककार की सृजनात्मक प्रक्रिया में एक व्यक्तित्व बनकर उभरा है। हमारा तो यहाँ तक मानना है कि श्यामाँग एक प्रतीक होते हुए भी उसका नंद से भी अधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व है। उसका इतना प्रभावशाली व्यक्तित्व है कि नाटककार के प्रतिबन्धित करने पर भी वह नन्द के व्यक्तित्व पर छा गया है और वह दर्शकों की सहानुभूति नंद से भी ज्यादा प्राप्त करता है। डा. सुरेश अवस्थी श्यामाँग को नंद द्वन्द्वग्रस्त चेतना का प्रतीक मानते हुए कहते हैं।

"आरम्भ में लगता है कि श्यामाँग और अलका का अत्यन्त सहज, कोमल और मौन पारस्परिक आकर्षण सुन्दरी और नंद के उद्दाम, मुखर और कामासक्त प्रेम का ही एक प्रतिरूप है। इस प्रकार यह प्रसंग एक निश्चित नाटकीय प्रयोजन की सिद्धि की चेष्ठा करता है और फिर बाद में यही श्यामाँग नन्द के अस्थिर और द्वन्द्वजर्जर मन का एक प्रतिरूप बन जाता है और अपने ज्वर-प्रलाप में जैसे नन्द की ही अनिश्चितता, विभ्रम और अकुलाहट को ध्वनित करता है।"

श्यामाँग और अलका के मौन प्रेम को सुन्दरी नंद के उद्दाम प्रेम का प्रतीक मानने के विषय में ऊपर चर्चा हो चुकी है। रहा नन्द के द्वन्द्वग्रस्त मन के प्रतीक का प्रश्न, तो उसे भी हम आंशिक ही स्वीकारते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि श्यामाँग के प्रलाप से नन्द के द्वन्द्व को बल मिला है, किन्तु उसका प्रलाप

टिप्पणी

उसी के अवचेतन मन की ग्रंथि मुख्य रूप से जो अचेतावस्था में अधिक सशक्त रूप में मुखर हुई है। नाटक के प्रारम्भ से है श्यामाँग एक अन्तर्मुखी चिन्तनशील व्यक्ति के रूप में उभरा है। यही कारण है कि जब उसे अन्धकूप में डाल दिया जाता है। तो उसकी अन्तमुर्खता प्रलाप का रूप धारण लेती है। अलका सुन्दरी के वार्तालाप से उनका निजी व्यक्तित्व ही उभरता है। अलका सुन्दरी से कहती है

"नहीं देवी! छाया की बात से मैं विश्वास नहीं करती। पर मैं कई दिन से देख रही हूँ कि ... धीरे-धीरे उसे कुछ होता जा रहा है..... अपनी मानसिक शक्तियों से उसका अधिकार उठता जा रहा हैं।... कि वह अपने में ही कहीं खोया जा रहा है... मन में कुछ ग्रंथियाँ उलझ गयी हैं और वह... उसे सहानुभूति उपचार की आवश्यकता है, देवि, मैं कितना चाहती थी कि मैं उसे ... कि उसके लिए कुछ किया जा सके...।"

अर्थात् श्यामाँग का द्वन्द्व अपना है। वह किसी से मेल नहीं बैठता। श्यामाँग के प्रलाप को नंद का अन्तर्मुखी भाव नहीं माना जा सकता। इतना जरूर है कि श्यामाँग का प्रलाप नंद के द्वन्द्व को प्रबल अवश्य करता है। नाटकारम्भ में श्यामाँग कामोत्सव के बारे में अपने विचार व्यक्त करता है तो वहाँ उसका अपना ही वैचारिक द्वन्द्व है।

उदाहरणतः

"श्वेताँग कहता कुछ सोचों नहीं... पर सोचना न सोचना अपने बस की बात है? पिछले वसन्त में आम कैसे बौराये थे। पेड़ों की डालियाँ अपने आप हाथों पर झुक आती थी। परन्तु तब यहाँ कामोत्सव का आयोजन नहीं किया गया। आयोजन किया गया है इस बार... जब आम के वृक्षों ने भिक्षुओं का वेश धारण कर रखा है।... कल प्रातः देवी यशोधरा भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ग्रहण करेगी और यहाँ... यहाँ रात भर नत्य होगा, आपानक चलेगा...।" जब

एक अन्य स्थल पर सुन्दरी भी कुछ ऐसा ही कहती है- "उससे प्रेम तो नहीं करती? मैने नहीं सोचा कि तू... पर तू किसी से प्रेम करती है, तो उस तरह के सपने कैसे देखती?... और श्यामाँग... वह ऐसा व्यक्ति है क्या जिससे ... पर शायद यह बात पूछने की नही... मुझे इस विषय में सोचना होगा ।"

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि श्यामाँग का अपना व्यक्तित्व है और अलका उससे प्रेम करती है। और इसी कारण उसका द्वन्द्व भी उसी का है। सुन्दरी का संवाद तो इस बात को और भी स्पष्ट कर देता है जिसमें वह अलका से पूछती है' तुझे विश्वास है, तू सचमुच उससे प्रेम करती है?"

एक बात और कि सुन्दरी नंद के आने से पहले ही पहला आदेश वापिस लेकर श्यामाँग की अन्धकप से मुक्ति का दूसरा आदेश भी दे देती है। कुछ मिलाकर देखा जाए तो अलका, श्यामाँग का प्रेम प्रसंग उनका अपना ही है न कि नंद और सुन्दरी का प्रतीक रूप।

लेकिन डॉ. सुरेश अवस्थी इस बात से सहमत नहीं है। वे तो श्यामाँग की महता इसी कारण मानते है कि वह नंद के मन के द्वन्द्व एवं संघर्ष को ध्वनित करता है। उनकी दृष्टि में श्यामाँग एक व्यक्ति के रूप में पहले ही अंक में मर जाता है और अपने प्रसंग और उन मूल्यों से पूरी तरह से कट जाता है जो नाटकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रश्न उठता है कि क्या वास्तव में श्यामाँग पहले अंक के बाद नाटक से अपनी भूमिका को खो लेता है? इसका उत्तर डॉ. सुरेश अवस्थी के ही वक्तव्य में मिल जाता है- "दूसरे अंक के प्रारम्भ में एक स्वर श्यामाँग का नेपथ्य से उभरता है और उधर नंद अपने मन की उद्विग्नता के कारण रात गए तक जाग रहा है। ये दोनों स्वर एक दूसरे से टकराते है और एक-दूसरे को काटते है और तब ऐसा लगता है कि नन्द ही रंगमंच पर अनिन्दा में अशांत बैठा है और नंद ही

टिप्पणी

नेपथ्य से प्रलाप कर रहा है। कोई स्वर नहीं... कोई किरण नहीं है.... एक छाया है... अंधेरे कूप में भटकती हुई छाया ।"

अवस्थी के इस कथन में विरोधाभास दिखाई देता है। प्रश्न उठता है कि जब श्यामाँग की चरित्रगत अवधारणा और उसके कार्यों और कथनों के मन्तव्य स्पष्ट नहीं है तो फिर नन्द की चरित्रगत अवधारणा और उसके कार्यों और कथनों के मन्तव्य भी स्पष्ट हो सकता और यदि नंद के व्यक्तित्व में अस्पष्टता है तो नाटक का सृजन ही अपना मूल्य खो बैठता है।

इस नाटक में श्यामाँग के प्रसंग को लेकर एक और प्रश्न उठता है। जब सुन्दरी के रूप जाल-प्रेम और बुद्ध के निवत्ति मार्ग को लेकर नंद की चेतना द्वन्द्वग्रस्त हो जाती है तो श्यामाँग की चेतना अलका के प्रेम और बुद्धमत को लेकर द्वन्द्वक्यों नहीं मचता? फिर चिन्तनशील और भावुक मन में तो और भी प्रबलता से उठ सकता है, क्योंकि उसके माध्यम से उस युग का बोध भी तो हो सकता है। उस समय बुद्ध का प्रभाव बढ़ रहा था। कपिलवस्तु के लोक विशेषत: राज कर्मचारी बड़ी तीव्रता से उसकी ओर आकर्षित हो रहे थे, दीक्षा ग्रहण कर रहे थे। मैत्रेय के संवादो से भी कोमोत्सव के प्रसंग में इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है। सुन्दरी के बुलाने पर भी वे लोग कामोत्सव में नहीं आते। मैत्रेय कहता है

ङ्केजिम जिनस्से मै मिला है, उनमें से हर एफ ने किसी न किसी कारण अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए, क्षमा याचना की है- रविदत्त, अग्निवर्मा, नीलवर्मा, ईषाण, शैवाल, सभी ने।

नंद के माध्यम से जहाँ नाटककार ने एक ओर राजपरिवार के एक व्यक्ति के निर्णय के यातनामय द्वन्द्व को आकार प्रदान किया है, वहाँ श्यामाँग के माध्यम से उस युग की समान्य और विशेषत: राजपुरुषों एवं कर्मचारियों की स्थितियों का चित्रण किया है। उनके सामने भी एक ओर प्रवत्तिमार्ग का आर्कषण है तो दूसरी ओर बौद्धांत की पुकार भी है। अत: कहाँ जाए? का प्रश्न, किसको अपनाए का द्वन्द्व चेतन का द्वन्द्व है, जबकि श्यामाँग का द्वन्द्व युगों-युगों की अन्तर्मुखी सामान्य जनता का द्वन्द्व है। उसे नन्द की ही चेतना में अन्तरहित नहीं बताया जा सकता है, क्योंकि अंत में राजपरिवार का द्वन्द्व किनारा पा जाता है। जबकि प्रजा का द्वन्द्व बना ही रहता है। वैसे तो श्यामाँग और नंद में से किसी को भी बौद्ध मत में दीक्षित होते नहीं दिखाया गया। सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो नंद की आँखों में केश-कर्टन के बाद सुन्दरी का रूप ही समाया रहता है, पर ध्वनित हो जाता है कि नन्द ने दीक्षा ले ली। श्यामाँग का अंतिम प्रलाप से भी यही उजागर हाता है कि निवत्ति मार्ग में ही द्वन्द्व का परिहार है- बस एक किरण ... केवल एक किरण...।" अत: यह किरण प्रवति नहीं , निवत्ति मार्ग के रूप में ही है जो नंद या श्यामाँग को मिल नहीं पाती, क्योंकि उस किरण को पाना अर्थात् निवत्ति मार्ग को अपनाते हुए दिखाना नाटककार का उद्देश्य भी नहीं था। उसका उद्देश्य तो युगों से मानव की द्वन्द्वग्रस्त चेतना को उजागर करना था।

इस प्रकार हम श्यामाँग प्रसंग को द्वन्द्वग्रस्त चेतना को रूपायित करने में उसकी भूमिका को हम नंद के समान मान सकते हैं, पर नंद के व्यक्तिव में ही अतहित नहीं मान सकते, क्योंकि श्यामाँग का प्रेम संबंध अपना है और नंद की अपेक्षा वह अधिक अन्तर्मुखी है। इसी प्रकार उसका द्वन्द्व भी अपना है। जो नन्द की अपेक्षा अधिक गहरा और व्यापक है। उसके द्वन्द्व की अभिव्यक्ति में अधिक गहराई निम्न पंक्तियों में देखी जा सकती है "जब आम के वृक्षों ने भी भिक्षुओं का वेश धारण कर रखा है... कल प्रात: देवी यशोधरा भिक्षुणी के रूप में दीक्षा ग्रहण करेंगी और यहाँ .... रात भर नृत्य होगा, आपानक चलेगा....।"

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि श्यामाँग प्रसंग के बारे में स्वंय नाटककार भी द्वन्द्वग्रस्त है। नाटककार की स्थिति को समझते हुए डॉ. सुरेश अवस्थी का कहना है-"लेकिन श्यामाँग प्रसंग नाटकीय

टिप्पणी

दृष्टि में महत्वपूर्ण होकर भी दर्शक की रूचि और नाटक के सहज प्रभाव में बाधक बनता है। इसका कारण यह है कि श्यामांग चरित्रगत अवधारणा और उसके कार्यों और कथनों के मन्तव्य स्पष्ट नहीं है और ऐसा लगता है कि उनके सम्बन्ध में नाटककार दुविधाग्रस्त है।"

भले ही अवस्थी जी ने नाटककार को दुविधाग्रस्त बता दिया हो, लेकिन वास्तविकता कुछ और ही है जिसे आगे-चलकर अवस्थी जी स्वंय स्वीकारते हैं "इस प्रकार नाटककार एक साथ ही जैसे श्यामाँग से दो काम लेना चाहता है (अपनी भी और नन्द की अभिव्यक्ति भी) और दो प्रयोजनों की सिद्धि चाहता है। श्यामाँग के चरित्र का यही विरोधाभास (तब तो यह विरोधाभास नन्द के चरित्र का ही होना चाहिए) इस अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रसंग (तो निश्चित रूप से यह एक स्वतन्त्र एंव महत्वपूर्ण प्रसंग है, नाटकीय शक्ति को क्षीण कर देता है। और इसी कारण अलका का अत्यन्त प्रयोजनशील और स्पष्ट चरित्रांक पूरी तरह विकसित नहीं हो पाता।" अत: अवस्थी जी एक ओर श्यामाँग के व्यक्तित्व को स्वीकारते हुए नजर आते है तो दूसरी ओर उसे नकारते हुए भी- "श्यामाँग प्रसंग नाटक के पूरे रूपबंध का ही अंग है, और वह नाटक की मुख्य कथा वत्ति और द्वन्द्वभाव को ही अधिक तीव्र बनाता है। अपना स्वामत अस्तित्व नहीं निर्मित करता।

हाँ, यह जरूर है कि श्यामाँग प्रसंग में अलका का चरित्र विकसित नहीं हो पाता। वह अधूरा ही रह जाता है। परन्तु क्या हम इसे आधार मानकर समूचे श्यामाँग प्रसंग को, उसके व्यक्तित्व को नकार दे? नहीं।

श्यामाँग के व्यक्तित्व की महता को सिद्ध करने के लिए हम यहाँ शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक जूलियस सीजर' का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। इस नाटक का नायक आरम्भ में ही मारा जाता है, किन्तु उसके व्यक्तित्व को प्रभाव अन्त तक बना रहा है। आलोचकों ने नायक सीजर की आत्मा को स्वीकार किया है, क्योंकि संपूर्ण कथा को परोक्ष रूप से वही नियंत्रित रखता है। इसी विषय में हम एक और उदाहरण ले सकते है। बंगला उपन्यासकार प्रेमनाथ विशी के 'पूर्णावतार' उपन्यास में कृष्ण की मृत्यु आरम्भिक पृष्ठों में ही हो जाती है। किन्त वह सम्पूर्ण कथा में छाया रहता है। अत: श्यामाँग का प्रसंग भी कुछ इसी प्रकार का है। वह नाटक के प्रथम अंक में तो रंगमंच पर उपस्थित होता है, फिर उसे अंधकूप में डाल दिया जाता है। बस नेपथ्य से उसका ज्वर प्रलाप ही सुनाई देता है। लेकिन यह प्रलाप ही उसके व्यक्तित्व को आकृति प्रदान करता है और दर्शको को आकर्षित, प्रभावित करता है। अत: पुरजोर तरीके से यही कहेंगे कि श्यामाँग प्रसंग से नाटककार ने यगों-युगों के मानव-चेतना के द्वन्द्व को उजागर किया है। अगर हम नाटक से श्यामाँग प्रसंग को हटा दे तो लहरों के राजहंस' की नाटकीयता एवं उसके उद्देश्य (द्वन्द्वग्रस्त चेतना को उजागर करना) पर प्रश्न चिहन लग जाएगा।

अत: श्यामाँग का अपना व्यक्तित्व है। उसका नितान्त अपना प्रेम है और भी उसका अपना ही है। उसका प्रसंग तो दर्शको/पाठकों में कौतुहल एवं उत्सुकता की श्रीवद्धि करता है। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि श्यामाँग प्रसंग तो लहरों के राजहंस' नाटक की एक आवश्यक कड़ी है जो नाटक को यर्थाकता और गहनता प्रदान करती है। जिसकी नाटक के लिए विशेष महत्ता है।

2.14 अभ्यास प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंस' की तात्विक विवेचना कीजिए।**
2. **मोहन राकेश के नाटक 'लहरो के राजहंस' की प्रकृति एवं निवृत्ति दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।**

टिप्पणी

3. मोहन राकेश के नाटक 'लहरी के राजहंस' नाटक की कथावसु द्वितीय अंक की समीक्षा करें।
4. 'नारी का आकर्षण' पुरूष बनाता है इस कथन की समीक्षा करे।
5. "तँ गौरव बुद्धगतं चकर्ष भार्यनुरागः पुरराचकर्प, सीडनिश्चमान्नापि थयौ न तस्थौ तंरस्तरगेस्विण राजहंस।" श्लोक अर्थ समझाए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंस' की वस्तु योजना किस प्रकार की है?
2. मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंस' के नाम की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।
3. मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंस' के प्रतीकात्मक प्रयोगों को स्पष्ट कीजिए।
4. मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंस' की संवाद योजना किस प्रकार की है?
5. देशकाल-वातावरण की दृष्टि से मोहन राकेश के नाटक 'लहरों के राजहंस' की समीक्षा कीजिए।

♦♦♦♦♦

इकाई 3

आधे-अधूरे : नाटक में अभिव्यक्त संवेदना एवं शिल्प

संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 संवेदना की विविध परिभाषाएँ
3.3 संवेदना की अवधारणा
3.4 संवदेना के विविध रूप और आधे-अधूरे
3.5 आधे-अधूरे की अभिनेयता
3.6 आधे-अधूरे की सम्वाद योजना
3.7 आधे-अधूरे : उद्देश्य अथवा प्रतिपाद्य
3.8 आधे-अधूरे : आधुनिकता
3.9 आधे-अधूरे : युगबोध
3.10 आधे-अधूरे : प्रयोगधर्मिता
3.11 आधे-अधूरे की भाषा शैली
3.12 पात्रों का चरित्र-चित्रण
3.13 आधे-अधूरे और आधुनिक जीवन के प्रश्न
3.14 आधे-अधूरे : चरित्र और समाज
3.15 आधे-अधूरे और नाटकीय रंगमंचीय संदर्भ
3.15 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

हृदय को जो भाव स्पर्श करे अथवा छू ले उसे संवदेना कहते हैं। किसी भी भाव या स्थिति का हृदय पर जो प्रभाव पड़ता है और उसकी जो प्रतिक्रिया होती है उसे संवेदना कहते हैं। इस बात को इस प्रकार भी समझा जा सकता है। यदि हम अपने आस-पास ही नजर डालें तो यह दुनिया कितनी बड़ी और भरी पूरी नजर आती है। इसके इतने सारे रंग और रूप है। इतने सारे पदार्थ और वस्तुएँ है प्रत्येक वस्तु या प्रत्येक घटना हम पर किसी न किसी रूप से असर करती है, जैसे पानी में पत्थर फेकने से तरंग उठती है वैसे ही हम जब कुछ देखते हैं। तो हम भी प्रतिक्रिया करते हैं। हमारा भी हृदय प्रतीत होता है कि संवेदना मात्र इन्द्रियों के उत्तेजना की ही चेतना अवस्था है।

3.2 संवेदना की विविध परिभाषाएँ

संवेदना 'संस्कृत' का शब्द है। जिसका अर्थ है सुख-दु:ख का अनुभव या ज्ञान की प्रतीति। 'संवेदन' शब्द पुलिंग है। इसमें आ' प्रत्यय लगने से उसका स्त्रीलिंग रूप 'संवेदना' बना है। विभिन्न विद्वानों ने 'संवेदना' का अर्थ स्पष्ट करने की कोशिश की है। संवेदना शब्द की व्युत्पति 'वेदना' शब्द के पूर्व 'सम्' उपसर्ग लगा देने से होती है। यह वेदना' शब्द श्विद्' धातु से बना है। संस्कृत भाषा में इस श्विद्' धातु का अर्थ पीड़ा या संताप के अतिरिक्त प्रमुख रूप से ज्ञान से होता है। विद् धातु में धृ' ल्युट और 'टाप्' प्रत्यय लगा देने से वेदना शब्द बनता है।

विद् + ध् + ल्युट + टाप् = वेदना

इस 'वेदना' शब्द के पर्व 'सम्' उपसर्ग लगाने से 'सवेदना' शब्द बना है। 'सम्' का अर्थ होता हैसम्यक रूप से, समान रूप से अथवा प्रत्यक्ष रूप से। जिस रूप में है, उस रूप से। इस प्रकार संवेदना का व्युत्पत्ति परख अर्थ पीड़ा या ज्ञान की सम्यक रूप से बोध कराने से होता है। 'सवंदना' शब्द में 'सम्' उपसर्ग है। 'सम्' उपसर्ग जुड़ने पर संवेद 'संवेदन' और संवेदना' शब्द बनते हैं। जिसका सामान्य अर्थ क्रमश: है अनुभव या वेदना, अनुभव या प्रतीत करना और सहानुभुति।

"साधारणत: संवदेना या संवेदना शब्द का अर्थ होता हैं अनुभव करना, सुख-दु:ख आदि की प्रतीत करना ज्ञान अथवा अनुभूति विदित होना। संवेदना शब्द के मूल में श्वेद' शब्द है। वेद से वेदना और संवेदना शब्द बने हैं। हिन्दी में यह शब्द प्राय: सहृदयता, सहानुभूति (सह + अनुभूति) के यथार्थ के रूप में ही प्रचलित है ।"

अंग्रेजी में संवेदन' के करीब पड़ने वाला शब्द है संसेशन (SENSATION), फिलिंग (FEELING), सेंसिटिव (SENSITIVE)। अंग्रेजी पर्याय के अनुसार 'संवेदना' शब्द के अतर्गत इन्द्रियानुभव भागनुभव सहानुभूति, अनुभव प्राप्ति की प्रक्रिया आदि का समाहार हो जाता है।

साहित्य में इस शब्द का प्रयोग इस सीमित अर्थ में नहीं किया गया है। विशेषत: जब हम मानवीय संवेदना की बात करते हैं तो उसका आशय मात्र ज्ञानेन्द्रियाँ को अनुभव न रहकर मानव मन की अतल गहराइयों में छिपी करूणा, दया एवं सहानुभूति की उदात्त वृत्तियों तक हो जाता है। इतने व्यापक अर्थ में संवेदना 'अनुभूति' का भी व्यंजक है।

समग्रत: संवदेना का अर्थ हुआ-वस्तुबोध की प्रक्रिया में मस्थिष्क की विशिष्ट उत्तेजना की भाँति वि हवल हृदय से नि:सृत विशिष्ट अर्थ-दृष्टि। किसी के प्रति उपजी करुणा या दु:ख को देखकर स्वयं भी वैसा ही अनुभव करना संवेदना है। आधुनिक साहित्य संज्ञा कोश (गुजराती) में उसे अन्त:क्षेप (EMPTHY)

टिप्पणी

'सम-संवेदना' कहा गया है। भाषा, भाव और प्रेरणा तीनों ही प्रत्येक काल में संवेदना को नई अर्थवाता प्रदान करते हैं। इसी तरह संवदेना का मूल अर्थ हुआ अनुभूति करना, सहृदयता, सहानुभूति, करुणा, सम-संवेदना रूप में अभिव्यक्त करना, इन्द्रियानुभव आदि संवेदना के अर्थ की पुष्टि करते हैं।

संवेदना का कोशगत अर्थ - श्संवेदना' का शाब्दिक अर्थ को जानने के पश्चात् अब हमें संवेदना के कोशगत अर्थ को जानना आवश्यक है।

1. **हिन्दी-संस्कृतकोश के अनुसार** -
   "संवदेनम् अनुभवः सुख-दुःखादि प्रतीति ।"
2. **दिनमान हिंदी शब्द कोश के अनुसार**
   "संवेदना का अर्थ अनुभव, अनुभूति है।"
3. **संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर के अनुसार**
   "संवेदना अर्थात् सम-वेदना का द्योतक हैष
4. **नालंदा विशाल शब्द सागर के अनुसार**
   'मन में होने वाले शोध या अनुभव और किसी की प्रकट में देखकर होने वाला दःख सहानुभूति।'
5. **गुजराती के बहुचर्चित ग्रंथ भगवद्रोमंडल के अनुसार**
   संवेदना जानना अनुभवजन्य, इंद्रियों के माध्यम से ज्ञान-जानकारी वहीं संवदेना-लगाव आंतर चेतना उर्मि ।"
6. **शब्दार्थ विचारकोश के अनुसार**
   गुण, प्रवृत्ति स्वभाव आदि की पारस्परिक समानता के अवसर पर हृदय में या मनुष्य के मन में वैसा ही वेदना अभुभूति होती है जैसी वेदना या अनुभूति अपने किसी आत्मीय व्यक्ति को होती है।"
7. **मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार**
   आजतक सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है। साहित्य में इसका प्रयोग स्नायायक' संवदेनाओं की अपेक्षा मनोगत संवेदना के लिए ही अधिक होता है ... संवेदशील व्यक्ति दूसरे किसी भी व्यक्ति के सुख-दुःख को समझकर उसमें अपना तादात्मय स्थापित कर लेता है ।"

   संवेदना की परिभाषा विद्वानों ने अपने-अपने मत के अनुसार दिया है।

   डॉ. रामदरश मिश्र ने संवेदना को इस प्रकार विश्लेषित किया है "मानवीय संवदेनाएँ सामान्यतः एक सी होती हुई भी वैशिष्ट्य धारण करती है। संवेदना के इस वैशिष्ट्य का अपने आप में व्याख्येम नहीं हो सकता, वह अनुभव कराया जा सकता है विशिष्ट परिवेशों के माध्यम से।

   डॉ. राजेन्द्रकुमार के अनुसार "संवदेनाश' विशुद्ध ऐंद्रिक संवेदना का तात्पर्य नहीं है। (हालांकि ऐद्रिक संवेदना के प्रत्यक्ष अथवा सहयोग का आत्यंतिक निषेध नहीं उसमें नहीं है) ऐंद्रिक संवदेना बाह्य यथार्थ के अनुभव के ढल जाना और फिर किसी बृहतर, किन्तु सूक्ष्म अंतर्बोध या कि भाव दृष्टि से उसका संयोजन हाना इस पूरी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जो चीज उभरती है, वस्तुतः उसी को संवेदना का नाम दिया जाना चाहिए।

टिप्पणी

निर्मल वर्मा के अनुसार "कला का सामना करते हुए हम एक ऐसी दुनिया का सामना करते हैं, जो हमारी रोजमर्रा की दुनिया से मिलती-जुलती हुई हू-ब-हू बिल्कुल वैसी नहीं होती यह सपने की तरह चेतन जिंदगी के अंग होते हैं, जीती-जागती दुनिया से अलग होती है।"

- इनके विचारों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिमा।" J जोशी की ये आत्मा स्वीकृतियाँ ढंग से इसकी ओर ले जाती हैं कि वे अपनी संवेदनाओं का संसार अपने आसपास अवलोकित दुनिया से खींचकर स्वप्न की तरह रचते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, "संवेदना का अर्थ दु:खात्मक अनुभूति ही है, उसमं भी दु:खानुभूति से इसका गहरा संबंध है। संवेदना शब्द अपने वास्तविक या अवास्तविक दु:ख पर कष्टानुभव के अर्थ में आया है। मतलब यह है कि अपनी किसी स्थिति को लेकर दु:ख का अनुभव करना ही संवेदना है।' शुक्लजी ने केवल दु:ख के संदर्भ में ही इसे अनुभूतिपरक माना है। अर्थात् दु:ख को ही संवेदना कहा गया है।।

मुक्तिबोध ने संवेदना का इस प्रकार समझया है "संवेदना एक आंतरिक तत्व है जिसमें भाव, संवेग, मनोवृत्तियाँ, प्रछन्न विचारों और अवधारणाओं का संयमित आवेग रहता है।"

डॉ. देवीप्रसाद गुप्त के अनुसार "साहित्यकार की चेतनानुभूति की उस मनोदशा अवस्था को संवदेना कहते हैं जो उस सृजन की प्रेरणा, रचना-विधान की क्षमता एवं लोकजीवन के प्रति आस्था करती है।"

डॉ. ज्योति शर्मा के अनुसार "टूटते परिवार, घर से अलगाव, घर से छूटकारा पाने का प्रयत्न, स्त्री-पुरुष का अजीब से संबंध और असुरक्षा का भाव, अपनी अस्मिता की खोज, कुंठित व्यक्तित्व आदि हिमा।" के साहित्य में सूक्षम अभिव्यक्ति के रूप में चित्रित हुए हैं, यही संवेदना है।"

डॉ. रेखा शर्मा के अनुसार "एक निश्चित साँचे में ढले हुए निश्चित गुण-अवगुण लिए हुए इस वर्ग के सारे पात्र कोंवटन नुमा होते हैं। निर्मल उन पात्रों से यथार्थों से खुद जूझत हैं। वे उन पात्रों से सृष्टा है और उन स्थितियों के दृष्टा मात्र न होकर उनके भोक्ता है। ये उन सारी स्थितियों में से खुद गुजरते हैं और इसलिए इनमें उनके कथा-साहित्य में घटनाएँ नहीं, बल्कि विविध संवदेनाएँ मिलती हैं।"

संवेदना के उपर्युक्त विवेचन से अर्थगत गहराई का ज्ञान होता है, लेकिन ऐसा एक भी मत नहीं मिला है जिसे एक मात्र रूप में मानकर चलना संभव है। आज के साहित्य में जटिल परिवेश तथा परिवर्तनशाली संदर्भो के माध्यम से लेखक या कवि अपने विभिन्न विचारों, कोणों से मानवीय संवेदना का प्रस्तुत करने में व्यस्त है। तभी इस माध्यम से ही संवेदना के विभिन्न एवं वास्तविक स्वरूप को समझा जा सकता हैं सामान्यत: संवेदना से मेरा यह अभिप्राय है कि "संवेदना वह अनुभूति प्रवणता है, जो अति सूक्ष्म भावों को ग्रहण करके उन भावों को महसूस करके प्रतीति के रूप से जो भाव प्रकट होते हैं उनको ही संवेदना कह सकता है। फिर यह भाव सुखद या दुखद भी हो सकता है। कथा-साहित्य में तो यही भाव किसी-न-किसी रूप में उभरकर सामने आता है। ज्यादातर साहित्यकार अपने युग के यथार्थ और अपनी संवेदना को मिलाकर, मानवीय संवेदा में ढलकर नव्यरूप में प्रकट करता है।

इस प्रकार यह कह सकते हैं कि उपर्युक्त सभी विद्वानों में एकमत नहीं है। समग्र रूप से कथा-साहित्य के संबंध में कहा जा सकता है कि इसमें मानव मात्र की आशाओं-निराशाओं,

टिप्पणी

सुख-दु:ख, अपेक्षाओं, मान-अपमानों, राग-द्वेष, प्रेम-घृणा, उत्साह कुंठा आदि के साथ-साथ सामाजिक विषमताओं, रूढ़ियों, परंपराओं में जकड़ा मजबूर मनुष्य और उसकी टूटती-बिखरती आशा, मध्यवर्गीय तनाव, घुटन तथा अजनबीपन आदि की सोद्देश्य अनुभूति करा देना एवं मनुष्य को मनुष्यत्व की पहचान करा देना वास्तविक अर्थ में संवदेना है।

3.3 संवेदना की अवधारणा

साहित्य का संबंध मूलत: मानव ह्रदय से हैं वह रचनाकार के ह्रदय से निकलकर आस्वादक के ह्रदय तक पहुँचता है। ह्रदय से ह्रदय तक की इस यात्रा में मुख्य भूमिका संवदेना की है। संवेदना की अवध ारणा के कई आयाम है। अनेक शब्दों के माध्यम से संवेदना की व्यापकता और विविधता प्रमाणित करने का प्रयास किया गया। नि:संदेह मानव एक हैं हम सब विकासशील जीव तत्व की बात करते हैं, तब परिवर्तन के सिद्धांत को भी मान लेते हैं। चेतना स्वयं विकासशील है। संवेदना वह साधन है, जिसके सहारे जीव व्यष्टि से इतर सभी से संबंध जोड़ती है-वह संबंध एक साथ ही एकता का भी है और भिन्नता का भी, क्योंकि उसके सहारे जहाँ व्यष्टि अपने इतर जगत् को पहचानती है, वहाँ उसके अपने को अलग करती है।

प्रारम्भ काल से लेकर आज तक यह संपूर्ण समाज जिस आधार पर टिका हुआ है, वह संवेदना ही है। बिना इस अनिवार्य मूलाधार के समाज उस तरह सुंगठित नहीं हो सकता था जैसा कि है या मूल बिन्दु अर्थात् अपने स्वरूप के पश्चात् जिस स्वरूप में रूपांतरित या पर्यवसित हुआ। दूसरी ओर महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि बिना इस अनिवार्य मूलाधार के यह समाज शायद मानवीय जैसे विशेषण भी ग्रहण न कर सकता। साहित्य की यही सार्थकता है कि वह हमारे संवदेना का विस्तार करता है। एक क्षण भी हमारे अस्तित्व का ऐसा नहीं जब हमारी इन्द्रियाँ मन और बुद्धि कसी न किसी संवेदन की गिरफ्त में नहीं आती, संवेदना साहित्य सृजन का मूलाधार है।

मानव इस सृष्टि का सबसे संवेदनशील प्राणी है। दूसरे जीवों से जड़ परिस्थिति से उसकी संवेदना प्रतिक्रिया करती है। इतना ही नहीं बल्कि उन प्रतिक्रियाओं का मूल्यांकन भी करती है। जीवन अपने को परिस्थिति के अनुकूल बनाता है। मनुष्य परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाने का चेतन और अवचेतन प्रयत्न करता है। व्यक्ति की संवेदना विस्तार करती है अर्थात् ज्यों-ज्यों जगत् से उसके संबंध नये-नये क्षेत्रों में प्रवेश कर जाते हैं, त्यों-त्यों उसका विवेक विकसित होता जाता है और नारी संवेदना के साथ एक अनिवार्य नैतिक बोध भी जुड जाता है। संवेदना की इसी अनूभूति के कारण मानव सृष्टि का सबसे उत्कृष्ट और श्रेष्ट जीव है।

संवेदनहीन साहित्य का कोई मूल्य नहीं होता चाहे उसमें दर्शन की नई-नई भंगिमा क्यों न हो। बुद्धि, दर्शन, चिंतन, ज्ञान, विज्ञान सबको पहले जीवन में आत्मसात होना पड़ता है। आत्मसात होकर मानव-संवेदना का अंग बनना पड़ता है, तभी साहित्य में सत्यम शिवम् और सुन्दरम् की भावना प्रस्फुटित हो सकती है। संवदेनशील कलाकार जीवन की चुनी हुई घटनाओं को लेकर भाषिक संरचना द्वारा अभिनव कला-सृष्टि करता है क्योंकि प्रेम के शब्द 'संवेदना' ही मानव के अंतरमन की सर्वाधिक पवित्र भावना है, सहानुभूति के दो शब्द किसी के दु:ख कष्ट का निवारण भले ही न कर सके, उसके दिल को तस्सली तो दे ही सकता है। निश्चय ही संवेदना हमें आत्मीयता के प्रगाढ़ बंधन में बाँधती है। यह हमें कोमल अनुभूतियों के उस 'भाव लोक' में ले जाती है, जहाँ कृतज्ञता की मौन स्वीकृति है। दूसरों के सुख-दु:ख को कोमलता से महसूस करने वाला ह्रदय ही न रहा तो मनुष्य के पास मनुष्य के लिए बचेगा क्या।"

टिप्पणी

साहित्य की रचना अनवरत गति से विभिन्न रूपों में होती है। 'संवेदना' का सर्वाधिक प्रभावशाली रूप अवतरित करुणा में होता है। साहित्य की उपयोगिता एवं उसकी सार्थकता ही हमारे संवेदना का विकास करती है। संवेदना एक क्षण भी ऐसा व्यक्ति को नहीं करता होगा, जिसमें उनकी बुद्धि कसी संवेदना की अनुभूति में न हो/

साहित्य का संबंध मानव ह्रदय से हैं मानव से जुड़ी रचना किसी साहित्यिक आंदोलन का सहारा लिए बिना ही सफल होती है और कलातीत होती है। वाल्मीकि का श्रामायण' किसी आंदोलन की फलश्रुति नहीं है वह तो क्रौंचवध की संवेदना से द्रवित और ह्रदय की संवेदना के रूप में निसृत हुई है। निषाद का आतिथ्य स्वीकारते राम किसी राजनीतिक आंदोलन के राम नहीं थे, और वन में परित्यक्त सीता किसी 'आँसूढार लेखनी' की ऊपज नहीं थी। वाल्मीकि रामायण' लेकर शायद उस युग में किसी चर्चा का आयोजन नहीं हुआ होगा, परन्तु आज भी वह कृति जीवित है, क्योंकि वह संपूर्ण रूप से मानवीय संवदेना की कथा है/

संवेदना के विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी लिखते हैं "यह ठीक है कि भाषा का मुख्य काम विचारों का संप्रेषण ही है। परन्तु भाषा द्वारा दो प्रकार के संप्रेषण है, एक तो सूचनात्मक संप्रेषण हैं जिसमें हम श्रोता के चित् में किसी बात की सूचना का संचार करते हैं और दूसरा रचनात्मक संप्रेषण है जो श्रोता के चित् में प्रगाढ़ अनुभूति द्वारा जगायी गयी संवेदनाओं को मूर्त और अनुभव योग बनाता है वस्तुतः इस दूसरी श्रेणी के संप्रेषण को ही सभी अर्थ में संप्रेषण कहा जाता है/"

साहित्य में संवदेना शब्द और अर्थ दोनों ही सहायता से उभरती है। संवेदना मानव मन की उपज हैं वह मानव मन के केन्द्र में विद्यमान होती है। साहित्य के प्रत्येक विधा में संवेदना का मुख्य आधार रूप है। आज के रचनाकार की संवेदना भी परिस्थिति, अवस्था, सामाजिक स्तर, मानव मन की गहराइयों, चेतना, विश्वास, धारणा आदि संवेदना की व्यापकता प्रमाणित करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि हम जिस सामाजिक अवस्था से गुजर रहे हैं, उसमें प्रमुख बात मानवीय आपसी संबंधों को नये परिवेश में समझने और संवेदना को जानने की है/

3.4 संवेदना के विविध रूप और आधे-अधूरे

'आधे-अधूरे' नाटक में भी उपर्युक्त वर्णित संवेदना के विविध रूप देखने को मिलता हैं। मूलतः इस नाटक में मोहन राकेश ने मध्यवर्गीय समाज में पनप रही विधि संवेदनाओं को उजागर करने का प्रयास किया है, जिसे एक एक करके निम्नलिखित प्रस्तुत किया जा रहा है

व्यक्ति और समाज संबंधी संवेदना - व्यक्ति समाज का एक अंग मात्र है। समाज के बाहर व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। उसे समाज के नियमों, मूल्यों एवं आदर्शों के अनुकूल ही चलना पड़ता है। व्यक्ति कभी-कभी अपनी आर्थिक स्थिति के कारण समाज के अनुकूल नहीं हो पाता हैं इस स्थिति को सुधारने के लिए वे बहुत प्रयास भी करता है। मध्यवर्गीय परिवार में आर्थिक स्थिति के कारण बहुत सारी विडम्बनायें देखने को मिलता है। इस विडंबनाओं की पूर्ति करने के लिए वे इधर-उधर भटकते रहते हैं। 'आधे-अधूरे' नाटक में व्यक्ति एवं समाज संबंधी संवेदना का खनन आर्थिक परिस्थिति के कारण दिखाई देता है। यह नाषक शहरों में बसने वाले मध्यवर्गीय परिवार की कथा हैं ये वर्ग हमेशा उच्चवर्ग की भाँति सुखी जीवन व्यतीत करना चाहता है लेकिन परिस्थितियाँ उनकी साथ नहीं देती है। इस नाटक में हर एक पात्र केवल अपनी खुशी को तलाशने की कोशिश करता है। अपनों से बड़े का सम्मान कैसे करे यह भी दिखाई नहीं देता। बड़ी लड़की और एक पुरूष के बीच हो रहे वार्तालाप से यह सिद्ध होता है कि बड़ी लड़की अपनी ही सुख की बात कर रही है।

टिप्पणी

जैसे –

श्बड़ी लड़की : (तुनककर) तो जवाब क्या तभी होता अगगर मैं कहती कि मैं खुश नहीं हूँ, बहुत दुखी

पुरुष एक :आदमी जो जवाब दे, वह उसके चेहरे से भी झलकना चाहिए।

बड़ी लड़की : मेरे चेहरे से क्या झलकता है? कि मुझे तपेदिक हो गया ? मैं घुल-घुल कर मरी जा रही

बड़ी लड़की : तो और क्या-क्या होता है ? आँख से दिखाई देना बंद हो जाता है ? नाक-कान तिरछे हो जाते हैं? मेरे चेहरे से क्या नजर आता है आपको ।"

भमंडलीकरण के इस दौर में मध्यवर्गीय समाज को सबसे अधिक प्रभावित किया है। आज के लोगों में दिखावापन की भावना घर कर गयी है। वह हमेशा दिखावेपन के कारण ऊपर उठ नहीं पाते हैं। आधे-अधरे' नाटक के पात्र दिल्ली जैसे महानगरों में रहते हैं। दिल्ली की परिवेश, रहन-सहन में अपने आप को ढालना चाहते हैं। किन्तु आर्थिक परिस्थिति उनका साथ नहीं देती हैं। इस नाटक के पात्र केवल अपनी स्थिति सुधारने. अपनी पहचान बनाने, अपनी खुशी को तलाशने की कोशिश करता हैं और केवल अपनी-अपनी के चक्कर में वह परिवार से भी कटता चला जाता है। घर परिवार में भी एकता नहीं है तो समाज की कल्पना करना बेकार है। इस नाटक की प्रमुख पात्र सावित्री भी केवल अपनी घर की स्थिति को सुधारने की कोशिश करती है किन्तु थक हारकर अंत में अपनी खुशी ही तलाशती है। वह भी चाहती है कि इन विसंगतियों से हटकर नया जीवन जीने की कोशिश करे। सावित्री पुरुष तीन के साथ आगे बढ़ना चाहती है। लेकिन वह उसे मना कर देती है। निम्नलिखित उद्धृत इन पंक्तियों में देखा जा सकता है कि यहाँ केवल सावित्री अपने ही सुख चाहती है। वह पुरुष तीन के साथ फिर से नई जिंदगी जीना चाहती है। वह कहती है

"स्त्री : (उसके हाथ पर हाथ रखकर)

पुरुष तीन: (हाथ सहलाता) क्या बात है, कुकू?

स्त्री : मैं वहाँ पहुँच गई हूँ पहुँचने से डरती रही हूँ जिंदगी भर।

मुझे आज लगता है कि .....

पुरुष तीन : (हाथ पर हलकी थपकियाँ देता) परेशान नहीं होते इस तरह।

स्त्री : मैं सच कह रही है। आज अगर तुम मुझसे कहो कि ..... ।"

वर्तमान समाज में बदलने परिवर्तन ने मनुष्य के रहन-सहन, तौर-तरीके में बदलाव लाया है। मनुष्य में यह बदलाव आधुनिकीकरण के कारण हो रहा है। आज लोगों को भी यह लगता है कि आधुनिक होना ही उनकी पहचान है और आधुनिक होने के चक्कर में वे परिवार, समाज से कटते जा रहे हैं। इस भाग दौड़ की जिंदगी में अपनों के होने का महत्त्व नहीं समझते हैं। इनके लिए रिश्ते भी बोझ ही लगता है। इस नाटक में सावित्री अपने पति महेंद्र को किसी लायक नहीं समझती है, उसे लगता है कि बिना 'हाड़-मांस' का पुलता मात्र है। सावित्री पुरुष चार से अपने पति महेंद्र के बारे में कहती है कि

"*स्त्री:* मत कहिए मुझे महेंद्र की पत्नी ..... बिना हाड़-माँस का पुतला है वो ....

पुरुष चार : (उठता हुआ) बिना हाड़-माँस का पुलता, या जो भी कह लो तुम उसे पर मेरी नजर में वह हर आदमी जैसा एक आदमी है सिर्फ इतनी ही कमी है। उसमें।

स्त्री : यह आप मुझे बता रहे हैं? जिसने बाईस साल साथ जीकर जाना है उस आदमी को ?

पुरुष चार : जिया जरूर है तुमने उसके साथ ..... जाना भी है उसे कुछ हद तक लेकिन .....

टिप्पणी

स्त्री :(हताश से सिर हिलाती) ओफ्फोह! ओफ्फोह! ओफ्फोह!

व्यक्ति से ही समाज का निर्माण होता है। पर इस नाटक में एक व्यक्ति के प्रति दूसरे व्यक्ति में कोई मेल या रिश्तों में अपनापन दिखाई नहीं देता हैं। हर एक पात्र अपने-आप को बेहतर दिखाने का प्रयास करता है। रिश्तों में वह एहसास, लगाव धीरे-धीरे खत्म होते नजर आ रहे हैं। परिवार में साथ रहते हुए भी आधे-अधूरे नाटक के सभी पात्र अकेला महसूस करता है। सावित्री और बड़ी लड़की के बीच हुए वार्तालाप को देखकर अनुमान लगा सकते हैं कि पति-पत्नी साथ हुए भी केवल अपनी स्वार्थ के बारे में सोंचते हैं

"*बड़ीलड़की:* दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, एक हवा में साँस ले, उतना ही ज्यादा अपने को एक-दूसरे से अजनबी महसूस करें?

स्त्री :तुम दोनों ऐसा महसूस करते हो ?

बड़ी लड़की : कम से कम अपने लिए तो मैं कह ही सकती हूँ।

स्त्री : (पल-भर उसे देखती रहती) तू बैठकर क्यों नहीं बात करती ?

बड़ी लड़की : मैं ठीक हूँ इसी तरह।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधे-अधूरे नाटक में केवल स्वयं की अनुभूतियाँ, अस्तित्व की पहचान और आगे बढ़ने की लालसा दिखाई देती है। इस नाटक के सभी पात्र केवल स्वयं की पीड़ा को व्यक्त करते हैं। यद्यपि इस कड़ी में वे यह भूल जाते हैं कि वे सभी एक परिवार के हिस्से हैं और आपसी मनमुटाव के कारण वे सभी स्वयं अपनी ही क्षति कर रहे हैं। व्यक्ति का इस प्रकार आत्मकेंद्रित हो जाना उसे न केवल अपने परिवार से काट देता है, बल्कि उसे समाज से भी काट देता है। लेखक समाज के सभी पात्रों की संवेदना व्यक्त करने का भरसक प्रयास किये हैं।

नई और पुरानी पीढ़ी : विचार वैभिन्नता-मानव-मानव में विचार वैभिन्नता हमें पहले से ही दिखाई दे रही है। पीढ़ियों में यह वैभिन्नता विभिन्न परिस्थितियाँ जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि कारणों से दिखाई देती है। मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' नाटक में नई पीढ़ी एवं पुरानी पीढ़ी में विचार वैभिन्नता देखने को मिलता हैं यह नाटक आधुनिक समय के महानगरीय समाज में व्यवस्थित मध्यवर्गीय परिवार की कथा है। इस नाटक में नई पीढ़ी के रूप में उभरकर आने वाले पात्रों मे छोटी लड़की किन्नी, बड़ी लड़की बिन्नी एवं लड़का है। तथा पुरानी पीढ़ी के पुरुष एक, पुरुष तीन, पुरुष चार एवं सावित्री है। पात्रों में नई एवं पुरानी पीढ़ी के बीच द्वंद्व देखने को मिलता है। इस नाटक की प्रमुख पात्र सावित्री घर की बागडोर संभालती हैं वह चाहती है। कि हमेशा घर में सुख-शांति बनी रहे और इस सुख-शांति के लिए वह प्रयत्न करती हैं वह आवश्यकता से अधिक पैसे खर्च नहीं करना चाहती है क्योंकि उसे पता है कि घर केवल उसी के कमाई से चलती है। वहीं दूसरी ओर लड़का निठल्ले की तरह इधर-उधर घूमता रहता है। उसे घर की स्थिति कैसे सुधारी जाय? इससे कोई मतलब नहीं होता है। वह घर की चीजें भी इधर-उधर ले जा कर बर्बाद कर देता है। स्त्री एवं लड़के के बीच का संवाद उदाहरण के लिए निम्न उद्धृत है

"*स्त्री:*दिलचस्पी तो सिर्फ तीन चीजों में है-दिन-भर ऊँघने में, तस्वीर काटने में और ..... घर की चीज वह चीज ले जाकर .....

लड़का : (कड़वी नजर से उसे देखता) इसे घर कहती हो तुम?

स्त्री : तो इसे क्या समझकर रखा है यहाँ?

टिप्पणी

लड़का : मैं इसे ..... ।

नई पीढ़ी की सोच में परिवर्तन सामाजिक ढाँचे के कारण हो रहे हैं समाज में जो वर्ग है उसके पास सुख-सुविधा के लिए हर चीजे विद्यमान होती है। छोटी लड़की किन्नी की सहेलियों के पास सब कुछ है। लेकिन वे चीजे किन्नी के पास नहीं हैं किन्नी यह नहीं समझती कि उसकी माँ कैसे घर चला रही है? घर की आर्थिक स्थिति किस तरह की है? उसने एक बार ठान लिया है तो उसे चाहिए। छोटी लड़की और माँ के बीच पीढ़ियों में अंतर होने के कारण हो रहे द्वंद्व के उदाहरण निम्नलिखित हैं

छोटी लड़की : रोज कहती हो, बाद में करना! आज भी मुझे रीले लाकर न दी तो मैं स्कूल नहीं जाऊँगी कल से। मिस ने सारी क्लास के सामने मुझसे कहा कि .....

स्त्री : तु और तेरी मिस! रोग लगा रखा है जान को।

छोटी लड़की : तो उठा लो मुझे स्कूल से। जैसे शोकी मारा-मारा फिरता है सारा दिन, मैं भी फिरती रहा करूंगी ।"

इस तरह की घटना के माध्यम में पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी का द्वंद्व साफ दिखाई पड़ता है। यह द्वंद्व आधुनिक युग की उपज हैं बच्चे यह नहीं देखते कि घर-परिवार वालों के पास पैसे हैं या नहीं। वे एक जिद में अड जाते हैं। उन्हें हर एक सुख-सुविधा चाहिए जो अन्य लोगों को मिलती हैं वही पुरानी पीढ़ी हमेशा आगे-पीछे दोनों के बारे में सोचती है। किस तरह घर चलाना है और कैसे उसमें से भी पैसे बचाना है ताकि कोई तकलीफ हो तो किसी के सामने हाथ न फैलाना पड़े। मोहन राकेश इस नाटक के माध्यम में वर्तमान समाज में चल रहे नई और पुरानी पीढ़ी के द्वंद्व को दिखाने का प्रयास किये हैं और वे सफल भी रहे।

पारिवारिक संबंधों में विघटन -आज मानवीय मूल्यों में तीव्र गति से परिवर्तन होता जा रहा है। अपनी सुविधा के लिए आज के मानव विरासत में मिले मूल्यों को व्यक्तिवादी बना दिया, जिससे न तो व्यक्ति का व्यक्ति से, व्यक्ति का समाज से, समुदाय से और राष्ट्र से संबंध रह गया है और न पारिवारिक मूल्यों से ही। आज का मानव भौगोलिक इकाई पर भौतिकतावादी संदर्भ को ओढ़ता हुआ समृद्धि को प्राप्त कर लेना चाहता है फिर चाहे उसके लिए उसे अपने परिवार, समाज या राष्ट्र का ही बलिदान क्यों न करना पड़े। बदलते मूल्यों के चक्र में दाम्पत्य संबंध, सामाजिक संबंध और अनेक पारिवारिक संबंध टूट ही नही गये बल्कि भौतिकतावादी दौड़ ने उन्हें ध्वस्त कर दिया है। आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक जीवन के प्रचलित मानदंड और यहाँ तक कि व्यक्ति के वैयक्तिक जीवन में भी परिवर्तन ला दिया है। औद्योगिकीकरण और आधुनिकीकरण के फलस्वरूप परिवारों का परम्परागत मूल्य तेजी से टूट रहा है। नवीन आवश्यकताओं में वृद्धि होने से जीवन में पुरानी व्यवस्था अपर्याप्त प्रतीत होने लगी है। आज धनोपार्जन और परिवार की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पति-पत्नी दोनों घर से बाहर काम करने जा रहे हैं। उनका जीवन इतना अधिक व्यस्त हो गया है कि बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यो पर अपना ध्यान ही नहीं दे पाते। जीवन की व्यस्तता पति-पत्नी के मधुर संबधों में एक तनाव उत्पन्न करती हैं वे अपना आर्थिक विकास में रत रहते हैं और एक ही परिवार में रहते हुए भी एक दूसरे की परिस्थिति का बोध, सहानुभूति का बोध, आत्मीयता का बोध आदि सब धीरे-धीरे समाप्त कर देते हैं। समाज के विभिन्न कारणों ने आज पारिवारिक विघटन में मुख्य भूमिका निभाएँ हैं जिन्हें मशीनीकरण औद्योगिकीकरण तथा विदेशी संस्कृतिकरण का नाम दिया जा सकता है। बहुत ज्यादा बदलाव पारिवारिक संबंधों में ही हुआ है। वर्तमान में संबंधों में विघटन में मूल्यगत परिवेश का विशेष योग है।

टिप्पणी

मोहन राकेश के बहुचर्चित नाटक आधे-अधूरे' में वर्तमान युग के टूटते हुए संबंधों, मध्यवर्गीय परिवार के कलापूर्ण वातावरण, विघटन, संत्रास व्यक्ति के 'आधे-अधूरे' व्यक्तिव तथा अस्तित्व का वथा-तथ्यात्मक सजीव चित्रण हुआ है। इस नाटक में परिवार के भीतर का संघर्ष बाह्य संबंधों के परिप्रेक्ष्य में विकसित हुआ है। स्त्री अपनी आर्थिक आत्मनिर्भरता का उपयोग अपने बाह्य संपर्कों के संबंध में पति की ओर से उठाई गई आपत्तियों की अवहेलना करने के लिए करती है। लेकिन वही बाह्य संपर्क उसे कितना हीन बना देता है यह बात सिंहानियाँ और जगमोहन ने साथ उसके संबंधों में स्पष्ट दिखाई देती हैं लड़के की नौकरी के लिए सिंहानियाँ को चोरी करनी पड़ती है फिर भी उससे कुछ सफलता हासिल नहीं हो पाता है। परिवार की स्थिति बहुत दयनीय होती है। किसी तरह सावित्रि इस पूरे परिवार को चलाती है। परिवार के सभी सदस्यों में हमेशा ताना-बाना सुनने के बाद वह घर छोड़ने का निश्चय कर लेती है। वह जगमोहन के पास सहारा लेने जाती है लेकिन वहाँ भी प्रयास व्यर्थ होकर रह जाती है। मोहन राकेश के आज के पुरुषों द्वारा वेबशी का लाभ लेने की स्थिति में परिवार को विखंडित होते हुए देखा है। जिससे निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है

"पुरुष दो याद है कुछ बात की थी तुमने एक बार अपनी कजिन के लिए कहा था नहीं, वह तो मिसेज मल्होत्रा ने कहा था तुमने किसके लिए कहा था।

स्त्री (लड़के की तरफ देखती) इसके लिए पुरुष दो - हूँ, हूँ क्या पास किया है इसने पुरुष दो ..... हाँ हाँ क्यों नही परे तुम तो, आओगी ही, तुम्ही को बता दूँगा। ..... तुम आओगी ही घर पर दफ्तर की भी कुछ बाते करनी है।"

इस कृति के हर कोने में तनाव और टकराव उभरकर सामने आता है, आंतरिक उथल-पुथल और बाह्य संघर्ष का क्रम आरंभ से अंत तक एक साथ बना रहा है। परस्पर टकराने वाले पात्र टकराव के विषय और उसके रंग एक के बाद एक बदलते गये हैं। लेकिन उन सब मे से होती हुई दाम्पत्य के इंद्र की अंतर्धारा निरंतर प्रवाहित होती रही है जिससे तनाव और टकराव की विविधता के हाथों संघर्ष की सूत्र बद्धता खंडित नहीं हो सकी है। इसके पारिवारिक जीवन की विफलता के संबंध में कुछ सामान्य निष्कर्ष भले ही निकाल लिया जाए, इसके आधार पर एक संस्था के रूप में परिवार को हेय नहीं ठहराया जा सकता। यह तनाव केवल संबंधों की कहानी नहीं विशेष व्यक्तियों और परिस्थितियों की कथा है। 'आधे-अधूरे' नाटक के संदर्भ में संबंधों में आने वाले तनाव और टूटन के कारणों का उल्लेख करते हुए कुछ इस प्रकार की बातें प्रसिद्ध रंगशिल्पी ओम् शिवपुरी ने लिखा है "महेंद्रनाथ सावित्री से बहुत प्रेम करता हैं सावित्री भी उसे चाहती रही होगी, लेकिन ब्याह के बाद महेंद्रनाथ को बहुत निकट जानने पर उसे वितृष्णा होने लगी क्योंकि जीवन से सावित्री की अपेक्षाएँ बहुमुखी और अनंत है। अब महेंद्रनाथ की बेकारी बहुत कटु हो गई है। एक ओर घर को चलाने का असह्य बोझ है, तो दूसरी ओर जिंदगी में कुछ भी हासिल न कर पाने की तीखी चोट ..... स्पष्ट है कि अर्थ और काम ने मिलकर ही आज के व्यक्ति को इतना विकल, इतना कटु और इस सीमा तक विद्रोही बना दिया है कि वह किसी अनजानी पूर्णता के पीछे अंधा-धुंध भाग पड़ने के लिए विवश हो गया है। वह दौड़ भी वह अकेला ही, सब को पीछे छोड़कर यह पछाड़ कर, लगाना चाहता है अत: तनाव और उसके बाद टूटन, पारस्परिक मीलों दूरी अनिवार्य है।

'आधे-अधूरे' नाटक में इन्हीं टूटते संबंधों की कहानी बड़े ही सजीव एवं यथार्थ रंगों-ढंगों में कही गई है। महेंद्र-सावित्री और परिवार एक प्रतीक है, माध्यम है उस सबका जो अनवरत टूटकर बिखर जाना चाहता है। अर्थ और काम-पूर्ति के साधनों के अभाव में आज के मध्य और निम्न मध्य वित्तीय स्थिति वाले घर-परिवारों में घर के पति-पत्नी में रात-दिन चख-चख या खींचा तानी होती रहती है, उसका

टिप्पणी

सीधा प्रभाव घर के बच्चों के मन-मस्तिष्क पर भी पड़ता है। फलत: वे भी उसी प्रकार की कटाव, तनाव और बिखराव लाने वाले प्रवृत्तियों के शिकार और आदि हो जाते हैं।

घर की त्रासदायक हवा' से वे सब अपनी और एक दूसरे के लिए जहरीले हो रहे हैं। बड़ी लडकी मनोज रूपी हमदर्द द्वार को पाते ही बाहर निकल भागी है। लड़का पत्रिकाओं में अभिनेत्रियों की रंगीन तस्वीरें काटता हुआ उस मौके के इंतजार में है, जब वह भी यहाँ से निकल सकेगा। वह बड़ी बहन के प्रेम में विश्वास नहीं करता उसे घर से निकलने का एक जरिया मानता है। छोटी लड़की, पिता, माता, बहन-भाई किसी के प्रति महसूस नहीं करती। अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं की आपूर्ति से बेहद कड़वी होकर वह कैची की तरह जुबान चलाती है और यौन संबंधों में दिलचस्पी लेने लगती है कि जो उसकी आयु से कहीं आगे हैं। उसकी बदमिजाजी दिन पर दिन बढ़ती जाती हैं, क्योंकि पिता की बेकारी, माँ के पुरुष-मित्रों और बड़ी बहन के घर से भाग जाने के कारण उसे बाहरी लोगों की ताना सुनना पडता है। संबंधों में आने वाले तनाव, कटाव, टूटन और बिखराव के मूल में विद्यमान है।

इस नाटक में आर्थिक परिस्थितियाँ बहुत ज्यादा प्रखर हुए है। इस परिवार में अर्थ केवल-सावित्री ही कमाती है। उसी के पैसे से घर की बाकी लोगों की जीवन यापन होती है। सावित्री के पति यानि महेंद्रनाथ निठला घूमता रहता हैं हमेशा कर्ज की आड़ में इधर-उधर भटकता रहता है। पुरुष एक अपने दोस्त जुनेजा से पैसे लिया रहता है। और अपनी पत्नी से कहता है कि

"पुरुष एक फिलहाल उसे देने के लिए पैसे नहीं है, तो कम-से-कम मुँह तो उसे दिखाते रहना चाहिए।

स्त्री-हाँ हाँ दिखा आओ, मुँह जाकर ।"

घर के हर सदस्य एक दूसरे से कटा-कटा रहते हैं। जैसे लगता है किसी को एक दूसरे से कोई मतलब नहीं है। हर एक पात्र एक दूसरे पर जली-खटी बातें सुनाते ही रहते हैं। जिस घर की कहानी इस नाटक में कहीं गई है, उसमें ऊब, घुटन और मानसिक खिंचाव ही नहीं बर्बरता और निशंस्ता का पूर्ण दृश्य भी देखने में आते हैं। बड़ी लड़की पुरुष चार को सब बातें बता देती हैं नाटक का त्रासद प्रभाव इस वास्तविकता में निहित है कि उस परिवार में जीना कठिन है। उससे मुक्ति का कोई भी उपाय नहीं है। स्त्री-पुरुष के संबंध को ठीक करने का भी कोई उपाय नहीं है। स्त्री पुरुष के पारस्परिक संबंध घर को बर्बाद कर देता हैं एक अपनी प्रकृति से विवश होकर लौटता है तो दूसरा इसलिए कि परिस्थिति उसका साथ नहीं देती है। कारण जो भी हो, उसी नरक में जीने के लिए विवश हैं बल्कि अभिशप्त है। जिसे घर कहा जाता है।

चार अलग-अलग पुरुषों से भरे पूरे इस परिवार के संवाद भीतर और बाहर के बहुरंगी संघर्ष के ताने बाने हैं, जिसमें आंतरिक उथल-पुथल, पति-पत्नी, माँ-पुत्र, बाप-बेटी, भाई-बहन और माँ पुत्रों के स्तर पर देखे जा सकते हैं। इन पात्रों के भीतर अनयादित कुछ घुमड़ता रहता है जिसमें परिवार की शालीनता और मर्यादा समाप्त हो जाती है तथा समस्याओं का उद्‌भावन होता है।

आज मनुष्य भौतिक सुविधाओं को ही सब कुछ मान बैठा है और उन्ही के पीछे दौड़ता जा रहा है। उनके दायरे में, अपनी इच्छाओं और आर्थिक दबावों के कारण जहाँ वह अपने-आप को फिट नहीं कर पाता, वहीं वह भाग जाना चाहता है। भागकर वह अपनी ही किसी अन्य पड़ाव की ओर भागता है फिर भागता है और इस प्रकार वह संबंधों से कहीं दूर-दूर पहुँचकर अपने-आपको नितांत अकेला अनुभव करने लगता है। आधे-अधूरे' के परिप्रेक्ष्य में इन्हीं तथ्यों को किरनचंद शर्मा ने अपने लेख एक प्रश्न : दो रूप' में इस प्रकार अभिव्यक्ति किया है - "समझौता न कर सकने की थकान कह सकते हैं, क्योंकि सुविधा का एक रूप प्रत्येक पात्र के पास, कम से कम उस समय तक के लिए है ही,

टिप्पणी

जब तक वह सुविधा के उस रूप की प्राप्ति-अनुभव नहीं कर लेता। और इसलिए उस रूप को ही वह अपने परिवेश में भी 'मिसफिट' पा रहा है। यही कारण है कि

उस परिवेश में जिने भी नये ढाँचे उसे दिखाई देते हैं, वह उनमें से प्रत्येक में उसे फिट करके देखता हुआ चलता है और जब हर जगह 'मिसफिट' पाता है तब एक ऊब, एक उलझन का मात्र वितान तनकर रह जाता है। और फिर वह वितान-तनता इस सीमा तक या कस जाया करता हैं कि उसका अपने ही एक हिस्से से अलग हो जाना प्रायः अनिवार्य हो जाया करता है।' इसको हम मानव-मूल्यों में परिवर्तनों के कारण, संबंधों का अलगाव, तनाव के बाद में टूटन और बिखराव कह सकते हैं। इस सब का निश्चय ही 'आधे-अधूरे' नाटक में बड़ा ही सशक्त रूपायन एवं सजीव चित्रण हुआ है। संबंधों के टूटने की इसी वैयक्तिक समस्या को एक परिवार के माध्यम से नाटककार ने समाजीकरण करके हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

स्त्री-पुरुष संबंध

जीवन के नये परिवर्तनशील मूल्यों ने पुराने व्यक्ति-संबंधों या पारिवारिक मान्यताओं, व्यवस्थाओं को अस्त-व्यस्त तो किया ही है और इसके साथ अनेक प्रकार के अंतविरोधों से भी भर दिया है। आज का जीवन सामूहिकता की परम्परागत परिस्थितियों से पिछड़कर व्यक्ति और उसके अंह पर आकर केंद्रित होकर रह गया हैं व्यक्ति पर केंद्रित, व्यक्तिगत परिवर्तन-चक्र को परिचालित कर रही है। आज स्त्री और पुरुष परस्पर सहयोगी सहकारी न रहकर दो अलग केंद्र, दो अलग छोर-उत्तरी और दक्षिणी धुव्र के रूप में चित्रित किए गए हैं, जिनमें कहीं भी किसी प्रकार का (गुरुत्व) आकर्षण नहीं रह गया है। दोनों की ऋतुएँ अलग हैं और हवाएँ भी अलग-अलग बहने लगी हैं, फिर आंतरिक लगाव कैसे? फिर बाहरी लगाव (दिखावा मात्र) भी क्यों रह जाना चाहिए। तभी तो ध्रुव-पुरुष-महेंद्रनाथ जुनेजा का छोर चुन लेता है और दूसरा ध्रुव-स्त्री-सावित्री फिर जगमोहन के छोर की ओर बढ़ जाना चाहता है। जीवन, घर-परिवार और समाज के भी दो अटल ध्रुव हैं, पर वे एक-दूसरे से दूर-ही-दूर हटते जा रहे हैं। उनकी पारस्परिक चेतना, मूलतः संबंधों की चेतना इस सीमा तक संशयग्रस्त हो चुकी हैं कि उसके कारण चारो ओर विसंगतियाँ ही विसंगतियाँ उभर कर आ रही हैं। व विसंगतियाँ अपने संपर्क में आने वाले अशोक-बिन्नियाँ किन्नियाँ से असवभाविक होकर कोई न कोई तात्कालिक सुविधा-जनक बहाना खोज कर, घुट-घुट कर पयायन कर जाना चाहती है। यही आज के संबंधों की नियति हैं यही आधुनिक युग का समग्र बोध और उसका सार-तत्व है।

इस नाटक में आधुनिक जीवन मूल्य स्त्री-पुरुष के संबंधों पर बुने गये हैं। यह नाटक आज के शहरी क्षेत्र के मध्यवर्गीय पारिवारिक जिंदगी की विसंगति को उभारता है। विभिन्न पात्रों के क्रिया-व्यापर के संबंध में निर्देश देते समय मोहन राकेश ने उसके चरित्र को ध्यान में रखा है। स्त्री अपने भीतर तनाव के बावजूद बाहर से काफी संयत और संधी हुई है। जबकि पुरुष एक बिल्कुल टूट चूका है। इसलिए पुरुष एक ही चेष्टा में अस्तव्यस्त दिखलायी देता है। जब वह फाइलों में व्यस्त होने का बहाना करता है तो फाइलें आलमारी से बाहर गिर जाती हैं जब वह सोफे पर बैठता अखबार पढ़ने का अभिनय करता है तो अखबार उल्टा पकडे. हुए दिखलाई देता है, छोटी लड़की के लिए टोस्ट सेंककर लाता है, वे जले हुए होते हैं। पुरुष एक के समान उसका टूटना अस्तव्यस्तता के रूप में नहीं भावावेश के रूप में व्यक्त होता है इसलिए जहाँ ऊपर से सहज स्वभाव के भीतर से टूटन झलकती है। वहाँ उसके शब्द और क्रिया-व्यापार एक-दूसरे से गुथ जाते हैं। पुरुष दो, लड़का और स्त्री के बीच का यह संवाद निम्नलिखित है

टिप्पणी

"**लड़का** - खान-पान और पहिनावे की विविधता अमेरिकन, जर्मज, रुसी ..... शीत युद्ध हड़ताल, वस्त्र उद्योग ..... डी.ए.।

पुरुष दो-बहुत अच्छी स्मरण शक्ति है लड़के की तो कहने का मतलब था .....

स्त्री-थोड़ा और लीजिए।

पुरुष दो-जरूर ..... किसके लिए क्या करना है।

(लड़के की तरफ देखकर) इसके लिए कुछ न कुछ!

पुरुष दो हाँहाँ जरूर।"

इस प्रकार इस घर के जीवन में नैराश्य और अवसाद की छाया घिरी हुई है पुरुष दो की उक्तियों में उसका लिजलिजा चरित्र अपनी पूरी हास्यास्पदता के साथ व्यक्त हुआ है। स्त्री जितनी चतुराई से विगत संबंधों की आड़ लेकर आत्मीयता के अभिनय का जाल उस पर डालना चाहती है वह भी उतनी ही बारीकी से उसका काट करता है। मोहन राकेश ने निराशा और अवसाद की छाया से ग्रसित इस परिवार को घिरा देखा है। सावित्री का अधूरापन कुछ उसके व्यक्तित्व और कुछ परिस्थितियों का परिणाम है। उसका व्यक्तित्व व्यक्तिगत आक्रामक नारी का है। दूसरी ओर महेंद्रनाथ दब्बू किस्म का आदमी हैं आक्रामक नारी जब प्रतिस्पर्धा करती है तो पुरुष की श्रेष्ठता का स्वीकार नहीं कर पाती। और जब वह उसे प्रतिस्पर्धा से अयोग्य पाती है तो भावात्मक सुरक्षा के लिए पूरे आदमी की तलाश उसके लिए आवश्यक हो जाती है। वस्तुत: सावित्री के मन का आक्रोश इसलिए भी अधिक है क्योंकि उसमें एक दूसरे के गुथ जाने का सामजस्य भाव नहीं है। इसलिए यह पूरा का पूरा नाटक एक स्तर पर स्त्री-पुरुष के बीच का लगाव और तनाव का दस्तावेज है जो दूसरे स्तर पर यह पारिवारिक विघटन की गाथा। इस कुटुब का हर सदस्य एक दूसरे से कटा हुआ है। घर की त्रासदायक हवा से वे अपने और एक दूसरे के लिए जहरीले हो रहे हैं। यह नाटक व्यक्तियों की विभिन्नता के बावजूद निराशा और पीड़ा के स्वर मुखर करता है। पुरुष एक और स्त्री का यह संवाद -

"स्त्री-(पाजामें को फाड़कर फिर से तहाती है) अब क्या दे दूं। पहले खुद भी तो देख सकते थे। (गुस्से में कबर्ड खोलकर) पाजामें को जैसे उसमें कैद कर देती है। पुरुष एक फालतू सा इधर-उधर देखता है। फिर कुर्सी की पीठ पर हाथ रख लेता है।

स्त्री - (कवर्ड के साप आकर ट्रे उठती है) चाय किस-किस ने पी थी?

पुरुष एक-(अपराधी स्वर में) अकेले मैने।"

वस्तुत: यह परिवार मध्य वित्तीय मानसिकता का शिकार है जिसके चारों ओर से उस पर अवसाद की छाया मंडराई रहती है। सावित्री और पुरुष एक का अधूरापन उनके व्यक्तित्व और परिस्थितियों का परिणाम है। इसीलिए सावित्री की तलाश मानव के संपूर्ण अस्तित्व की तलाश नहीं कही जा सकती है। क्योंकि उसमें तलाश के लिए न जिज्ञासा है और न बौद्धिक आत्मबल। वह केवल एक असंतुष्ट दृष्टि और अप्रयास संवेग को लेकर वह महेंद्रनाथ तथा अपने संपर्क में आये अन्य पुरुषों के अधूरेपन का आरोप लगाती है। वह सिहानियाँ, जगमोहन या जुनेजा नहीं है और इन सबकों वह इसलिए घृणा करती है कि शायद वे महेंद्रनाथ नहीं हैं। कोई भी व्यक्ति अपनी निजता को त्यागकर दूसरा व्यक्ति नहीं बना सकता। महेंद्रनाथ जैसा भी है अपने को महेंद्रनाथ बनाए रखता है। सावित्री का उसे अपनी निजता में न जीने देना उसे पंगु बना देता है और स्वयं उसके जीवन में बाहरी लोग उतने प्रमुख हो जाते हैं कि उसके बिना वह अपने अस्तित्व को सिद्ध नहीं कर पाती। इस प्रकार नाटक का मूल रूप व्यक्ति

टिप्पणी

के बोने पन से ओत-प्रोत है। पुरुष एक और सावित्री के बीच संवाद को देखकर अनुमान लगा सकते हैं। कि दोनों के बीच के संबंध किस प्रकार के हैं

"पुरुष एक-मैं बस थोड़ी देर के लिए निकला था बाहर।

स्त्री-(और चीजों को समेटने में व्यस्त) मुझे क्या पता किने देर के लिए निकले थे वह आज फिर आएगा, अभी थोड़ी देर में तब तो घर पर रहोगे तुम।

पुरुष एक-(हाथ रोककर) कौन आयेगा? सिहानियाँ?

स्त्री-उसे किसी के यहाँ खाने जाना है, इधर पाँच मिनट के लिए यहाँ आएगा।"

आधे अधूरे : नाटक के अभिव्यक्त संवेदना एवं शिल्प

सिंहानियाँ का अधूरापन और महेंद्रनाथ की उसके प्रति सोच पारंपारिक व्यक्तित्व के बोनेपन की सोच है। सावित्री एक के बार एक पुरुषों को आजपाती है और सबको आधा-अधूरा करार देती है। यह नाटक स्त्री-पुरुष के संबंधों, अमानवीय स्थितियों और परिवारिक विघटन का दस्तावेज बन गया है। नाटक का प्रमुख पात्र महेंद्रनाथ पुरुष एक हैं वह अपनी स्थिति का अनुभव करते हुए भी उभर नहीं पाता, यहाँ तक कि वह स्वयं की दृष्टि में भी गिर चुका हैं दूसरी तरफ उसकी पत्नी सावित्री बेकार पति से ऊबी हुई स्त्री है जो टूटते बिखरते पारिवार से ऊब कर किसी अन्य पुरुष से जुडने की ललक मन में धारण किए हुए है। वह जुनेजा, जगमोहन, मनोज और सिंहानियाँ जैसे भ्रष्ट लोगों से जुड़कर एक पूर्ण पुरुष की तलाश कर रही है। लेकिन फिर भी उसे अलग-अलग मुखौटों पर बौने चेहरे ही नजर आते हैं।

सावित्री हर पुरुष से टकराकर अपने में टूटती है फिर भी तलाश के भटकावे में अपने बेटे-बेटी और यहाँ तक कि अपने पति से ऊब कर अपने पुराने प्रेमी जगणेहन में हमेशा के लिए जुड़ने का असफल प्रयास करती है। सावित्री अपनी असफलता के कारण ही चीखती-चिल्लाती है और सबसे अलग होना चाहती है, लेकिन पुनः उसकी वापसी बेकार पुरुष महेंद्रनाथ के घर ही होती है। महेंद्रनाथ, सावित्री, बिन्नी, अशोक और किन्नी आदि आधुनिक मध्यवर्गीय चरित्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। सभी एक दूसरे से मिलकर जुड़े रहने के लिए बाध्य है। यह उसने स्त्री-पुरुष संबंधों के अन्वेषण की एक कड़ी होते हुए भी यहाँ एक तरह की स्वीकृति पर पहुंच गए हैं। स्त्री और पुरुष के बीच परस्पर अनुकूलता नहीं है, और उनके संबंधों में एक बुनियादी संघर्ष सदा बना रहता है। मगर फिर भी इस संघर्ष को समझना और इसके साथ-साथ रहना भी पड़ता है, क्योंकि स्त्री और पुरुष पूरी तरह कभी अलग भी नहीं हो सकते। इस नाटक में स्त्री-पुरुष संबंध के बिखराव आर्थिक कारणों के प्रखर है।

३.५ स्त्री की त्रासदी - जीवन में सुख एवं दुःख दोनों ही अनिवार्य है। सुख के समय अधिक खुशी एवं दुःख के क्षण में अधिक दुःखी नहीं होना चाहिए। दुःख के समय हमें घबराना नहीं बल्कि उसका सामना करने की कोशिश करनी चाहिए। आधुनिक काल में स्त्री अपनी अस्तित्व की पहचान बनाने के लिए संर्घषरत हो रही है। वह जीवन के तमाम विसंगतियों को पार करते हुए आगे बढ़ रही है। घर परिवार की स्थिति उज्जवल बनाने के लिए दूसरों के पास चिरौरी भी करती है। जिस कारण से समाज एवं अन्य लोगों को लगता है कि स्त्री अपनी अस्तित्व को ही मिटा रही हैं वह कही भी अपने को संतुष्ट नहीं पाती हैं जीवन के हर क्षेत्र में कहीं न कहीं अपने-आप को पिछड़ा हुआ पाती है। 'आधे-अधूरे' नाटक में स्थिति त्रासदी के घेरे में धिरा हुआ हैं नाटक के केंद्र में दो ही बातें मुख्य हैं पहली पुरुष एक की पीड़ा और दूसरी नारी मुक्ति की भावना। घर है लेकिन उसमें विखराव और दर्द ज्यादा है। इस नाटक के प्रमुख पात्र सावित्री की स्थिति इस तरह हो गई है कि भीतर सुलगते हुए भी वह परिस्थिति और सामने वाले व्यक्ति को ध्यान में रखकर बात करती हैं इसलिए पुरुष दो के

टिप्पणी

आत्मप्रदर्शन और छिछला रसिकता के बीच निरंतर अपने काम की बात पर आने की चेष्टा करती हैं और ऐसा करते हुए अत्यंत शालीन बनी रहती है। पुरुष एक से बात करते समय वह जिस दर्दपूर्ण स्वर से बोलती है वह पुरुष दो के सामने बोलते समय सर्वथा लुप्त हो जाता है। पुरुष तीन से बात करते समय वह हपनी पारिवारिक कटुता जहाँ छोड़कर अपने शब्दों में शहद उड़ेलने लगती है। पुरुष तीन का सहारा पाने के लिए वह विगत प्रणय संबंधों के बल पर आत्मीयता के अधिकार का उपयोग पूरी शक्ति से करती है। इस अधिकार के प्रदर्शन के लिए वह पुरुष तीन को डाटती भी है और पुरुष चार के साथ बात करती हुए वह पुरुष एक की बुराई ही करती रहती है। जिसका जवाब पुरुष चार देता रहता है।

"पुरुष चार ..... इसीलिए कि वह अपने को बिल्कुल बेसहारा समझता है। उसके मन में विश्वास बिना दिया है तुमने कि सब कुछ होने पर भी उसके लिए जिंदगी में तुम्हारे सिवाय कोई चारा कोई उपाय नहीं है ।"

स्त्री-क्यों-क्यों-क्यों आप और-और बात करके लाना चाहते हो। अभी आप जाइए और कोशिश करके उसे हमेशा के लिए अपने पास रख लीजिए ।"

पुरुष चार जब बड़ी लड़की के उसके पिता के बारे में कहता है कि तुम्हारे पिता दिल के बुरे नहीं हैं। वह तो कुछ परिस्थितियों ने उन्हें बुरा बना दिया है तब बड़ी लड़की कहती है कि

इतने साधारण ढंग से उड़ा देने की बात नहीं है, अंकल! मै यही थी, मुझे कई बार लगता था कि मैं एक घर में नहीं बल्कि चिड़ियाँ घर में हूँ। कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैने। दिन-रात पिताजी की मार-पीट सहने के बावजूद माँ इस घर को संभाले हुए हैं।"

इस नाटक में तीनों स्त्री पात्रों की स्थिति दयनीय हैं बड़ी लड़की बिन्नी का विवाह अपने माँ के आशिक के साथ हो जाता है। बड़ी लड़की बिन्नी इस सभी बातों से अनजान रहती हैं जिस व्यक्ति के साथ उसका विवाह हो जाता है, जिसके साथ जीवन यापन करती है वह व्यक्ति उसे ये सच्चाई छुपाया रहता हैं बिन्नी की माँ भी अपने बेटी के जीवन को नरक बनाने में तुली हुई है। छोटी लड़की किन्नी हमेशा छोटी-छोटी चीजों के लिए अपने माँ एवं दीदी से लड़ाई करती है। मोहन राकेश ने इस नाटक के माध्यम से महानगर से व्यवस्थित मध्यवर्गीय परिवार में नारी की स्थिति देखने का प्रयास किया है। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में भी मल्लिका की त्रासदी दिखाई देती है। मल्लिका कालिदास से प्रेम करती है, लेकिन उसकी खुशी के लिए उससे दूर रहती है। मल्लिका का चित्रण एक स्वतंत्र, आत्म-निर्भर, विचारशील, आधुनिक और निर्णायक नारी के रूप में हुआ हैं मल्लिका इस नाटक में स्वयं कहती है कि "मैंने भावना का वरण किया है मेरे लिए वह संबंध और सब संबंधों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनश्वर है।" कालिदास से इतना चाहते हुए भी अपने आप को कालिदास और उनकी उपलब्धियों के बीच में नहीं आने दिया।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि नारी की त्रासदी 'आधे-अधूरे' नाटक में दिखायी देती है। इस नाटक के प्रत्येक नारी पात्र अपनी जीवन खुल ने नही जी पा रही है। सावित्री, किन्नी और बिन्नी तीनों की जीवन विसंगतियों से भरा हुआ हैं ये तीनों नारी पात्र तकलीफ में होते हुए भी जीवन-यापन के लिए तत्पर है। जीवन की तमाम विसंगतियों को काटते हुए आगे बढ़ने की कोशिश करती है।

आगे बढ़ने की लालसा - आगे बढ़ने की लालसा हर मनुष्य में होती है। वह हमेशा आगे बढ़ने की कोशिश में लगा रहता है। मध्यवर्गीय परिवार में यह भावना सबसे अधिक दिखाई देती है। मध्यवर्ग की आकांक्षायें कभी पूर्ण नहीं हो पाती है, वह निम्न वर्ग एवं उच्चवर्ग के बीच में पिसता हुआ नजर आता है।

टिप्पणी

मोहन राकेश कृत 'आधे-अधूरे' नाटक में भी सभी पात्र आगे बढ़ने के लिए तमाम प्रयास करते हैं, मोहन राकेश के उनके इस भाव को दिखाने का प्रयास इस नाटक में किया है। इस नाटक में प्रमुख पाँच पात्र हैं। सभी पात्रों में हमेशा आगे बढ़ने की लालसा होती है और यही लालसा उन्हें परिवार के संबंधों में विघटन पैदा करता है। महेंद्रनाथ व्यवसाय के लिए अपने दोस्त से पैसा कर्ज लेता है, लेकिन अंत तक कर्ज नहीं चुका पाता है और निराश होकर महेंद्रनाथ यानी पुरुष एक स्त्री से कहता है कि

पुरुष एक-फिलहाल उसे देने के लिए पैसा नहीं है, तो कम-से-कम मुँह तो उसे दिखते रहना चाहिए।

पत्नी हाँ, हाँ दिखा आओ मुँह जाकर ।"

वह आगे बढ़ने के लिए कर्ज लेता है लेकिन कर्ज चुकता नहीं कर पाता। जिसके कारण उसे हमेशा ताना सुनना पड़ता है। इस नाटक की प्रमुख पात्र सावित्री आगे बढ़ने के लिए अपने बॉस को भी चिरौरी करती है। ताकि बॉस उसके बेटे को छोटी-मोटी नौकरी दे दे। जिसके कारण घर की स्थिति में थोड़ा सुधार हो। सावित्री बॉस से कहती है

आधे अधूरे : नाटक के अभिव्यक्त संवेदना एवं शिल्प

"स्त्री - याद है न आपको?

पुरुष दो याद है। कुछ बात की थी तुमने एक बार। अपनी किसी कजिन ने लिए कहा था ..... नहीं, वह तो मिसेज मल्होत्रा ने कहा था। तुमने किसके लिए कहा था?

स्त्री- (लड़के की तरफ देखती) इसके लिए ।"

सावित्री हमेशा जिसके भी संपर्क में आती है उसे अपने परिवार की स्थिति को बयान करती है। ताकि किसी तरह उसके बेटे को कोई नौकरी मिल सके। घर की आर्थिक स्थिति में सुधार हो। इसीलिए वह अपने कलिग को घर पर बुलाकर अच्छा व्यवहार करने की कोशिश करती है। लेकिन यह प्रयास भी उसका बेकार ही जाता है। लड़का अपनी माँ से कहता है

"लड़का-उसकी किसी 'बड़ी' चीज की वजह से। एक कि वह इंटेलेक्चुअल बहुत बड़ा हैं दूसरे को कि उसकी तनख्यवाह पाँच हजार है। तीसरे की उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की हैं जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं-उसकी तनख्वाह को, नाम को, रुतबे को बुलाया है।

स्त्री-तू कहना क्या चहता है इससे कि ऐसे लोगों के आने से इस घर के लोग छोटे हो जाते हैं?

लड़का-बहुत-बहुत छोटे हो जाते हैं।"

इस प्रकार यह देख सकते हैं कि इस नाटक में महानगर के मध्यवर्गीय परिवार आगे बढ़ने के लिए किस तरह से बैचेन हैं और उनकी इस लालसा ने पूरे परिवार में विघटन की स्थिति पैदा की है।

असंतोष की भावना-मानव हमेशा किसी न किसी कारणवश असंतोष की भावना से घिरा रहता हैं वर्तमान समाज में यह भावना का स्तर अधिक दिखाई देती है। असंतोष में घिरा हुआ व्यक्ति कभी संतुष्ट नहीं हो पाता है और संतुष्टि की तलाश में वह हमेशा इधर-उधर भटकता रहता है। सबसे अधिक असंतोष की भावना हमें मध्यवर्गीय परिवार में दिखाई देती हैं यही असंतोष की भावना के कारण पारिवारिक संबंधों में विघटन, तनाव आदि दिखाई देता है।

आधे-अधूरे' नाटक महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार की गाथा है। इस नाटक में सभी पात्रों में असंतोष की भावना हमें दिखाई देती हैं परिवार का हर सदस्य आर्थिक सामाजिक दृष्टि से संतोष नहीं है। इस परिवार में अर्थ की प्राप्ति से बाकी लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं हो पाती है, वह निराश होकर बड़ी लड़की से कहती है।

टिप्पणी

"स्त्री-कैसी बात कर रही हूँ? यहाँ पर सब लोग समझते क्या है मुझे? एक मशीन, जोकि सबके लिए आटा पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती है। मगर किसी में मन में जरा सा भी ख्याल नहीं है इस चीज के लिए कि कैसे मैं ....."

इस नाटक में एक ओर सावित्री अपने घर परिवार को चलाने के लिए पैसे कमाती है ताकि आगे चलकर परिवार के लोग खुशी-शान्ति से जीवन यापन करें। वहीं बड़ी लड़की वैवाहिक जीवन में संतोष नहीं है। वह अपनी माँ सावित्री से कहते है

"बड़ी लड़की-शादी से पहले लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह से जानती हूँ। पर अब जाकर लगने लगा है कि वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था।

स्त्री-(बात की गहराई तक जाने की तरह) हूँ! ..... तो कया उसके चरित्र में कुछ ऐसा है जो .....)

बड़ी लड़की-यही तो मैं भी नहीं समझ पाती। पता नहीं कहाँ पर क्या है जो गलत है ।"

इस नाटक में पति-पत्नी के बीच भी असंतोष की भावना दिखाई देती है। ऐसा लगता है कि दोनों इस बंधन में जबरदस्ती बंधे हैं। पति-पत्नी के बीच में आपसी मेल-मिलाव दिखाई नहीं देता है। हमेशा दोनों के बीच तकरार ही दिखाई देता है। यही तकरार रिश्तों में दरार पैदा करती है।

इस नाटक में महेंद्रनाथ यानी प्रथम पुरुष भी संतुष्ट नहीं है। प्रथम पुरुष से बाकी सभी पात्र उचित व्यवहार नहीं करते। कोई भी कुछ भी सुना कर चला जाता है। उसकी इज्जत कोई भी नहीं करता है। प्रथम पुरुष से उसके लड़का-लड़की भी तू-तू-मैं-मैं करते रहते हैं

"प्रथम पुरुष-कितने साल हो चुके हैं मुझे जिंदगी का भार ढोते? उनमें से कितने साल बाटे हैं मेरे परिवार की देख-रेख करते हैं? और उस सबसे बाद मैं आज पहुँचा कहाँ हूँ? यहाँ कि जिसे देखो वही मुझसे उल्टे ढ़ग से बात करता है? जिसे देखो मुझसे बततामीजी से पेश आता है?

लड़का (अपनी सफाई देने की कोशिश में) मैने तो सिर्फ इसलिए कहा था, डैडी, कि ....."

इस नाटक में प्रथम पुरुष की स्थिति बहुत दयनीय दिखायी गयी है। उसे हमेशा किसी न किसी कारण से बेइज्जती किया जाता है। वह अंदर ही अंदर अपने आप को कमजोर एवं असहाय समदाता रहता है। पुरुष एक एवं स्त्री के बीच यह वार्तालाप देख हम समझ सकते हैं कि पुरष एक की स्थिति कैसी है?

पुरुष एक-अपनी जिंदगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी जिंदगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ क्योंकि अंदर से मैं आरामतलब हूँ, घरघुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।

स्त्री-मैं नहीं जानती, तुम सचमुच ऐसा महसूस करते हो या .....।"

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि असंतोष की भावना सभी पात्रों में विद्यमान है। यह भावना हमें पारिवारिक संबंधों, वैवाहिक जीवन आदि में दिखाई पड़ती है।

3.5 नाटक की अभिनेयता

- आधुनिक नाट्य-साहित्य के शिखर पर पहुँचने वाले महान नाटककार मोहन राकेश की रंगचेतना अत्यन्त परिष्कृत और बहुमुखी थी। वास्तव में मोहन राकेश रंगमंच के गहरे पारखी थे इसलिए विद्वानों ने उन्हें आधुनिक नाटकों का मसीहा' कहा हैं उनकी रंगचेतना का ज्ञान उनके समस्त नाट्य साहित्य से परिलक्षित होता है। प्रसाद जी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार है किन्तु उसे नाटकों का अभिनय कठिन है। इसलिए उनके नाटकी को इस दृष्टि से अधिक सफल माना नहीं जाता है। किन्तु मोहन राकेश इस

टिप्पणी

दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। उनके आषाढ़ का एक दिन' तथा लहरों के राजहंस' न जाने कितनी नाट्य संस्थाओं द्वारा रंगमंच एवं अभिन्य की वे तमाम सम्भावनाएँ उपलब्ध है जो उसके लिए उपेक्षित है।

श्आधे-अधूरे' रंगमंचीय प्रयोगों का नाटक है। प्रसिद्ध अभिनेता-निर्देशक सत्यदेव दुबे का कहना; "Till date Adhe Adure* is the most sucessfull among-est the plays Produced in Hindi anywhere in India-"

वैसे इस नाटक का ओम शिवपूरी के निर्देशन में दिशान्तर, नई दिल्ली, सत्यदेव दुबे के निर्देशन में थिएटर यूनिट, बम्बई, श्यामानन्द जलान के निर्देशन में अनामिका, कलकत्ता, अमाल अल्लना के निर्देशन में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (रंगमण्डल) द्विल्ली के अतिरिक्त पटना, देहरादून, वाराणसी, जमशेदपुर, कानपुर, हैदराबाद, जम्मू और भारत वर्ष के लगभग प्रत्येक रंगनगर में सफतापूर्वक मंचन किया जा चुका है।

'आधे-अधूरे' नाटक की अभिनेयता निम्नलिखित गुणों एवं विशेषताओं के कारण अत्यन्त सफल मानी जाती है।

1. **कथानक के अंगों के संगठन** - आधे-अधूरे' नाटक का कथानक अत्यन्त संगठित, संक्षिप्त, सरल एवं रोचक है।। नाटककार ने दिखाया है कि किस प्रकार से एक मध्यवर्गीय परिवार स्तरीकरण की दौड़ में दौड़ता हुआ विघटनशीलता के कगार पर पहुँच गया है। इस परिवार का प्रत्येक सदस्य अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के लिए सामाजिक, नैतिक एवं पारिवारिक मूल्यों की तिलांजलि दे देकर अपने आपको और पूरे परिवार को मानसिक यान्त्रणाओं के अन्धूकूप में घकेल देता है। नाटककार ने कथानक के सभी अंगों में संगठन करते हुए संक्षिप्तता, कसावसहट एवं प्रभविष्णुता के ग्रन्थों को कथानक को समाहित किया है। छब्बीस घण्टे की अल्पावधि में लिपटी-सिमटी संक्षिप्त और रोचक कथावस्तु का सफलतापूर्वक दो-ढाई घण्टे में मंचन किया जा सकता है। उन्होंने कथावस्तु के अन्तराल विकलप को दो भागों में विभाजित किया है। केवल एक ही दृश्यबन्ध पर सारा नाटक सफलतापूर्वक खेला जा सकता हैं किंचित मात्रा में भी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। कथानक का विभाजन न अंकों और न दृश्यों में प्रस्तुत किया गया है कथानक को संक्षिप्त रूप देने के लिए उन्होंने अपनी जागृत दृश्य-सूक्ष्म विवेक का भी भरपूर सहारा लिया है।

   इसके अतिरिक्त नाटककार की भाषा संवाद एवं रंगसंकेत कथावस्तु का विकास करने की पूरी क्षमता रखते हैं। नाटक में प्रस्तुत (प्रयुक्त) चरित्रों का चरित्रिक विकास कथावस्तु को इतनी गति देता है कि भविष्य में घटने वाली अलक्ष्य घटनाओं का संकेत भी मिल जाता है। इस ही दृश्यबन्ध में सम्पूर्ण कथावस्तु को प्रस्तुत करने के लिए नाटककार में यथास्थान पर्याप्त रंग संकेत दिए हैं। उससे दृश्य निर्माण में बड़ी सहायता मिलती है। यथा

   "पुरुष एक : (हाथ बढ़ाकर) लाओ, मुझे दे दो।

   स्त्री : (पाजामें को झाड़कर फिर से तहाती हुई) अब क्या दे दूं। पहले खुद भी तो देख सकते थे।

   गुस्से में कवर्ड खोलकर पाजामें को जैसे उसमें कैद कर देती है। पुरुष एक फालतू-सा इधर-उधर देखता है, फिर एक कुर्सी की पीठ पर हाथ रख लेता है।

   (कबर्ड के पास आकर ट्रे उठाती) चाय किस-किसने पी थी?"

टिप्पणी

जहाँ तक काल-अन्विति का प्रश्न है नाटक में केवल चौदह या पन्द्रह घण्टों की परिस्थितियों को कथावस्तु का जामा पहनाया गया। पहले दिन पाँच बजे शाम से लेकर दूसरे दिन सात बजे शाम तक की घटनाओं में नाटककार ने बड़ी कुशलता के साथ मंचरच करने का प्रयास किया है। इससे नाटक की अभिनेयता को पर्याप्त बल मिलता है। नाटक का कार्य-व्यापार मंच पर आए हुए पात्रों द्वारा बड़ी तीव्रगति से आगे बढ़ता है। इसका एक कारण यही है कि इसकी कथावस्तु संक्षिप्त है। इसके पात्र घटनाक्रम को मोडने में पूर्णत: सक्षम हैं कथानक के अंगों में संगठन है। कथा-संयोजक दर्शकों का स्तब्ध एवं जिज्ञासु बनाए रखता है।

2. **पात्रों की सीमित संख्या एवं यथार्थपरक चित्रण** - प्रस्तुत नाटक की पात्रसंख्या भी अत्यन्त सीमित है केवल दो पुरुष पात्र और तीन स्त्री पात्र ही समस्त कथा को व्यक्त कर देते हैं। एक ही व्यक्ति पुरुष एक, पुरुष दो, पुरुष चार की भूमिकाओं में प्रस्तुत होता है। पात्र-संख्या सीमित होने के कारण उनका चरित्र-चित्रण भी बड़े स्वाभाविक ढंग से हुआ हैं महेन्द्रनाथ, सावित्री अशोक, बिन्नी आदि सभी पात्रों का चरित्रांकन वास्तविक मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुआ। इसके जहाँ पात्रों के चरित्र चित्रण में सजीवता आई है। वही रंगमंच पर नग्न यथार्थ से साक्षात्कार भी दर्शकों को हुआ है। दर्शक पात्रों की मन:स्थिति, स्वभाव और आचार-विचारों में शीघ्र ही परिचित हो जाते हैं डॉ० रीता कुमार ने राकेश की पात्र-योजना के बारे में लिखा है "राकेश ने अपने किसी भी नाटक में पात्रों की भीड़ एकत्रित नहीं की। विभिन्न सामाजिक विसंगतियों को मूर्त करने में आवश्यक पात्रों की ही योजना की है। हिन्दी नाटकों में पहली बार पात्रों के आन्तरिक द्वन्द्व और मनोभाव, विसंगतियों और संवदेनशील व्यक्ति के संघर्ष, को, एकरस जिन्दगी की ऊब और निरर्थक के तथा बेमानी होते पारस्परिक सम्बन्धों के बोझ को ढ़ोती व्यक्ति की विवशता को उनके नाटकों के पात्र बहुत सशक्त रूप में मूर्त करते हैं।' इसके अलावा पात्रों की वेशभूषा, भाषा, संवाद आदि में रंगमंच के अनुकूल हैं दर्शक इन यथार्थवादी धरातल के पात्रों से तादात्म्य शीघ्र करके नाटक की कथावस्तु का रस ग्रहण करने लगते हैं। अत: आधे-अधूरे' ने त्रस्त और परस्त-चरित्र भले ही विकासहीन एवं व्यक्तिवादी अंह' से ग्रस्त हो, पर फिर भी ये पात्र एक दर्पण को प्रस्तुत करते हैं जो हमें अपने-आप को अपने आस-पास के जीवन और परिवेश से परिचित कराते हैं।

3. **चुस्त-संवाद योजना** - राकेश जी ने प्रस्तुत नाटक की संवाद योजना एकदम चुस्त, बहुअर्थी एवं रंगमचीय दृष्टि के अनकल की हैं नाटककार ने प्रत्येक पात्र को रंगमंच पर इस प्रकार अभिव्यक्ति प्रदान की है कि नाटककार का कथ्य एवं पाठकों की संवेदना एकाकार हो गई है। पात्रों के अति लघु तीखे संवाद अन्य पात्रों एवं दर्शकों पर अस्त्र की भाँति वार करते हैं। इस नाटक की संवाद-योजना में संवाद की तीव्रता उसके प्रभाव को और अधिक सघन बनाती है। पात्र के मानसिक आक्रोश की अभिव्यक्ति का सशक्त साधन बनी है।

मोहन राकेश चुस्त-चुटली, सरल-प्रवाहशील संवाद योजना की अवतरण में निष्णात है। वास्तव में इन संवादों का सारा सौन्दर्य इनकी रचना-बनावट में है जहाँ नाटककार की आत्मीयता और पात्रों की आत्मीयता एकाकार हो गई है। उन्होंने नायक-नायिका (महेन्द्रनाथ-सावित्री) की टकराइट को संवादों के माध्यम से भी अभिव्यक्त किया है

"पुरुष एक - काफी अच्छा आदमी है जगमोहन और फिर से दिल्ली में उसका ट्रांसफर भी हो गया है कहा रहा था आएगा किसी दिन मिलने।

टिप्पणी

स्त्री-खूब तारीफ करो और जिस-जिसकी हो सके तुमसे।" पूरे नाटक में राकेश की संवाद योजना कही भी सतही, उथली, अस्वाभाविक या भाषाजाल प्रतीत नहीं होती। इतने बड़े-बड़े नाटक में एक भी पंक्ति शून्य जड़ अपाठ्य नहीं कही जा सकती। वास्तव में ये लघुकाय संवाद देखने में छोटे लगे पर घात कर गम्भीर की उक्ति को चरितार्थ करते हैं अर्थात आकार में छोटे-छोटे, चुस्त-चुटीले पर सम्पूर्ण अर्थ को वहन करने की क्षमता निहित है।

डॉ. बन्सल ने आधे-आधूरे के संवादों की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए लिखा है - आधे-अधूरे के अतिलघु, तीखे संवाद ने अस्त्रों के समान तेजी से उठकर गहरा वार करते है। वे बिजली के समान चमकते हैं और कौंध कर विलीन हो जाते हैं।

यथा -

स्त्री - फिर भी कोई खास बात।

बड़ी लड़की - खास बात कोई भी नहीं?

स्त्री - तो?

बड़ी लड़की

और सभी बातें खास हैं।

स्त्री - जैसे?

बड़ी लड़की - जैसे ..... सभी बातें?

स्त्री-तो मेरा मतलब है कि .....?"

अत: आधे-अधूरे की संवाद योजना अत्यन्त संक्षिप्त चुस्त-चुटील और अभिनेय गुण से युक्त है जिसके कारण यह नाटक रगमंच की कसौटी पर खरा उतरा है।

डॉ. गिरीश रस्तोगी का कहना है - "इस नाटक के संवाद की गति को ज्यादा महत्त्व दिया गया है, यह विकास का लक्ष्य है। केवल सिंघानियाँ एवं संवादों को एक ठहराव है अन्यथा नाटक के संवादों में मति ही गति है, क्योंकि वह उन सभी पात्रों के मानसिक आक्रोश को अभिव्यक्त करने के लिए जरूरी है और तीखेपन में तेजी और तल्खी सवाभाविक भी है इसके अतिरिक्त कही संवाद अधूरे-अस्फूट है कहीं पूरे-परे लम्बे और कहीं एकदम छोटे।" इस नाटक की संवाद-योजना में पात्रानुकुलता स्वाभाविकता, सरलता, संक्षिप्तता, व्यंग्यात्मकता, यर्थापरकता, रोचकता आदि के गुण नाटक के रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रोषित करते है:

सिघांनियाँ प्रकरण में स्त्री एवं लड़के के संवादों से सिंधानियाँ की कामुक एवं स्वार्थपरकता पर व्यग्य किया गया है यथा

स्त्री-तू एक मिनट जाएगा बाहर

लड़का-क्यों?

स्त्री - बैटरी डाउन हो गई है। धक्का लगना पड़ेगा।

लड़का - अभी से? अभी तो नौकरी की बात तक नहीं की उसने .....

स्त्री - जल्दी चला जा। उन्हें पहले ही देर हो गई है

लड़का - अगर सचमुच दिला दी उसने नौकरी, बत तो पता नहीं ।"

टिप्पणी

4. **सहज-सरल भाषा-योजना** - जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, रंगमंचीय नाटक के लिए उसका अत्यन्त महत्त्व है क्योंकि क्लिष्ट भाषा अक्सर उसके अभिनय में बाधक बन जाती है। प्रसाद के नाटकों को मंच पर सफलता न मिलने का एक मुख्य कारण उनकी भाषागत किलष्टता भी रहा है। उनकी काया-कठिन्य के कारण दर्शक की ग्रहण क्षमता कुण्ठित हो जाती है। राकेश जी को रंगमंच का पूरा अनुभव है और रंगमंच पर खेले जाने वाले नाटकों की भाषा कैसी होनी चाहिए इसका पूर्ण ज्ञान हैं उनके ऐतिहासिक नाटकों में भी रंगमंचानुकूल भाषा का ही प्रयोग हुआ है यह ओर बात है कि परिवेशगत यथार्थता को बनाए रखने के लिए उन्हें कुछ संस्कृतनिष्ठ शब्दों को भी प्रयुक्त करना पड़ा। आधे-अधूरे उनका सामाजिक समस्या-नाटक है इसलिए इसमें आधुनिक-परिवेश को यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर सकने वाली उस भाषा को प्रयुक्त किया गया है जो बोलचाल की उर्दू-अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी तो है ही साथ ही नाटकीय कथावस्तु के सर्वथा उपयुक्त है। 'आधे-अधूरे' की भाषा आम आदमी की भाषा होते हुए भी सर्जनात्मक शक्ति और रंगतत्त्वों से पूर्ण है। भाषा की सादगी सच्चाई और तनाव को व्यक्त करने की क्षमता स्थान-स्थान पर पाठक को करंट के समान छू जाती है। घर-घूसरा, नाशुके आदमी, रबड़ का टुकड़ा जैसे आज के समाज में प्रचलित इन नये शब्दों से राकेश जी ने इस नाटक की भाषा को रंगमंचीय सम्प्रेषण के अनुकूल और गहन अर्थवत्ता से युक्त बनाया है। अत: प्रस्तुत नाटक की भाषा सर्वत्र सहज, सरल, यथार्थपरक, रोचक प्रवाहमयी एवं व्यंग्यप्रधानता के गुणों से युक्त सही अर्थों में रंगमंचीय भाषा है।

5. **सफल दृश्य योजना** - मंज सज्जा एवं दृश्य योजना का चुनाव राकेश जी ने अत्यन्त सावधानी सुलभता के आधार पर किया है। यह पूरा नाटक एक ही दृश्यबन्ध में सफलतापूर्वक मंच पर अभिनीत हो सकता है। इसकी दृश्य-योजना में दृश्य परिवर्तन करने की आवश्यकता निर्देशक को नहीं पड़ती है। यह सफल दृश्य-योजना राकेश जी की अनुभवी रंगमंचीय दृष्टि का परिणाम है। महेन्द्रनाथ और सावित्री के घर का वह बड़ा कमरा जो बैठने-उठने के लिए प्रयुक्त होता है, में सारा नाटक घटित हो जाता है। इस कमरे को नाटककार ने बहुउद्देशीय प्रयोग किया है। नाटककार ने मंच पर दृश्य योजना के इतने पर्याप्त रंग संकेत दिए हैं कि पूरी दृश्य-योजना इसी कमरे में साकार हो जाती है। दृश्य योजना के लिए राकेश जी ने उन उपकरणों का चयन किया जो लगभग हर मध्यवर्गीय परिवार में सहज उपलब्ध हो जाते हैं। इस सहज-सुलभ उपकरणों को जुटाना ही राकेश की अनुभवी रंगदृष्टि का परिणाम है। श्री ओम शिवपुरी ने नाटक के दृश्य स्थल के बारे में लिखा है आधे-अधूरे' में कार्य स्थल मकान का बैठने का कमरा है, जिसमें सोफे, कुर्सियाँ, अलमारी, किताबें, पर सालों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब इस पर धूल की तरह जम गई है क्रॉकरी पर चटखन हैं दीवारे मटमैली हो गई है। इस परिवार का हर सदस्य एक-दूसरे से कटा हुआ है। घर की हवा तक में तल्खी की गन्ध है, जो पाँच व्यक्तियों के मन में भरी हुई है-अब, घुटन, आक्रोश, विद्रुप दम घोटने वाली मनहूसियत जो मरघट में होती है।"

   अत: राकेश जी ने अपनी दृश्य-योजना में कुछ भी ऐसा नहीं रखा है जो रंगमंच पर उपस्थित करना कठिन हो। इतना ही नहीं उपलब्ध उपकरणों वस्तुओं के भी सरलतम प्रयोग से सफल दृश्य-योजना की है।

6. **पर्याप्त रंग संकेत एवं रंग निर्देश** - मोहन राकेश ने निर्देशक की सुविधा के लिए 'आधे-अधूरे' नाटक में पर्याप्त मात्रा में रंग-संकेत या रंग-निर्देश दिए हैं। नाटक के प्रारम्भ में

टिप्पणी

ही यह रंग संकेत, रंग-निर्देश दृष्टव्य है "पर्दा उठने पर सबसे पहले चाय पीने के बाद डाइनिंग टेबल पर छोडा गया अधटा और आलोकित होता है फिर फटी किताबों और टूटी कुर्सियों में से एक-एक कुछ सेकेंड बाद प्रकाश सोफे के उस भाग पर केन्द्रित हो जाता है जहाँ बैठा काले सूट वाला आदमी सिगार के कश खींच रहा है। उसके सामने रहते प्रकाश उसी तक सीमित रहता है, पर बीच-बीच में कभी यह कोना और कभी वह कोना साथ आलाकित हो जाता है ।"

नाटककार ने इन रंग संकेतों या रंग निर्देशों के माध्यम से एक तरफ तो नाटक के रंगमंचीय स्वरूप में मजबूत किया है, दूसरे मध्यवर्गीय परिवार की दयनीय स्थिति, घुटन, कुण्ठा आदि रंगध्वनि में उजागर किया हैं राकेश जी ने रंग-संकेतों के साथ प्रकाश एवं ध्वनि योजना द्वारा भी प्रस्तुत नाटक के मंचन को सफल बनाने की कोशिश की है। नाटक के मार्मिक क्षण में उभरने वाला शोकप्रद और खण्डहर की वीरानियत का संगीत एवं

पात्रों की धुंधली आकृतियों पर सिमटता हल्का प्रकाश नाटक को गहरी अर्थवत्ता प्रदान करता हैं। इसके साथ-साथ एक ही दृश्यबन्ध पर काल-परिवर्तन का संकेत भी उसके रंग संकेतों की व्यापकता एवं सार्थकता को प्रकट करता है।

आधे अधूरे : नाटक के अभिव्यक्त संवेदना एवं शिल्प

अत: राकेश जी ने अपने रंग संकेतों, प्रकाश एवं ध्वनि व्यवस्था से नाटक की अभिनेयता को सफलता की सीढ़ी तक पहुँचाने का काम स्वंय ही कर दिया, न किसी नाट्य निर्देशक पर निर्भर रहे।

7. **वेशभूषा एवं साज-सज्जा** - नाटककार ने अपने पात्रों की वेशभूषा एवं साज-सज्जा के बारे में स्पष्ट रंग निर्देश दिए हैं। चारों पात्रों की वेशभूषा के बारे में रंगसंकेत नाटक के प्रारम्भ में ही मिलते हैं पुरुष एक के रूप में वेशान्तर पतलून-कमीज, पुरुष दो के रूप में पतलून और बन्द गले का कोट। पुरुष तीन के रूप में पतलून, टीशर्ट तथा पुरुष चार के रूप में-पतलून के साथ में पुरानी काट का लम्बा कोट। इसी प्रकार सावित्री की वेशभूषा-ब्लाउज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरुचिपूर्ण दूसरी साड़ी विशेष अवसर की इस प्रकार बड़ी लड़की की सगी माँ से साधारण छोटी लड़की फ्रॉक चुस्त, पर एक मोजे में सुराख लड़के की वेशभूषा के बारे में पतलून के अन्दर दबी-भड़कीली बुशर्ट, धुल-धुलकर घिसी हुई इन पात्रों के लिए वेशभूषा अत्यन्त सरल व सहज ग्राम है।

इस प्रकार नाटककार ने अपने सभी पात्रों की वेशभूषा को उनके व्यक्तित्व, मन स्थिति और कार्य कलाप के अनुरूप रखा हैं किसी भी पात्र के लिए मेकअप भी अनिवार्य नहीं है जिससे पात्र अपनी सरल और साधारण वेशभूषा में जन-जीवन की समस्याओं को और गहराई से मूर्त करते हुए सीधे दर्शक द्वारा साधारणीकृत हो जाते हैं। ओमशिवपुरी ने इस नाटक की वेशभूषा एवं साज-सज्जा के बारे में लिखा है "प्रस्तुति की अन्य उल्लेखनीय विशेषता थी मेंकअप का न होना। नायिका केवल वही मेकअप किया हुए थी, जो उस जैसी स्त्री वास्तविक जीवन में करती हैं इसके अलावा किसी कलाकार ने पाउडर इत्यादि छुआ भी नहीं था। नाटक की साज-सज्जा भी अत्यन्त स्वाभाविक सादी होते हुए भी सार्थक है। इस प्रकार की सरल-सुलभ वेशभूषा कहीं भी सहजता से उपलब्ध हो सकती है।"

टिप्पणी

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रस्तुत नाटक के कथानक के अंगों में संगठन, पात्रों की सीमित संख्या और यथार्थवादी चित्रण, सरल और सार्थक रंगभाषा, सफल संवाद योजना, पर्याप्त रंग संकेत, पात्रनुकूल वेशभूषा और सरल-सहज प्राप्त मंच सज्जा की सामग्री के कारण रंगमंच की कसौटी पर एकदम खरा उतरता है। यह नाटक धर्मयुग' में अपने प्रकाशन और दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता तथा देशभर में अन्य कई स्थानों पर हुए मचन के कारण इतना प्रसिद्ध गया था कि इसी नाटक पर को राकेश जी के संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार' और नेहरू फैलोशिप मिली सुप्रसिद्ध नाट्य-निर्देशक ब.व. कारंत के अनुसार, "हिन्दी रंगमंच पर आधे-अधूरे' की शायद हिन्दी का एकमात्र मौलिक नाटक है जो सबसे ज्यादा खेला गया और पसन्द किया गया। पहली बार इसने साहित्यिक और रंगमंचीय नाटक में भ्रामक अन्तर को भी मिटाया।"

नैमिचन्द्र जैन का कथन भी इस नाटक की रंगमंचीय सफलता के विषय में उल्लेखनीय है-"वह (आधे-अधूरे) नि:सदेह रंगमच पर प्रस्तुत करने योग्य, सार्थक और समकालीन संवेदना के समीप का नाटक है 'आधे-अधूरे' आज के इंसानों की जिन्दगी को किसी प्रकार आज के ही मुहावरों में प्रस्तुत करता है ।"

3.6 आधे अधूरे की सम्वाद योजना

संवाद नाटकों का मूल विधायक, तत्त्व माना जाता है। नाटक के दृश्य-कलेवर का निर्माण एक सृजन वास्तव में संवादों का योजना के रूप में ही हुआ करता है। इसी कारण संवाद नाटकों का परमावश्यक तत्त्व हैं

ध्यात्व्य है कि संवाद नाटक के बाह्य या दृश्य कलेवर का तो निर्माण करते ही है, उसकी आत्मा भी वास्तव में संवादों में ही अतार्हत रहती है नाटक का कथ्य, कथानक, भाव, विचार, उद्देश्य, समास्याकन, पात्रों के अन्त: बाह्य चरित्र, सवेद्य, सवेदना और अनुभूतियाँ, यहाँ तक कि वातावरण का, परिस्थितियों का वास्तविक अभिव्यक्ति भी नाटकों में संवादों के माध्यम से हो ही पाता है। कथानक का योजना उसका आदि, मध्य, अंत आदि विभिन्न स्थितियों में अन्त: वाह्य विकास भी संवादों द्वारा ही नाटकों में संभव हुआ करता हैं इसके अतिरिक्त सर्जक कलाकार या नाटककार अपनी और से जो कुछ कहना चाहता है, उसके लिए भी वह किसी ने किसी पात्र के संवादों का ही आश्रय लेता है। इस प्रकार नाटकों में संवाद एक प्रमुख एवं व्यापक तत्व हैं उसके बिना नाटक का ढाँचा ही खड़ा नही हो सकता। यह भी निर्विवाद और अंतिम तथ्य है कि नाटक का सफलता-असफलता उचित, सुघड़ एवं सुचिंतित व्यावहारिक संवादों, पर ही अवंलबित रहता हैं इनके सदभाव में कोई नाटक सफल होता है और अभाव में असफल।

सामान्य रूप एवं अर्थ में संवाद कुछ व्यक्तियों (कथात्मक साहित्य में पात्रों) द्वारा आपस में की गई बातचीत या वार्तालाप को ही कहा जाता है। पर वार्तालाप, बातचीत और संवाद में वास्तवित एवं मौलिक अंतर यह होता है कि बातचीत में कायिक या वाचिक अभिव्यक्ति (अभिनेयता) का कोई विशेषता नहीं समझी जाती. जबकि संवादों के लिए यह सब एक प्रकार का अनिवार्यता है। संवादों में वक्ता के कथन के अनुरूप कायिक या अगिक ओर वाचक भावाभिव्यक्ति भी आवश्यक हुआ करता है। अपने चहरे पर वाले उतार-चढ़ाव शरीर या अंगों का संचालन या हिलना-डुलना भी ठीक संवाद-शब्दों की भावना के अनुरूप ही होना चाहिए। तभी विशेष स्थिति में किया गया वार्तालाप या बातचीत संवाद की श्रेणी में अभिहित किये जाते हैं। तात्पर्य यह है कि संवादों में शब्द जितना कहते हैं, उतने ही चेहरे के

टिप्पणी

उतार-चढ़ाव एवं हाव-भाव भी कहा करते हैं। कभी-कभी तो यह भी होता है कि किसी संवाद के शब्द भाव या विचार को उतना अभिव्यक्ति नहीं दे पाते जितने कि चेहरे के उतार-चढ़ाव, हाव-भाव या आगिक-वाचिक संचालन। कई बार नाटककार संवादों के शब्दों में मात्र सांकेतिकता से काम लिया करता है वह व्याख्या-बिन्दुओं या डेशो का प्रयोग करके एक बात बीच में ही छोड़ दिया करता है। ऐसी स्थिति में व्यक्त हाव-भाव एव अंग-संचालन ही उन्हें पूर्ण अभिव्यक्ति दे पाते हैं। अत: परिभाषिक शब्दावली में हमे उचित अभिनेता में संयत वार्तालाप या बातचीत को ही संवाद नाम से अभिहित कर सकते हैं। कांचनचा नाम गाय काय उपाय संवाद कई पकार के होते हैं। नाटक की दृष्टि से दो रूपों को ही मुख्य मानकर चल सकते हैं एक सम्पूर्ण संवाद, अर्थात् जिनमें अभिनेयता का संयम तो रहता है, पर वक्ता पात्र अपनी बात कहने के लिए पूर्ण शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग करता है। कही भी अधूरापन दिखाई नहीं देता। दूसरे सांकेतिक संवाद। इस प्रकार के संवाद प्राय: असंतुलन एवं अव्यक्त मन: स्थितियों के द्योतन के लिए या फिर भावावेश का स्थितियों को अभिव्यक्ति के लिए ही नाटकों में योजित किये जाते हैं। इस प्रकार का सवाद-योजना में नाटककार सांकेतिकता के तत्व का समावेश करने के लिए व्याख्या-बिन्दुओं (....) या फिर डेशो (-) आदि का सहारा लिया करता है। इस प्रकार के संवाद प्राय: अत्यधिक संक्षिप्त और कभी-कभी तो एक-शब्द मात्र ही हुआ करते हैं

जैसे

लड़का - (उसके पीछे जाने को होकर) मैं देखता हूँ इसे। कम से कम इस लड़का को तो मुझे ....।

स्त्री - सुन।

लड़का - (क्सिी तरह निकल जाने की कोशिश में) पहले मैं जाकर इसे .... ।

स्त्री - (काफी सख्त स्वर में) पहले तू आकर यहाँ ..... बात सुन मेरी।

इसी प्रकार पहले प्रकार के अर्थात् संपूर्ण संवाद को भी एक उदाहरण देखिये

लड़का -तुम्हारा बॉस न होता तो उस दिन मैने कान पकड़ कर घर से निकाल दिया होता। सोफे पर टाँग पसारे आप सोच कुछ रहे हैं, जाँघ खुजलाते देख किसी तरफ रहे हैं और बात मुझसे कर रहे हैं-(नकल उतारता) श्अच्छा यह बतलाइये कि आपके राजनीतिक विचार क्या हैं?' राजनीतिक विचार हैं मेरे खजली और उनका मरहम।

स्पष्टत: संवादों के इन दोनों रूपों का 'आधे-अधूरे' नाटक में पूर्ण सफलता के साथ प्रयोग हुआ है। इसमें बाह्य गौरव तो है ही, प्राण या आत्म-तत्व या अपने समग्र रूप में विद्यमान है। नाटकों में इनके अतिरिक्त संवादों का एक अन्य रूप भी हुआ करता हैं उस रूप को परम्परागत संस्कृत नाटकों में 'आकाश-भाषित' और आजकल 'आत्म-संभाषण' नाम-रूप दिया जाता हैं। इसका प्रयोग प्राय: अकेला पात्र किया करता हैं इनकी विशेषता यह होता है कि एक ही पात्र स्वयं ही प्रश्न करता हैं और उनके उत्तर भी स्वयं देकर विशेष स्थितियों या घटित हो की घटनाओं का सूचना दे दिया करता है। 'आधे-अधूरे' नाटक में एक प्रकार का विशुद्ध वाद-योजना का स्वरूप नहीं मिलता। फिर भी आरम्भ के प्रथम अंक में संवादों को हम इस श्रेणी में एक सीमा तक रख सकते हैं। हाँ, यदि हम उन्हें, आकाश-भाषित' या 'आत्म-सभाषण' न कहना चाहे, तो नाटक का नव्य-विधा के अनुरूप उन्हें हम नया नाम-रूप दे सकते हैं। हमारे विचार में वह नया नाम-रूप हो सकता है-परिचयात्मक-संवाद। वैसे संस्कृत नाटकों की भूमिका में सूत्रधार, नट, नटी आदि पात्र जो संवाद बोला करते थे, 'आधे-अधूरे'

टिप्पणी

नाटक के आरम्भ के संवादों का यह 'परिचयात्मक-संवाद' विधा एक प्रकार से उनसे मिलती-जुलती है। 'आधे-अधूरे में इस प्रकार का संवाद योजना का मूल प्रेरणा-स्रोत भी संस्कृत के नाटक ही हैं। अंतर इतना ही है कि संस्कृत नाटकों में सूत्रधर नर, नट-नटा आदि पात्र नाटक के लेखक, विषय आदि के बारे में परिचय देते हैं, जबकि यहाँ एक मुख्य पात्र (पुरुष एक) का अपना, अपने परिवेश और परिस्थितियों का और इस रूप में आज के जीवन का अनेक विड़बनाओं का परिचय दिया गया है फिर भी संवादों के इस रूप को मूल-चेचना निश्चय ही संस्कृत नाटकों के उपर्युक्त रूप जैसा ही हैं उदाहरण देखिए

का.सू.वा. (कुछ अंतर्मुभाव से सिंगार को राख झाड़ता) फिर एक बार, फिर से फिर से वही शुरुआत ....। (जैसे कोशिश से अपने आप को एक दायित्व के लिए तैयार करके सोफे से उठना पडता है।) मै नही जानता आप क्या समझ रहे हैं, मै कौन हूँ, और क्या आशा कर रहे हैं मैं क्या कहने जा रहा हूँ। आप शायद सोचते हो कि मैं इस नाटक में कोई एक निश्चित इकाई हुँ अभिनेता, प्रस्तुतकर्ता, व्यवस्थापक या कुछ और। परन्तु में अपने संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कर सकता। **क्योंकि यह नाटक भी अपने में मेरी ही तरह अनिश्चित है।"**

संस्कृत नाट्य-विधा से परिचित और संस्कृत और संस्कृत नाटकों के अध्येता समझ सकते हैं कि वहाँ के सूत्रधार के समान यह सब नाटक-विषय, पात्र-विषय आदि का प्रतिपाद्य ही है। इसे मूल पात्र द्व ारा ही योजित करने का काम मोहन राकेश ने हिन्दी में पहली बार यहाँ किया है, यह एक निश्चित सत्य हैं इस प्रकार संवाद-योजना के स्वरूप पर निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि आधे-अधूरे' में संवाद-योजना के ये तीन रूप ही मुख्यत: उपलब्ध होते हैं। इन तीनों में से पहले दो रूप तो मोहन राकेश के पूर्ववर्ता नाटकों समेत सभी प्रकार के समस्या-नाटकों में मिलते ही हैं, हाँ तीसरा रूप निश्चय ही 'आधे-अधूरे' नाटक को अपनी और हिन्दी-नाटकों में पहली बार-योजना-स्वीकारी जा सकता है।

उपयुक्त और अच्छे संवादों का कुछ अपनी विशेषताएँ एवं गुण स्वीकार किये जाते हैं सबसे पहला और मुख्य बात तो यह कि संवाद नाटकीय मूल वस्तु के विधान, विकास और चरम परिणीत में पूर्णतया समर्थ एवं सहायक होने चाहिए। क्योंकि नाटकों में वस्तु-विधान का एक मात्र साधन या कारण-उपादान होता है अत: इस प्रकार की सामर्थ्य होना परम आवश्यक हैं दूसरे, संवाद वस्तु-विषय से संबंधित पात्रों के समग्र विधान, उनके चरित्र-चित्रण और चरम विकास में पूर्ण सक्षम एवं सहायक होने चाहिये। चरित्र-चित्रण में वास्तविक तात्पर्य पात्रों के केवल बाह्य व्यक्तित्व के निरूपण से नही है। वास्तव में ऐसा संवाद करते भी नही हैं, यदि करते भी हैं तो बहुत कम संख्या और मात्रा में। चरित्र-चित्रण से वास्तविक तात्पर्य पात्रों के अन्त: व्यक्तित्व एवं चरित्र उसके द्वारा उच्चरितसंवाद के शब्दों से पाठक या नाट्य-दर्शक के सामने-सजीव-साकार हो उठना चाहिए। उसका तथ्यगत रूपायन, उसके आंतरिक दुरावपूर्ण रूपों का भी सहज उद्घाटन संवादों का सफलता का एक बहुत बड़ा मानदण्ड स्वीकारा जाता हैं यानि आँसू बहाने वाला पात्र मगरमच्छ के आँसू बहा रहा है या वास्तविक अन्त: अनुभूतियों से परिचालित होकर, अतिरिक्त विवशता के आँसू बहा रहा है। इसको अपने सही रूप में पाठकों या दर्शकों के सामने सम्प्रेषित कर देने में ही संवादों को वास्तविक एवं निर्विवाद सफलता है।

इन मुख्य बातों के अतिरिक्त व्यावहारिकता, पात्र-स्थिति-सापेक्षता, सरलता, सक्षिप्तता, चुस्ती, चुटीलापन, भाव-प्रवणता आदि अच्छे संवादों के अन्य गुण माने जाते हैं। भाषण की सीमा तक या भाषण जैसा संवादों की लम्बाई नाटकों में हमेशा ही उपेक्षणीय मानी गई हैं भाषण और सवाद का अन्तर स्पष्ट हैं संवादों का भाषा भी अभिव्यक्ति सक्षम, सरल, चुस्त, चुटीली और स्वाभाविक होनी चाहिए। कई बार संवाद-योजना करते समय पात्रों का आयु, शिक्षा, सामाजिक परिवेश, देश-काल आदि अन्य बातों

टिप्पणी

का ध्यान रखना भी प्राय: अनिवार्य हो जाया करता हैं जटिलता, कठिनता और अबूझता तो किसी भी स्थिति में, विशेषत: रंगमंचीय नाटकों में, सही नहीं मानी जाती है। इसी प्रकार मनोरंजकता या रोचकता, यथार्थता, प्रभाविष्णुता आदि अच्छे एवं उपयुक्त संवादों के अन्य गुण तथा विशेषताएँ स्वीकार की जाती हैं।

इस प्रकार, मुख्य रूप से, कहा जा सकता है कि उपयुक्त और अच्छे नाटकों के संवादों का योजना करते समय नाटककार को मुख्यत: इन्ही गुणों एवं विशेषताओं का अनिवार्यत: ध्यान रखना होता है। इन्हीं गुणों एवं विशेषताओं की कसौटी पर ही 'आधे-अधूरे' नाटक की संवाद-योजना की परख यहाँ प्रस्तुत है।

मोहन-राकेश ने संवाद के सभी रूपों का प्रयोग एकदम स्वच्छ, मुक्त एवं स्वाभाविक रूप से किया हैं सबसे बड़ा और मुख्य बात तो यह है कि आज का नाट्य-शिल्प एवं रोग-शिल्प जिस प्रकार के सरल, सुगम, स्वाभाविक, अभिव्यक्ति सक्षम और जिस प्रकार के संवादों की माँग करता है, राकेश के प्रस्तुत नाटक के संवाद सभी दृष्टियों से उसी प्रकार के हैं अपने पूर्ववर्ती, आषाढ़ का एक दिन' और लहरों के राजहंस' नाटकों में काव्यमयता आदि का विशेष आग्रह प्रदर्शित किया है। इसके कारण संवादों को भाषा में काव्यमयता का गुण तो अवश्य आ गया है, पर वहाँ भाषा सामान्य पाठक एवं दर्शक का दृष्टि से यदि कठिन नहीं तो गहन-गंभीर आवश्यक हो गई हैं इसके विपरीत 'आधे-अधूरे' में संवाद योजना करते समय किसी प्रकार की काव्यमयता का आग्रह नहीं रखा गया। इसी कारण यहाँ संवादों का एक अपना वैशिष्टय है और वह वैशिष्ट्य अभिनेयता और रंगमचीय दृष्टियों से ही अधिक हैं यहाँ इनका एक प्रमुख विशेषता है।

इतना सब होते हुए भी संवादों द्वारा व्यक्ति अनुभूति में किसी भी तरह की शिथिलता नहीं आने पाई। प्रत्येक संवाद वक्ता पात्र के अत: बाह्य के साथ कुछ इस प्रकार से समजित है कि उसके व्यक्तित्व के सभी रूप स्वत: हो संवादीय शब्दों के पर्यावरणों में स्पष्ट-साकार होने लगते हैं। उससे मूल कथ्य एवं कथानक को भी गति, विकास एवं स्पष्टता प्राप्त होता हैं तात्पर्य यह है कि संवादों के नाटककार ने नाटक का अन्त: बाह्य समग्र स्थितियों को अनुकूलता का पूर्णतया ध्यान रखा है। संवादों का नाट्य-स्थितियों का अनुकूलता से भाषा को भी स्वाभाविक और सहज रखा है, इस बारे में महेश आनद का कथन है "नाटक के संवाद नाट्य-स्थितियों के अनुकूल हैं कोई भी संवाद रंग-स्थिति में बाधक नहीं बनता।' आगे अपनी बात को नाटक के संवाद-उदाहरणों द्वारा सटीक मानते हुए वे लिखते हैं "एक स्थान पर जब महेन्द्रनाथ जुनेजा से मिलने के लिए जाता है, क्योंकि उसके अनुसार हो सकता है कि कोई नया कारोबार चलाने का सोच रहा हो, जिससे मेरे लिए ..... इसका उत्तर देते हुए सावित्री कहती है "पहले ही कुछ कम नही किया है, इसके साथ वह झाड़न से कर्सियाँ आदि झाड़ना शुरू कर देती है। और कहा जाती है, 'इतना गर्द भरा रहता है हर वक्त इस घर में! पता नहीं कहाँ से चला आता है।' यहाँ केवल एक शब्द 'गर्द' के द्वारा घर के तनाव, बिखराव, घुटन और दोनों के विचारों का विषमता का और संकेत तो किया ही है, साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया है कि यह 'गर्द' जुनेजा की दी हुई है जिसे महेन्द्रनाथ उसके साथ व्यापार करके बटोर लाया हैं यह संवाद नाट्य-स्थिति के अनुकूल होने के साथ-साथ पात्र का क्रियाओं और आक्रोश के साथ जुड़ा हुआ हैं इसी विशेषता के कारण जो नाटकीय बिब बनते हैं, दर्शक उनके साथ यात्रा करता चलता है।" ' तात्पर्य यह है कि राकेश ने स्थितिनुकूल (अन्त: बाह्य दोनों प्रकार की स्थितियाँ) संवाद-योजना करने में यहाँ विशेष दक्षता का परिचय दिया है। यह दक्षता उसके अन्य नाटकों में इतनी स्पष्टता एवं तीव्रता के साथ निश्चित ही दिखाई नहीं देता।

इस नाटक की संवाद-योजना के मध्य एक अन्य अत्यधिक विशिष्ट गुण भी दिखाई देता हैं उसे हम सवाद-योजना का मौन रूप कह सकते हैं। इनके स्थानों पर पात्र संवाद बोलते-बोलते रूक जाते हैं,

टिप्पणी

एकाएक नि:शब्द से परस्पर देखने या इधर-उधर का कुछ व्यर्थ सा क्रिया-प्रक्रियाएँ करने लगते हैं। पर यह मौन और व्यर्थ की किया-प्रक्रियाएँ निश्चित ही संवाद के शब्दों से भी कही अधिक कह जाती है। सारा नाटक आदि से अन्त तक तनाव एवं आंतरिक घुटन का स्थितियों में ही घटित होता हैं। संवाद योजना का यह मौन या नि:शब्द रूप वास्तव में तनाव और घुटन से पूर्ण क्षणों को बोधात्मक किन्तु मूक स्वर प्रदान करता है। वे व्यर्थ सी क्रियाएँ जैसे नि:शब्द या मौन-संवादों के क्षणों में भी नाटक का दर्शक किसी ऊब, व्यक्ति-क्रम या असबद्धता का अनुभव नहीं करता, बल्कि कथन एवं कथानक के साथ पूर्णतया जुड़ा रहता हैं। कहा जा सकता है कि वह और भी अधिक जुड़ जाता है। इस प्रकार संवादों का शाब्दिक एवं साकेतिक योजना के बीच आने वाले मौन-संवादों या नि:शब्द संवादों के भरे एक प्रंसग को एक उदाहरण देखें -

स्त्री - (गहरा वितृष्णा के साथ) जितने नाशुक्रे आदमी तुम हो, उससे तो मन करता है कि आज ही मैं...।

(कहती हुई अहाते के दरवाजे की तरफ मुडती है। कि बाहर से बड़ी लड़की की आवाज सुनाई देती है)।

बड़ा लड़का - ममा!

(स्त्री रूककर उस तरफ देखती हैं चेहरा कुछ फीका पड़ जाता है।)

स्त्री - बौना आया हैं बाहर।

(पुरुष एक न चाहते मन से अखबार लपेट कर उठ खड़ा होता है।)

पुरुष एक फिर उसी तरह आया होगा।

स्त्री-जाकर देख लोगे क्या चाहिए उसे?

(बड़ी लड़की की आवाज फिर सुनाई देती है।)

बड़ा लड़की - ममा, टूटे पंचास पैसे देना जरा।।

(पुरुष एक किसी अनचाही स्थिति का सामना करने की तरह बार के दरवाजे की तरफ बढ़ता है।)

स्त्री-पचास पैसे हैं ना तुम्हारी जेब में? होंगे तो सही दूध के पैसों से बचे हुए।

इस प्रसंग के संवादों में जो गैप बार-बार आया है, उसमें जिस प्रकार की क्रियाएँ की गई है स्त्री-पुरुष के संबंधों पारस्परिक तनावों एवं हीनता से भरी मन; स्थितियों को तो व्यक्त करती ही हैं. आर्थिक एवं अन्त: बाह्य स्थितियों को भी नि:शब्द कह देती है। संवाद-योजना का यह नव्य-भव्य एवं भौतिक रूप हो अन्य कहाँ कम ही दिखाई देता है।

संवादों में स्तरीय भिन्नता रहते हुए भी समग्र अनुभूति में कहीं किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती, यह एक अन्य विशेषता है। इस प्रकार का भी एक प्रसंगीय उदाहरण प्रस्तुत कर देना उचित रहेगा। सिधानिया के घर पर आने की चर्चा चल रही हैं उस समय बड़ी लड़की (बिन्नी), लड़के (अशोक) और स्त्री (सावित्री) में जो संवाद चलते हैं, वे इसे दुहरे स्तर के अच्छे उदाहरण है। देखिए

लड़का - मुझे नही चाहिए नौकरी। कम-से-कम उस आदमी के जरिये हरगिज नहीं। बड़ी लड़की-क्यों हरगिज नहीं। लड़का-चुकंदर है? वह आदमी है? जिसे न बैठने की शऊर है न बात करने का।

स्त्री-पाँच हजार तनख्वाह है, उसकी। पूरा दफ्तर सँभालता है, पर इतना होश नहीं कि अपनी पतलून के बटन .....।

टिप्पणी

इतनी ही नहीं, इसी प्रसंग में अशोक सिंघानिया की तीहरकतों की नकल उतारते हुए उसे घर से बाहर तक निकाल देने की बात कह देता है। तब सावित्री अपना माथा सहला कर बड़ी लड़की (बिन्नी) से कहती है-"ये लोग हैं जिनके लिए मैं जानमारी करती हूँ रात-दिन।' यहाँ स्तरीय भिन्नता है, एक साथ दुहर स्तरा तो है ही, मन:स्थितियाँ भी विभिन्न एं दुहरी-सी दिखाई देता है, फिर भी सावित्री के अंतिम कथन में बात वहीं, उसी नाटक के संपूर्ण बिंब-तनाव एवं घुटन पर ही आकर केंद्रित हो जाती है। मूल संवेदना का तारतम्य कही भी टूटने नहीं पाता। कथनांक की तीव्र गति, पात्रों के अन्त: बाह्य चारित्रिक उद्‌घाटन के संवाद ही है जिनके द्वारा यह सब स्वाभाविक पर द्रुत गति से घटित होता हैं संवादों की सक्षिप्तता यहाँ विशेष दर्शनीय है। राकेश के आषाढ़ का एक दिन' और लहरों के राजहस' आदि नाटकों में तनाव एवं मनोबेगों की अभिव्यक्ति के क्षणों में संवाद भाषण की सीमा से भी लंबे हो गये हैं। वहाँ क्रमश: कालिदास और नंद जब भावावेश एवं तनाव के क्षणों में बोलने लगते हैं, तो निरन्तर बोलते ही जाते हैं। उन नाटकों के तृतीय अंकों में आने वाले संवाद-हालाँकि वे कथ्य एवं कथानक को चरम परिणतियों के द्योतक हैं, फिर भी अत्यधिक लम्बे हो गये हैं। इसके विपरीत 'आधे-अधूरे' नाटक में किसी भी प्रकार की स्थिति से संवादों की संक्षिप्तता, सार-पूर्णता एवं तात्त्विकता एक ही स्तर की बनी रही है। संवाद के रूप से याद एक शब्द भी कहा गया है, तो वह एक समूचे बिंब का विधायक है। उदाहरण के लिए बड़ी लड़की बिन्नी का यह सक्षिप्त-सा संवाद देखिए

"मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गयी हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देता।"

यह संवाद बिन्नी के मायके और ससुराल दोनों का अस्वाभाविक एवं असुन्तुलित स्थितियों का बिंब सहसा उभार देता है। इसी प्रसंग में दो-एक और संक्षिप्त देखे। संवाद महेन्द्रनाथ और सावित्री के हैं

स्त्री - वह एक वस्तु तुम से बात नहीं कर रहा। पुरुष एक पर बात तो मेरे ही घर की हो रही है। स्त्री-तुम्हारा घर। हँह!

ध्यान दीजिए स्त्री के कथन पर "तुम्हारा घर! हुँह!" क्या यह अत्यंत संक्षिप्त-सा संवाद पुरुष एक महेन्द्रनाथ की दयनीय एवं सर्वथा उपेक्षित स्थितियों, दूसरी और सावित्री के अंह और व्यंग्य-व्यवहार की समग्र चित्र हमारे सामने प्रस्तुत नहीं कर देता? घर का तनाव और घुटनपूर्ण वातावरण, टूटते संबंधों की प्रक्रिया भी तो इन दो-तीन शब्दों के संवादों की योजना जिस स्वाभाविक सजगता के साथ की गई है, उसमें जो तीखापन, व्यंग्य और कटुता है, वह इस समूचे नाटक का प्राण है इस प्रकार के सहज स्वाभाविक संवादों की योजना राकेश जी के अपने ही अन्य नाटकों में क्या, अन्य नाटककारों में भी कही नहीं मिलती।

3.7 आधे-अधूरे : उद्देश्य अथवा प्रतिपाद्य

आधे-अधूरे' नाटक हमारे समाज-विशेष रूप से नागर समाज के जीवन की विसंगतियों, विडम्बनात्मक स्थितियों के संघन बिन्दुओं, पात्रों की मन:स्थितियों एवं संवेदनाओं की टकराहट के आन्तरिक विस्फोट को नाटकीय रूप से रेखांकित करता है। इस नाटक में राकेश जी ने आधुनिक युगीन सांस्कृतिक-पारिवारिक विघटन, अजीब कशमकश, घुटन, अलगाव, दिशाहीनता, ईर्ष्या और आवारगी आदि के संकट को रेखांकित किया है।

आधे-अधूरे' वर्तमान समाज के ऐसे सभी मनुष्यों की नाटकीय जिन्दगी का प्रामाणिक दस्तावेज है। जो अर्थलिप्सा, भौतिकता और काल्पनिक अहं की मृग-मरीचिका में फँस कर पारिवारिक एवं आध्यात्मिक शांति को पूरी तरह खो देते हैं। आत्मिक सम्बन्धों को भूलकर मनुष्य सांसारिक अर्थ के चक्कर में

टिप्पणी

अपने जीवन के मूल अर्थ को स्वीकार आधी-अधूरी जिन्दगी वेतान के लिए विवश है। जीवन के हर क्षेत्र में अधूरेपन की भावना से ग्रस्त तथा पीड़ित हैं मोहन राकेश के शब्दों में इस नाटक में "अधूरे का मतलब इनकंम्लीट और आधे का मतलब हाफ है। यह आज के सामान्य वर्ग से सम्बन्धित है जो अपने में आधा भी है। और अधूरा' भी। यह इस शहर के एक मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है जिसे परिस्थितियाँ निचले वर्ग की ओर धकेलती जा रही है। उनके जोश, पराजय, इच्छाएँ, संघर्ष और इसके साथ-साथ स्थिति का हाथ से फिसलते जाना मैने सब कुछ इसमें दिखाने की कोशिश की है ।"

विडम्बना यह है कि स्वयं आधे-अधूरे होने के बावजूद हम दूसरे के अधूरेपन के बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं। और काल्पनिक पूरेपन की तलाश में भटककर अपनी और दूसरों की जिन्दगी नरक बना देते हैं। इस नाटक में मध्यवर्गीय शहरी परिवार का मुखिया महेन्द्रनाथ पराश्रित एंव निठल्ला हो गया हैं। फलत: उसकी पत्नी सावित्री नौकरी करके परिवार का पालन-पोषण कर रही हैं परन्तु वह धन, ऐश्वर्य और काल्पनिक पूरेपन की तलाश में मर्यादा की चौखटे लाँघकर आवारा (फ्लर्ट) हो गई हैं बड़े-बड़े नामधारियों, पदाधारियों के सम्पर्क में आती हैं। इन नामधारी और पदधारी पुरुषों से एक तरफ तो सेक्स को पूति चाहती है और दूसरी तरफ अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार। सावित्री की यह आवारगी एक अच्छे-खासे परिवार को विघटित कर देती है। निठल्लेपन, बेकारी के कारण परिवार का मुखिया अपने-आपकों पंगु अनुभव करता है, लड़का अशोक अपनी माँ के पुरुष-मित्रों एवं अपनी बेरोजगारी से क्षुब्ध है। बड़ी लड़की तो घर के दमघोटू वातावरण से बचने के लिए प्रेमी मनोज के संग फरार हो जाती हैं जीवन के हर क्षेत्र में हारा पुरुष महेन्द्रनाथ अपना प्रतिकार स्त्री से लेता है। बिन्नी मध्यवर्गीय परिवार की इस भयावह स्थिति को व्यक्त करते हुए कहती है।

"मै यहाँ थी, तो मुझे कई बार लगता था कि मैं एक घर में नहीं, चिड़िया घर के एक पिंजरे में रहती हूँ ..... आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ डैडी का चीखते हुए ममा के कपडे तार-तार कर देना-खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर-मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयावह दृश्य इस घर में देखें हैं मैने, कभी भी बाहर का आदमी उन सबकों देखता-जानता है यहीं कहता कि क्यों नहीं बहुत पहले ही ये लोग .... ।"

आधुनिक युग के अधिकांश मध्यवर्गीय परिवारों को इस यंत्रणी में पिसना पड़ता है।

इन नाटक में स्त्री-पुरुष के संबंधों में आई उदासीनता का निरुपण यथार्थ के धरातल पर हुआ है। इन सम्बन्धो में अब साथ-साथ रहने की और सामाजिक संबंधों को ढोने की कटुता ही शेष है। गृहपति की मर्यादा से वंचित महेन्द्रनाथ अपने व्यंग्यों से स्त्री को छेदता रहता हैं स्त्री के पुरुष मित्रों के घर आने से पहले घर से बाहर निकल पड़ता है। अपनी इस नियति को स्वीकर करने के लिए महेन्द्रनाथ विवश है।

"मैं इस घर में एक रबड़-स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकडा हूँ-बार-बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकडा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में? नहीं बता सकता है? मेरे भरोसे तो सब कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही बिगड सकता हैं (लड़के की तरफ इशारा करके) यह आज तक बेकार क्यों घूम रहा है? मेरी वजह से/(बड़ी लड़की की तरफ इशारा) यह बिना बताए एक रात घर से क्यों चली गई थी? मेरी वजह से। (स्त्री के बिल्कुल सामने आकर) और तुम भी .... इतने सालों से क्यों चाहिती रही हो कि ....? अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिन्दगियाँ चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा।

टिप्पणी

महेन्द्रनाथ के इस कथन में जो लाचारी, विवशता, नैराश्य है वह आर्थिक, सामाजिक एवं पारिवारिक स्तर पर एक ऐसे टूटे हुए व्यक्ति का खण्डित प्रतिबिम्ब है जो वर्तमान युग की स्तरीकरण की दौड़ में भागने वाले किसी भी मध्यवर्गीय मनुष्य के चेहरे पर देखी जा सकती है।

नाटककार ने इस नाटक में यह स्पष्ट किया है कि जब परिवार की आय पर्याप्त थी तो चार सौ रूपए वाले किराए के मकान में महेन्द्रनाथ का परिवार रहता था, टैक्सियों में आना-जाना होता था, बच्चों की कान्वेंट फीसें जाती थी, दावतें होती थी, शराब चलती थी, किन्तु इस ऐय्याशी ने उन्हें अपने सामाजिक स्तर से ऐसे धकेल दिया है कि वह मध्यवर्गीय परिवार एकाएक निम्न मध्यवित्तीय परिवार की श्रेणी में आ गया।

सामाजिक स्तरीकरण की यह भूख महेन्द्रनाथ के पूरे परिवार की सुख-शान्ति को लील गई।

नाटककार का उद्देश्य केवल नर-नारी सम्बन्धों का विश्लेषण भर नहीं हैं नाटककार ने आज की युवा पीढ़ी (अशोक, बिन्नी) के दिशाहीन आक्रोश, निष्क्रिय जीवन आदि को भी गहरे स्तर में निरुपित किया है। अशोक अपनी कामुक प्रवृत्ति से परिचालित होकर अश्लील तस्वीरें काटता है, सिलाई सेंटर वाली वर्णा के पीछे जूतियाँ चटकता है तो बिन्नी अपनी माँ के प्रेमी मनोज के साथ घर से भाग जाती है। उनसे भी कहीं आगे बढ़कर किन्नी जैसी छोटी लड़की के भीतर जमी यौन-उत्सुकता के जरिए नाटककार ने जीवन की विंसगतियों की तरफ संकेत किया है। किन्नी घर से सभी सदस्यों को शमिट्टी का लौंदा' कहती है।

नाटककार ने स्पष्ट करना चाहा है कि आधुनिक महानगरीय परिवेश में मानवीय असंतोष और कामनाआ की पूर्ति न होने के कारण व्यक्तित्व एंव संबन्धों में अधूरापन पैदा होना स्वाभाविक है। इस नाटक में भी महेन्द्रनाथ का परिवार अपनी स्तरीयता की होड़ के कारण विघटन के कगार पर पहुँच गया हैं नाटक का नायिका सावित्री अपनी इच्छाओं, असंतोष एवं झूठे अहं के कारण न तो कभी अपने पति के प्रति समर्पित हा पाती है और नही बच्चों को पर्याप्त मातृत्व दे पाती है। वह सामाजिक पारिवारिक और नैतिक मूल्यों को ताक पर रखकर क्रमशः शिवजीत, जुनेजा, मनोज, सिंघानिया, जगमोहन आदि पुरुषों से अनैतिक सम्बन्ध बनाती है। सावित्री महेन्द्रनाथ से प्रेम विवाह करने के दो साल बाद ही उससे उकता जाती है एवं उसे अधूरा समझने लगती है। उसके बाद वह काल्पनिक पूरेपन की तलाश में चार पुरुषों में सम्बन्ध बना कर भी अकेली, अधूरी अशान्त ही बनी रहती है। पुरुष चार अर्थात जुनेजा सावित्री की अन्दर की इस आवारगी का प्रकटन करते हुए कहा है।

पुरुष चार - "असल बात इतनी ही कि महेन्द्र की जगह इनमें से काई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल-दो साल बाद तुम यही महूसस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिंदगी में भी ऐसे ही कोई जुनेजा कोई, शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचती, यही सब महसूस करती। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचौन बनी रहती।"

यहाँ पर पुरुष चार के शब्दों से स्पष्ट है कि इस नाटक में सावित्री और अन्य पात्र अपने अधूरेपन को भरने के लिए विकृत मूल्यों का दामन पकड़ते हैं। जिसके कारण उत्पन्न असामंजस्य और कटुता सारे परिवार को बिखेर ही नहीं देती बल्कि एक जहरीले वातावरण का निर्माण भी कर देती है जो पूरे परिवार की तबाही का कारण भी बन जाती है।

टिप्पणी

डॉ. नरनारायण राय-इस नाटक के व्यापक उद्देश्य को लक्षित करते हुए कहते है-आधे-अधूरे की रचना के पीछे नाटककार का यह उद्देश्य रहा है कि वह व्यक्तित्व और संबंधों, दोनों के अधूरेपन को उजागर कर सके। इस बात को कहने के लिए नाटककार, ने जिस जीवन स्थिति का चुनाव और निर्माण किया है वह अपने आप में भी कुछ कह जाती है उसे पारिवारिक विघटन की दिशा का चित्रण, बदलते हुए आर्थिक मूल्यों के संदर्भ में सम्बन्धों के बदलते हुए मूल्यों का परीरक्षण परिस्थितिय के समक्ष आदमी की पराजय की नियति का दिग्दर्शन, मानवीय संतोष का अधूरापन और कामनाओं की अतृप्ति का अंकन आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की गाथा, महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार की अभावग्रस्ता आदि को कथ्य से समाहित किया लेकिन मुख्य कथ्य नर-नारी सम्बन्ध और नियति का हस्तक्षेप तथा इन सबके बीच में उभरने वाले जीवन के अधूरेपन को व्यक्तित्व के अधूरेपन का अहसास करना वस्तुता नाटक का मूल कथ्य है।"

3.8 आधे-अधूरे : आधुनिकता

नाटककार मोहन राकेश के नाटकों पर प्रकृतिवाद, अस्तित्ववाद और यथार्थवाद का प्रभाव है। राकेश जी की अनुभूति में बौद्धिकता की प्रधानता है तथा वैयक्तित्व-स्वतन्त्रता, औद्योगीकरण, नगरीकरण, कुण्ठा, तनाव, विद्रोह, अजनबीपन, अमानवीयता, घोर नैराश्य, क्रूरता, विसंगति, अनिश्चय आदि आधुनिक भाव बोधों से युक्त मोहन राकेश इन सभी आधुनिक संकटों से गुजरे हैं और आधुनिकता को सृजनात्मक अभिव्यक्ति दी है। आधे-अधूरे' नाटक का सम्पूर्ण परिवेश आधुनिक है। इस नाटक में मध्यवर्गीय पारिवारिक विघटन की गाथा

और स्त्री-पुरुष संघर्ष, तनाव का चित्रण चरम सीमा तक हुआ है। इस नाटक के समकालीन परिवेश में आज के बुद्धि वर्ग के कनफ्यूजन और उनके भावात्मक जीवन की असहाय चीख है। पूरे नाटक में सम्बन्धों का विघटन और जुड़े रहने की छटपटाहट आर्थिक विवशता और दोहरेपन, विलगाव और खण्डित होने की प्रक्रिया और नए मूल्यों की खोज आधुनिकता के सन्दर्भ में व्यक्त हुई है।

नाटक में आधुनिकता का बोध उस स्तर पर भी होता है जब बड़ी लड़की अपनी इच्छानुसार घर से भागकर अपने प्रेमी से शादी करती है। शादी के बाद उसे अपने नए घर में भी सब कुछ गलत लगता है। इसका कारण हवा' बताया गया है जो बड़ी लड़की और मनोज के बीच से गुजर कर बेचैनी पैदा कर गई है। यह हवा' आधुनिक युग की अर्थलिप्सा, ऊँची महत्वाकांक्षाओं की हवा' है।

पुरुष दो और स्त्री के संवादों से भी आधुनिकता का बोध होता है पुरुष की बातों से उसकी भोगलिप्सा. कामुकता आदि बुरी प्रवृत्तियों का प्रकटन जो कि आज के युग के अधिकारी वर्ग की संकीर्ण एवं लोलुप दृष्टि की परिचायक है। पुरुष दो अपनी कामुकता का प्रदर्शन करता हुआ कहता है

"*पुरुषदो*- अच्छा-अच्छा .... हाँ। ठीक है ..... देखूगा मैं। (घड़ी देखकर)

अब चलना चाहिए। बहुत समय हो गया (उठता हुआ) तुम घर पर आओ किसी दिन। बहुत दिनों से नहीं आई।

स्त्री और बड़ी लड़की साथ ही उठ खड़ी होती है। स्त्री- मैं भी सोच रही थी आने के लिए। बेबी से मिलने।

पुरुष दो वह पूछती रहती है, आंटी इतने दिनों से क्यों नहीं आई? बहुत प्यार करती है अपनी आंटियों से। माँ के न होन से बेचारी.....।

टिप्पणी

परिवार को सुचारु रूप से चलाने के लिए नारी का योगदान होता है। नारी त्याग, ममता, स्नेह, वात्सल्य के रूप से अपने परिवार रूपी वृक्ष को सींचती है। पहले नारी का कार्यक्षेत्र केवल घर की चारदीवारी तक ही सीमित था। नारी ने शिक्षा पाकर अपने कार्यक्षेत्र के दायरे को व्यापक बना दिया। वह रूढ़िवादी एवं परंपरावादी परिवेश से मुक्त होकर आधुनिक चेतना पाकर एक ऐसी विचारधारा की ओर उन्मुख हुई जो पूर्व स्थिति से भिन्न है। आधुनिकता की इस नई चेतना ने ही उसके समक्ष कुछ असंगतियों को जन्म दिया जो बाद में समस्या बन गई। यह नाटक नारी की उन समस्याओं को उजागर करता है यह नवीन बच्चे की एक ऐसी माँ की कथा है जिसको उसकी खोखली महत्त्वाकांक्षा के असन्तोष, आक्रोश, असबद्धता, अजनबीपन (अपने पति और बच्चों के प्रति) और अकेलेपन की मनहूसियत ने चारों ओर से घेर रखा हैं जीवन के प्रति उसकी इन असंतुष्टि अतृप्ति का कारण है, उसके कुत्सित और भ्रमित जीवन जूल्य।

'आधे-अधूरे' की सावित्री समर्पणशीला, कर्त्तव्यवेदी पर मर मिटने वाली नारी नहीं है। वह व्यक्तिगत सुख को महत्त्व देती है। वह दुखी है क्योंकि महेन्द्रनाथ से विवाह करके वह यह अपेक्षा रखती है कि पति उसके अधूरेपन को पूर्णत्य प्रदान करे इसके लिए जरूरी है कि पति पूर्ण हो। जुनेजा जब सावित्री को दिक्कारता है कि महेन्द्रनाथ में हीन भाव आ गई है उसके लिए सावित्री जिम्मेदार है, महेन्द्रनाथ की बीमारी के लिए भी वह जिम्मेदार है, तब वह भड़क जाती है, कहती है श्यूँ तो कोई भी आदमी की तरह चलता-फिरता, बात करता है वह आदमी ही होता है, पर असल में आदमी होने के लिए यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक मादा, अपनी एक शख्सियत हो।

सावित्री एक पूरे आदमी की तलाश में एक, दो, तीन और चार पुरुषों को आजमा चुकी हैं कुछ और नामों को ..... संकेत दिया गया है जिनको वह आजमा चुकी है। इन सबको उसने आधा-अधूरा पाया है, एक-सा पाया है। सावित्री के इन कथन में कि "सब-के-सब एक-से हैं, अलग-अलग मुखौटे पर चेहरा? ..... सबका एक ही।" और पुरुष चार के इस जबाब में आधुनिकता बोध गहराने लगता है

जुनेजा सारी स्थिति का जायजा लेने के बाद कहता है "इसकी जगह आज अगर जुनेजा, जगमोहन, शिवजीत या ..... भी होता जब भी वह इतनी ही असन्तुष्ट इतनी ही अपूर्ण रहती जितनी अब है। क्योंकि उसे जीवन को किन्ही निश्चित अर्थों से जीने की दृष्टि नहीं पाई हैं वह कहता है कि उसके लिए जीने का मतलब है, कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर, कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। इतना कुछ तम्हे एकसाथ न मिल पाता और इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती तुम इतनी ही खाली, इतनी ही बेचौन बनी रहती ।"

नाटककार ने जुनेजा के इस कथन से स्पष्ट किया है कि आधुनिकता के नाम पर आज की नारी अपने परम्परागत विचारो को त्यागकर अपनी बढ़ती महत्त्वाकांक्षाओं के लिए अपने व्यक्तित्व' के ह्रास एवं पारिवारिक विघटन का करण बनती है।

आधुनिक युग से नारी घरेलू दाम्पत्य जीवन की जिम्मेदारी के साथ-साथ नौकरी करके अर्थापार्जन भी कर रही है इस प्रकार दायित्व के निर्वाह में वह अपने मशीनीकरण का विद्रोह भी करती है। सावित्री भी अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए नौकरी करती है तथा घर आने पर सारे सामान को अव्यवस्थित देखकर क्षुब्ध हो जाती है। वह क्षोभ में लड़के से कहती है,"यहाँ सब लोग समझते क्या हैं ? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीस-पीस कर रात को दिन और दिन को रात करती है? मगर किसी के मन में जरा भी ख्याल नहीं है इस चीज के लिए कि कैसे मैं ....।" जो स्त्री माँ बनकर, पत्नी, नौकर, गृहस्थी का 'घर' बनाए रखती है, उसे यदि सारे सदस्य मशीन समझें तो आधुनिक परिवेश की नारी विद्रोह करती है।

टिप्पणी

महेन्द्रनाथ का बिखरा हुआ व्यक्तित्व आज के मानव के व्यक्तित्व का बोध कराता है। व्यापार में घाटा खाया हुआ, बल्कि बेकार-फालतू पति बनकर रह गया है। अब उसे पत्नी की जली-कटी सुननी पड़ती है। जिससे उसके स्वाभिमान आहत होता है। उसमें अपनी निरर्थकता, अपनी अस्मिता का ज्ञान जागता है, क्योंकि इस घर में उसे कोई कुछ नहीं समझता। उसे दुत्कार अनादर और अपमान सहना पड़ता है। वह फालतू आदमी हैं वह इस घर में रबर स्टैम्प भी नहीं, रबड़ का एक प्रयोग मात्र है बार-बार घिसा जानेवाला।' यह व्यक्ति के विघटन और अस्मिता और अस्मिता का प्रश्न आधुनिक स्थितियों में अस्तित्ववाद के कुछ पहलुओं को प्रकाशित करता है।

लड़के और लड़की बिन्नी की बातों से भी बहुत बार अस्वीकार और खीझ के माध्यम में आधुनिकता-बोध उजागर होने लगता है। लड़के की माँ को यह कहना है कि बुलाती ही क्यों हो ऐसे लोगों को जिनके आने से हम जितने छोटे हैं उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में।' परोक्ष रूप से इस बात की पुष्टि करता हैं कि आधुनिक युग में व्यक्ति के व्यक्तित्व का अस्तित्व रहना जरूरी है अन्यथा उसमें व्यर्थता का एहसास जगता है और यही व्यर्थता का एहसास आधुनिकता की एक प्रवृत्ति है और नाटक के अन्तिम पन्नों पर बिन्नी के ये शब्द कि मिट्टी के लादे-सबके सब मिट्टी के लादे' एब्सर्ड नाट्य-परम्परा के आधुनिक भाव बोधों जैसे लगते हैं। बड़ी लड़की का घर से भाग जाना, परन्तु वहाँ पर चौन न मिलना आधुनिक यान्त्रिक जीवन की व्यापक बेचौनी का सूचक है। इसने अपना पति अपने-आप चुना है, फिर भी वह वहाँ पर खुश नहीं। वह शादी से पहले समझती थी कि मनोज को उसने जान लिया है, परन्तु "अब वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था।' उसका यह कथन कि दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहे, एक हल में साँस ले उतना ही ज्यादा एक-दूसरे से अपने आपको अजनबी महसूस करे।' एलियेनेशन, कआव की स्थिति को उभारता है, जो आज के जीवन में घर कर गई है। आज हर व्यक्ति एक-दूसरे सत तो क्या खुद से भी अजनबीपन महसूस क्या है। यह अपने-आपको परिवेश, घर-परिवार-सबसे कटा हुआ महसूस करता है।

डॉ0 इन्द्रनाथ मदान के अनुसार, "माँ के घर को बेटी के घर से दोहराया जा रहा है। 'परन्त टटते-बिखरते परिवेश से आधुनकिता का बोध इतना मानव की नियति के स्तर पर नहीं है। जितना उसकी स्थिति के स्तर पर है और इतना जितना इसलिए कि एक स्तर को दूसरे स्तर से अलगाया नहीं जा सकता।' यहाँ (लड़की के घर में) भी 'अलगाव-अजनबीपन' की स्थिति है।

नाटककार ने अपने रंग संकेतों एवं मंच सज्जा में भी आधुनिक भावबोधों की अभिव्यक्ति की है। पारिवारिक विघटन का एक जीवन दृश्य नाटककार ने दिखलाया है, मंच पर - "दो अलग-अलग प्रकाश-वृत्तों में लड़का और बड़ी लड़की। लड़का सोफे पर औंधा लेट कर टाँगें हिलाता सामने पेशेसश के पत्ते फैलाए। बडी लड़की पढ़ने की मेज पर प्लेट रखे स्लाइसों पर मक्खन लगती। पास में टिन कटर और चीज, का एक डिब्बा। पूरा प्रकाश होने पर कमरे में वह बिखराव नजर आता है जो एक दिन ठीक से देख-रेख न होने से आ सकता हैं।

यहाँ वहाँ चाय की प्यालियाँ अस्त-व्यस्त चीजें। कमरे की यह अस्तव्यस्तता, बिखरापन, देख-रेख की कमी घर को संचालित करने वाली इकाइयों के बिखराव की प्रतिलिपी है। सब एक-दूसरे से विमुख होकर अपनी जिन्दगी जी रहे हैं। यहाँ इन सब से आधुनिक युग की विसंगतियों ही प्रकट होती है।

अत: निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि आधू-अधूरे नाटक की स्थितियों द्वारा नाटककार ने जमाने की सही नब्ज पर अंगुली रखी है जो सामयिक परिवेश में आधुनिकबोध को परखने में सक्षम है। नाटक बदलते जीवन-मूल्यों की कथा कहता है।

टिप्पणी

'आधे-अधूरे' में आधुनिक महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन का विराट अंकन है। आत्म-जिज्ञासा, आत्म-सन्तुष्टि, व्यक्तिगत ईमानदारी, विश्लेषणात्मिक दृष्टि, जीवन ढोने का अवसाद एवं क्लान्ति, जीवनचर्या में अवकाश की कमी। ये सब आधुनिकता की विशिष्ट पहचाने हैं। 'आधे-अधूरे' का प्रत्येक पात्र इन विशेषताओं को लिए हुए है। आधुनिकता व्यक्तित्व के स्वतन्त्र अस्तित्व में विश्वास रखती है। प्रस्तुत नाटक के परिवार के सभी पात्र अपने-अपने मन में अपनी-अपनी एक प्रतिमा बनाए बैठे हैं, जिसको वे किसी दूसरे की मानसिक प्रतिभा के लिए समर्पित नहीं कर सकते। प्रत्येक के लिए निजी इच्छा, निजी जीवन दृष्टि, निजी धारणाएँ, निजी जीवन मूल्य सबसे बढ़कर है। "वैवाहिक जीवन की मध्यवर्गीय विडम्बनाओं के कारण परिवार का प्रत्येक व्यक्ति आधा-अधूरा रहकर अपने-अपने ढंग का संत्रास भोगता है। प्रत्येक पात्र की नियति वृत्तात्मक है। सभी लोग पारस्परिक आकर्षण-विकर्षण से निकट दूर आते हुए बाहर जाकर भी वापस लौटने के नियति से बाध्य है।"

3.9 आधे अधूरे : युग बोध

'आधे-अधूरे' नाटक का सृजन स्रोत भी उनका युग परिवेश एवं निजी जीवन ही है। चिरन्तन काल से ही मानव परिस्थितियाँ से लड़ता आकर उन्हें न्वय परिवेश एवं आयाम प्रदान करता आ रहा है। परन्तु आज की यान्त्रिक मानसिकता भीतर-बाहर के दबावों, आर्थिक वैषम्यों एवं यौनाचारों की स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति ने परिवर्तन ला सकने की क्षमता पर एक प्रश्न चिन्ह सा लगा दिया है। तभी तो आज का मानव अपने ही आधे-अधूरेपन से संत्रस्त, अपने में ही दब-घुटकर उन्हीं परिस्थितियों में बने रहने के लिए विवश हो जाता है कि जिन्हें उसकी मानसिकता श्अयाचितश स्वीकार करती हैं तभी तो यह वितृष्णा से भरकर भी, बार-बार श्नये अर्थश के लिए जाकर भी जहाँ से शुरुआत करता है, वहीं लौट आने को विवश हो जाता है।

मोहन राकेश की नाट्य प्रतिभा अपने आस-पास बिखरे परिवेश में नई रचना (धर्मिता) की तलाश करती है। 'आधे-अधूरे' नाटक अपने समकालीनता के प्रतिबद्ध है। इसलिए वह अपने परिवेश के साथ व्यक्ति को आँक रहा हैं जिसमें उसकी निगाह इतिहास के परिवेश से हटकर, आज के यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले सामाजिक परिवेश पर गई है। मध्य वित्तीय स्तर से ढ़हकर निम्न मध्य वित्तीय स्तर पर आया हुमा एक परिवार उसका केन्द्र-बिन्दु है।

यग बोध की दृष्टि से इस नाटक के स्पष्ट किया गया हैं कि आज मानव स्वयं को ऐसी परिस्थितियों में जकडा हआ पाता है जो उसे आत्मकेन्द्रित तथा आत्मरत बना देती है। जिसके कारण उसका सम्बन्ध समाज तथा बाहरी जीवन से कट जाता है या शिथिल पड़ जाता है। अपने इस यथार्थ में उसकों अनेक स्वरूपों में प्रस्तत होना अनिवार्य हो गया हैं वह कभी विद्रोही है, तो कभी मात्र निषेधात्मक चीत्कार या आक्रोश है, कभी अजनबीपन का भटकाव है तो कभी सचेत सक्रिय एवं ठोस यथार्थ की पहचान है, कभी वर्जनाओं से प्राप्त असहनीय नैराश्य में भटकाव की असीमता एवं निरर्थकता को ढोने वाला अभिशप्त है अत: यह पूरा नाटक अपने परिवेश की उपज है/

इस नाटक का नायक महेन्द्रनाथ एक नाकारा निकम्मे और लिजलिजे किस्म का आत्मविश्वासहीन पुरुष है, जो अपने नाकारेपन के एहसास से छटपटाता है, किन्तु आर्थिक रूप से अपनी स्त्री की कमाई पर आश्रित रहने के कारण दयनीय स्थिति में जी रहा है। एक स्त्री है, जो अपने इस निकम्मे पति के प्रति खीझ से भरी घर की टूटती-बिखरती जिन्दगी से ऊब कर एक पूरे आदमी की तलाश में इधर-उधर भागती है वह चाहती है कि "असल आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक मादा, अपनी शख्सियत हो?' इसी मादे और शख्सियतवाले आदमी की तलाश में वह अधूरे आदमियाँ से

टिप्पणी

टकरा-टकरा कर लौटती है और अपनी खीझ से चीखती-चिल्लाती, तार-तार होती हुई उसी लिजलिजे आदमी के साथ जिन्दगी जीने के लिए मजबूर होती है। घर में रोज-रोज की यह चीख घर की बड़ी लड़की और लड़के तथा छोटी लड़की पर अपना प्रभाव डालती हैं बड़ी लड़की किसी के साथ भाग जाती है, जो बाद में पता चलता है कि उसकी माँ का ही एक प्रेमी था। लड़का आवारा और ध रीहीन निकल जाता है और "एलिजाबेथ टेलर, आड्रे हेपबर्न शर्लेमैम्लेन जनाब जिन्दगी काट रहे हैं। तेरह वर्ष की अवस्था की छोटी लड़की उद्धत, अशिष्ट और विद्रोह की आग में लिपटी इसी परिवेश के अनुसरण चौपट हो रही है। देखने में यह कहानी जितनी सीधी लग रही है परन्तु इसमें रोजमर्रा के दिखाई देने वाले पात्रों के मध्यम से मध्य वित्तीय परिवार की टूटती हुई कड़ियाँ और ढहते हुए मूल्यों का खाका पेश किया हैं जिन्हें देखकर लगता है इस नाटक के पात्रों में हममें से कोई भी हो सकता है। इसे महज एक साधारण परिवार की त्रासदी कहकर टाला जा सकना सम्भव नहीं है। यह एक आइना है जो अपने-अपने आस-पास के जीवन से साक्षात्कार कराता है। नाटक के अन्दर भी स्वाकरोक्त हैं "विभाजित होकर भी मैं किसी-न-किसी अंश में आपमें से हर एक व्यक्ति हूँ/"

आजादी के बाद की बदली हुई परिस्थितियों में सबसे भारी बदलाव आया-स्त्रियों की हैसियत में। इस परिवर्तन से प्रभावित होने वाला वर्ग था देश का सबसे बड़ा वर्ग यानी मध्यवर्ग। जहाँ धर्म और नैतिकता के बन्धन सबसे ज्यादा थे। इसलिए प्रतिक्रियाएं और विस्फोट भी सबसे ज्यादा इसी दायरे में हुए। सावित्री जैसी एक स्त्री अगर नौकरी करके अपने परिवार को पुरुष की तरह चलाने लगती है तो उसके पारिवारिक परिवेश को हर कोने से सर्वाधिक प्रहार झेलने होते हैं। सावित्री चूँकि आधुनिक महत्तवांकाक्षिणी नारी है। इसलिए सभी भौतिक सुख-सुविधाओं का उपयोग करना चाहती है। चूँकि महेन्द्रनाथ उसकी इन इच्छाओं की पूर्ति करने में असमर्थ है इसलिए वह स्वयं घर से बाहर निकल पड़ती हैं वह जीविकोपार्जन के लिए नौकरी करती है और घर से बाहर के संसार से परिचित होने के उपरान्त विपक्षगामी हो जाती है। उसे लगता है कि उसका पति आधा-अधूरा है इसलिए वह अपने अधूरेपन को पूर्ण करने के प्रयत्न में अन्य लोगों के सम्पर्क में आती है। अपनी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह घर और वैभव के पीछे भागती है। आवारा होती चली जाती हैं वह बड़े-बड़े नामधारियों के सम्पर्क में आती है। क्योंकि उसे व्यक्ति नहीं उसे पद, वैभव के पीछे भागती है। आवारा होती चली जाती है वह बड़े-बड़े नामधारियों के सम्पर्क में आती है। क्योंकि उसे व्यक्ति नहीं, उसे पद, वैभव और सामाजिक प्रतिष्ठा से प्यार हैं। सावित्री की यह धन की पिपासा, एक अच्छे-खासे परिवार को दीमक की तरह चाट जाती है। घर के अन्य सदस्य भी वर्तमान युग के प्रभाव से युक्त दिखाई देते हैं जिसमें मनुष्य, अपने 'स्व' और आत्मकेन्द्रित सोच के कारण अजनबीपन, घुटन, कुण्ठा, संत्रास आदि से पीड़ित है। राकेश जी ने आधुनिक युग की युवा पीढ़ी की उच्छंखलता को भी निरूपित किया है।

बिन्नी-अशोक इस घर के फूहड़ वातावरण एवं माता-पिता के रिक्त, तिक्त, शून्य सम्बन्धों से अछूत नहीं रह पाते और बिन्नी अपनी प्रोढ़ामाँ के प्रेमी मनोज के साथ भाग जाती है। लेकिन माता-पिता के संस्कारों के कारण ही उसका वैवाहिक जीवन भी सुखमय नहीं हैं अशोक सारा दिन पिता की भाँति बेकार-बेगार रहकर अभिनेत्रियों की अश्लील तस्वीरे काटता रहता है। वर्णा उद्योग वाली के पीछे जूतियाँ चटखता रहता है। किन्त्री अपनी उम्र से अधिक परिपक्व हो गई है और यौन सम्बन्धों में रस लेने लगती है। किन्नी घर के सभी सदस्यों को 'मिट्टी का लौंदा' कहती है। इसके साथ-साथ आधुनिक युग की पूँजीवादी व्यवस्था ने पिसते निम्न मध्यम वित्तीय परिवार की अर्थाभाव की समस्या को भी नाटककार ने इस परिवार के माध्यम से चित्रित किया है।

महेन्द्रनाथ-सावित्री का यह परिवार पूर्ण में अत्यन्त सम्पन्न और समृद्ध परिवार था तथा व्यापार के घाटे के कारण और ऊल-जलूल खर्चों के कारण अब आर्थिक संकट की दलदल में फँसा हुआ है। लेकिन

टिप्पणी

नायिका सावित्री अपनी इच्छाओं पर तुषारापात होते देखकर परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए परिवार के स्तर को विकसित करने के लिए अनेक अमीर पुरुषों से सम्पर्क बनाती है। एक ओर तो वह इसमें सैक्स की पूर्ति करती है तथा दूसरी तरफ अर्थाजन।

इस नाटक में महानगरीय परिवेश की सफल अभिव्यक्ति को लक्षित करते हुए डॉ. प्रतिभा अग्रवाल का कहना है "महानगरीय विशेषकर दिल्ली का जीवन जीने वाले मध्यवर्गीय आधुनिक परिवार की परिस्थितियाँ, सम्बन्धों, आपसी मनमुटाव, घुटन, त्रासदी आदि का ऐसा सशक्त चित्रण सम्भवत: अन्य किसी भारतीय नाटक में नहीं है।" स्त्री-पुरुष के एक-दूसरे को उघेड़ते नोचते-काटते स्नेह रहित संबन्ध, बालकों की बदजुबानीअशिष्टता-अखण्डता और माता-पिता के प्रति आदर-श्रद्धा का अभाव, पारिवारिक विघटन-टूटन-कुण्ठा आदि को उजागर करता यह नाटक सामाजिक दशाओं का दस्तावेज बन गया है।

नाटककार मोहन राकेश 'आधे-अधूरे' में आधुनिक युग में प्रचलित प्रेम-विवाह की समस्या को भी उजागर करना चाहता है। महेन्द्र-सावित्री, बिन्नी-मनोज के माध्यम से नाटककार प्रेम-विवाह की असफलता की ओर इशारा करना चाहता है। विवाह से पूर्व सावित्री के जुनेजा, जगमोहन और शिवजीत आदि से संबंध थे लेकिन बाद में महेन्द्रनाथ को प्रेम-व्यापार विवाह में परिणत हो गया लेकिन उनका यह प्रेम-विवाह सफलता के सोपानों पर नहीं चढ़ सका।

अत: निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि इस नाटक के माध्यम से मोहन राकेश ने आज के युग बोध को ही उजागर करना चाहा है। 'आधे-अधूरे' आज की इस उबाऊ-कुढ़नशील जिन्दगी का ही आलेख है। एक टूटता हुआ परिवार, एक मध्यवित्तीय से निम्न मध्यवित्तीय घर, किस प्रकार तनाव-खींझ, तनातनी, लाचारी और विवशता में जीता है यह सामायिक बोध से ही जुड़ा प्रश्न हैं पति-पत्नी का विवाहोपरान्त कुछ सालों में ही ऊबकर एक-दूसरे से छुटकारा पाने की कोशिश, उनकी बात-बात में व्यंग्य और विक्षोभ, विवाह की अनावश्यक आवश्यकता और गलत चुनाव ये सब युगीन विडम्बना को उभारते हैं।

आज रसहीन और अनिश्चित जिन्दगी की यथार्थपरक अभिव्यक्ति करने वाले नाटक में नाटककार ने अपने युग के जीवन की विसंगतियों को पूरी तल्खी के साथ व्यक्त किया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् मध्यवर्ग में आर्थिक विषमताओं ने क्रमश: पारिवारिक विखराव, मानसिक तनाव और नैतिक पतन को बढ़ावा दिया हैं। नाटककार राकेश ने इस नाटक में आज की समासपूर्ण परिस्थितियों की कटु सम्भावनाओं का संकेत दिया है।

डॉ0 जयदेव तनेजा मोहन राकेश की परिवेश जन्य सजगता को लक्षित करते हुए लिखते हैं

"मोहन राकेश ने यथार्थवादी नाटकों की रचना की है उनके नाटकों का परिवेश चाहे कोई भी हो, परन्तु उसमें संघर्षरत-छटपटाता हुआ 'आदमी' आज का ही है ।"

3.10 आधे अधूरे : प्रयोगधर्मिता

'अंधायुग' की तरह यह नाटक भी आधुनिक हिन्दी नाटकों में नई प्रवृत्तियों का अग्रदूत माना जा सकता है। इसके द्वारा हिन्दी नाटक में महानगरों के परिवेश में मध्यवित्त परिवार के बिखराव और विसंगति के चित्रण की परंपरा प्रचलित हुई। इसमें राकेश जी ने अषाढ़ का एक दिन' भावुकता से उबरते हुए विसंगतियों को अधिकाधिक धारदार ढंग से चित्रित किया है। इसलिए यह नाटक समकालीन जीवन की विसंगतियों के संदर्भ में आधे-अधूरे व्यक्तित्व की पहचान और उसकी पूर्णता की खोज को और आगे तक ले जाता है। इस मानव की नियति की खोज है। नंद और सुन्दरी एक ऐसे बिन्दु पर पहुंच चुके हैं कि इनका एक दूसरे से अलग होना लाजमी हो गया है। नाटककार के सामने सबसे बड़ी समस्या

टिप्पणी

इनको अलगाने की है। इसलिए कहना पड़ता है कि नाटक का मूल उद्देश्य घर की खोज में व्यक्तित्व की खोज है और व्यक्तित्व की खोज में घर की खोज। घर का मतलब उसकी दीवारों और छतों से नहीं है। कालिदास मल्लिका को छोड़कर चले जाने के लिए विवश है और 'आधे-अधूरे' का नायक टूटे घर में लौटने पर लाचार है। आषाढ़ का एक दिन' में अलग होने का अंदाज रोमांटिक है 'लहरों के राजहंस' में यह रोमांटिक-बोध से छुटकारा पाने का है और आधे-अधूरे' में यह वास्तव का सामना करने में उजागर होता है ।"

कथावस्तु की दृष्टि से अपने पहले ही नाट्य परंपरा की तुलना में इस नाटक में निम्नलिखित नई प्रवृत्तियाँ प्रयोगों के रूप में दिखाई देती हैं

1. कस्बों या महानगरों के मध्यवर्गीय परिवारों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की अत्याधुनिक परिणतियों को पैनी दृष्टि से उजागर करता है। शिक्षित एवं नौकरी पेशा औरतों में आधुनिक भाव-बोध के कारण आए बदलाव को हिन्दी नाटक में प्रथम बार इप्स रूप में चित्रित किया गया है इस दृष्टि से मोहन राकेश ने नये नाटककारों को प्रभावित किया है। यहाँ मल्लिका और सुंदरी का एक निष्ठ प्रेम न होकर सावित्री की ऊब, खीज अतृप्ति का निदर्शन है। डॉ. गिरीश कर्नाड के श्हयवदन' नाटक में भी स्त्री पात्र सावित्री की तरह पूरेपन की तलाश में भटकती है। नाटककार ने मनोवैज्ञानिक ढंग से आधुनिक स्त्री की उलझन को सामने रखा है कि स्वयं सावित्री भी अपने स्वयं के अन्तर्विरोधों को जुनेजा के मुख से सुनकर स्तब्ध रह जाती है

   "*पुरुषचार*- असल बात इतनी है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में तो साल-दो साल बाद तुम यही महूसस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिन्दगी में कोई महेन्द्र, कोई जुनेजा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचतीं, यही सब महसूस करती। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कर एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ जीना। वह उतना कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता. इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती, तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचौनी बनी रहती ।"

   यह प्रयोग नाटककार का एकदम नया एवं आधुनिक जीवन की सच्चाइयों को सशक्त ढ़ग से व्यक्त करने वाला है।

२. पिछले नाटकों की तुलना में इस नाटक में पात्र अपनी असाधारणता को छोड़ते हुए बिल्कुल सामान्य हो गए हैं। फिर भी उनके द्वारा आधुनिक मनुष्य के ठहराव और संशय को नाटककार व्यक्त कर सका है। नाटक के प्रारंभ में ही पुरुष (महेन्द्रनाथ) दर्शकों को संबोधित करते हुए कहता है "बात इतनी ही है कि विभाजित होकर मैं किसी-न-किसी एक में आपमें से हर एक व्यक्ति हूँ। और यही कारण है कि नाटक के बाहर दो या अंदर, मेरी कोई भी निश्चित भूमिका नहीं है' तथा नाटक के अन्त तक पहुँचते हुए स्त्री (सावित्री) कहती है "मैने आपसे कहा है न बस! सब-के-सब एक से बिल्कुल एक से हैं आप लोग अलग-अलग मुखौटे पर चेहरा? चेहरा सब का एक ही।"

   शहरी जिन्दगी की यान्त्रिकता, संघर्ष एवं अर्थ लिप्सा ने इन पात्रों का एक सा बना दिया है। यह भी राकेश जी का संवेदनात्मक स्तर पर एक नवीन प्रयोग है।

टिप्पणी

3. यह नाटक अस्तित्ववादी और विसंगतिवादी नाटकों के बीच की कड़ी बन गया है। पाश्चात्य नाटय परम्परा के अनुकरण से विसंगति, अजनबीपन और अधरेपन का चित्रण है। मनुष्य की पहचान खोए जाने का एहसास हमें पुरुष, स्त्री, बड़ी लड़की जैसे पात्रों से होता है। पुरुष एक का कथन है "मुझे पता है कि मैं एक कीडा हूँ। जिसने अन्दर-ही-अन्दर इस घर को खा लिया है ।"

   तो अपने आपसे अजनबी होते जाते मनुष्य का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। वे लोग वर्षों तक साथ-साथ रहकर भी एक-दूसरे को नहीं पहचान पाते। बड़ी लड़की कहती है "शादी से पहले मुझे लगता था कि मैं मनोज को बहुत अच्छी तरह से जानती हूँ पर अब आकर लगने लगा कि वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था।

4. प्रयोगधर्मिता का एक नया आयाम यह है कि राकेश जी का व्यक्तित्व उनकी रचनाओं में प्रत्यक्ष या अप्रयक्ष रूप से मौजूद मिलता है। 'आधे-अधूरे' नाटक में काले सूट वाले की चार भूमिकाएँ राकेश जी के भीतर वाले विभाजित युक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है जो आरोपों-प्रत्यारोपों में जीता है। अत: युगीन संगति में मिथक का संशोधन निजी आवश्यकताओं के लिए करना भी प्रयोगधर्मी नाटककार की प्रयोगशीलता का अन्यतम उदाहरण है।

   नाट्यशिल्प की दृष्टि से 'आधे-अधूरे' नाटक के शुरू होते ही काले सूट वाले व्यक्ति का दर्शकों से वार्तालाप एक महत्त्पूर्ण प्रयोग है, जो ब्रेख्त के प्रभाव से आया है। भाषा और संवादों की अतिरिक्त सजगता ने भी इस नाटक की प्रयोगधर्मिता को एक अलग आयाम दिया है। हर पात्र के संवाद बीच में टूटते हुए, टूटकर फिर शुरू होते लगते हैं इन संवादों से एक्सर्ड नाटक का प्रभाव झलकता है। सावित्री और महेन्द्रनाथ ही नहीं, उनकी छोटी लड़की एकालाप करती है ये सभी पात्र जगह-जगह बड़बड़ाते हुए अपने-आपसे बात करते हुए भी दिखाई देते हैं। पुरुष दो से बात करता हुआ लड़का उसका कार्टून बनाता जाता है। बाद में उसे देखकर स्त्रा को लगता है कि यह चेहरा उसके पति के जैसा ही है।

   रंगशिल्प की दृष्टि से भी प्रयोगधर्मी नाटककार ने अभिनव एंव सार्थक प्रयोग किए हैं। नाटक का सारा दश्यबन्ध सावित्री के घर से शुरू होकर उसी में समाप्त हो जाता है। काले सूट वाले का बार-बार नये व्यक्ति की भूमिका में आना और जगह-जगह दिए गए रंग संकेत नाटक को अभिनेयता की दृष्टि से सफल एवं प्रयोगधर्मी बनाते हैं। डॉ० नरनारायण राय का कथन है "एक छोटा सा रंगोपकरण पूरे नाटक को नया अर्थ दे जाता है। आधे-अधूरे' में ऐसे कई प्रयोग हैं कैंची और कतरन, कमरे में बन्द किन्नी और उसकी चीख, सिंघानियाँ की पतलून में सुरसुराता कीड़ा, कमरे में बन्द घड़ी जो महेन्द्र का सहारा हैं आदि ऐसे ही साभिप्राय और सार्थक दृश्य रंग प्रयोग है। नाटक के जिस दृश्यबंध की कल्पना नाटककार ने प्रस्तुत की है, पूरे घर की कहानी वह दृश्यबंध ही कह देता है।" इसके अलावा इस नाटक में राकेश के पूर्ववर्ती नाटकों की काव्यता के स्थान पर बौद्धिकता प्रधान है। आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की सभी समस्याओं को साधारण यथार्थपरक शैली में प्रस्तुत करने वाला अभिनय व मंचीय नाटक है।

नाट्य शिल्प की दृष्टि से इस नाटक में दो प्रयोग एकदम अलग ढंग के हैं

(1) एक पात्र का कई भूमिकाओं में उतरना,

(2) नाटककार द्वारा पात्रों के लिए व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के स्थान पर जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोगा।

टिप्पणी

काले सूट वाला आदमी ही पुरुष एक, दो, तीन और चार की भूमिका में उतरता है। पात्रों के नामों का प्रयोग न करके नाटककार यह प्रदर्शित करना चाहता है कि आधुनिक समाज में मनुष्य की निजता और पहचान खोती जा रही है।

नाटककार का यह प्रयोग सावित्री के कथन "मैने आपसे कहा है न, बस! सब-के-सब। एक-से! बिल्कुल एक-से हैं आप लोग! अलग-अलग मुखौटे पर चेहरा? चेहरा एक ही! -को चरितार्थ करना चाहा है। नाटककार अनुभूति देना चाहता है कि आधुनिक मध्यवर्गीय मध्यवर्गीय समाज में स्तरीकरण एवं असन्तोष से ग्रस्त हर पुरुष एक जैसा अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश है कि आधुनिक मध्यवर्गीय समाज में स्तरीकरण एवं असन्तोष से ग्रस्त हर पुरुष एक जैसा अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश है। इसके अलावा नाटककार की प्रयोगधर्मिता चाहे रंगमंच के संबंध में हो या फिर नाशिल्प से संबन्धित प्रतीकों बिम्बों के रूपों में सार्थक अभिव्यक्ति में सहायक है। डॉ० रीता कुमार का कथन है "यह नाटक पूर्णत: यथार्थवादी शैली पर आद्धृत है, जिसमें अनेक सार्थक प्रतीकों का प्रयोग यथार्थ की कटुता को तीव्रता से व्यक्त करने के लिए किया गया है। कमरे के तीन दरवाजे सावित्री के जीवन में प्रवेश करने वाले तीन पुरुषों का प्रतीक है, इन तीन दरवाजों को परिवारिक विघटन के छिद्र भी माना जा सकता है। नाटक में सर्वाधिक प्रभावशाली प्रतीक अशोक द्वारा की गई कैंची की चक-चक' ध्वनि है। एक कोने में तस्वीरें कतरता हुआ यह पात्र दिशाभ्रान्त युवावर्ग के मूक विद्रोह का प्रतिनिधित्व करता है। अनेक मार्मिक स्थलों पर नीरवता में सुनाई देने वाली एक चक-चक' ध्वनि मानवीय सम्बन्धों के चुकने तथा जीवन-मूल्यों के प्रति अवज्ञा भाव की सूचक है। नाटक के मध्य में छोटी लड़की का सिसकते हुए खाली कमरे को पार करना वातावरण पर छाए संत्रास को तीव्रतम कर जाता है। एक खण्डहर की आत्मा को व्यक्त करता हल्का संगीत' क्षण-क्षण टूटती सावित्री के जीवन की करूण त्रासदी का सजीव दृश्य उपस्थित कर देता है। राकेश ने इस नाटक में प्रकाश और संगीत योजना में भी कई सशक्त नाटकीय बिम्बों का निर्माण किया है। नाटक के प्रारम्भ में 'अघ-टूटा टी-सेट' आदि बिखरी वस्तुओं के दृश्यबन्ध पर भटकता आलोक तथा खण्डहर की आत्मा का संगीत वातावरण में छाए तनाव और घुटने से टूटते पात्रों का सजीव बिम्ब दे जाते हैं।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राकेश जी एक नितान्त प्रयोगधर्मी नाटककार है। उन्होंने कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से इस नाटक में नवीन एवं सार्थक प्रयोग किए है। कथ्य के स्तर पर उन्होंने अपनी पैनी दृष्टि स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की आधुनिक परिणति, एकनिष्ठ प्रेम का अभाव, आधुनिकता का दम भरने वाली स्त्री के अन्तर्विरोधों, शहरी जिन्दगी की यान्त्रिकता, संघर्ष, अर्थलिप्सा अजनबीपन, संत्रास कुण्ठा और नितान्त व्यक्तिकता को यथार्थ के कटु धरातल पर परखती है।

शिल्प के स्तर पर भाषा एवं संवादों की अतिरिक्त सजगता, पात्रों का यथार्थ और मनोवैज्ञानिक घरातल पर चरित्र-चित्रण, ब्रेख्त आदि के प्रभाव से आई ऊलजलूलियत जो की आधुनिक संवेदना को और गहराई से मूर्त करती है। अभिनव रंगमंचीय प्रयोग में रंग संकेतों की प्रतीकात्मकता कम समय और कम स्थान पर ढेर सारी समस्याओं को प्रस्तुत करना आदि नाटककार की प्रयोगधर्मिता को प्राथक्य प्रभाव से मुक्त बनाता है।

3.11 आधे अधूरे की भाषा शैली

भाषा, भाव एवं विचार-बोध का सर्वोत्तम माध्यम है। यो नाटकों में योजित पात्र शब्द-प्रयोगों के अतिरिक्त सकेतों-अर्थात् हाव-भाव प्रदर्शित करके, विशेष स्थितियों के लिए विशेष प्रकार का अभिनय करके भी भावों और विचारों को, विशेष प्रकार का अन्त: बाह्य स्थितियों का सम्यक बोध करा देते हैं। परंतु इस

टिप्पणी

प्रकार का भाव-बोध सर्व-सामान्य के लिए सुलभ नहीं होता, उसके लिए मनोभावों, अभिनय-शिल्प या भाव-प्रदर्शन आदि की विशिष्ट स्थितियों एवं विधाओं का ज्ञान एक सीमा तक आवश्यक होता है और वह सामान्य कोटि के दर्शकों के लिए संभव नहीं इस दृष्टि से नाटकों में भाषा एक विशिष्ट शिल्प का रूप धारण कर लेती है। अर्थात् भाषा का नाटकीय परिवेश में काव्य या साहित्य का अन्य विधाओं की तुलना में अपना एक अलग व्यक्तित्व, स्वरूप आकार एवं महत्त्व होता है।

नाटकों में भाषा के महत्त्व को जान लेने के अन्तर और यह विचार कर लेना उचित एवं उपयुक्त रहेगा कि नाटकों की भाषा में किस प्रकार के सामान्य, सर्व-स्वीकृत पर आवश्यक गुण होने चाहिए जागरूक एवं जन-कलाकार इस प्रकार के गुणों के प्रति निश्चय ही विशेष सजग हो जाता है। विषय एवं विचार के अनकूल रहने पर भी सरलता एवं स्पष्टता नाटकों की भाषा का दूसरा-प्रमुख गुण स्वीकार किया जाता है। तात्पर्य यह है कि भाषा ऐसी सरल और सुबोध एवं सप्रेषणाय होना चाहिए कि सभी को समझ में आ सके। तीसरे, भाषा पात्रों को सामाजिक एवं वर्गाय स्थितियों के अनुरूप होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह नहीं कि भाषायों प्रयोग करते समय कलाकार किसी विशेष प्रकार के आग्रह से जुड़ जाए। तात्पर्य यह कि वर्ण्य-विषय का, मूल प्रतिपाद्य एवं सवेद्य का सीधा संबंध जिन लोगों से जुड़ा हो, भाषा उसकी भी प्रतिनिधित्व कर सके, अर्थात् व्यवहार-जगत में वे लोग जिस प्रकार की भाषा बोलते हैं, शब्दों का प्रयोग जिस रूप में करते हैं, इसका ध्यान रखा जाना चाहिए। इन बातों के अतिरिक्त नाटकों का भाषा में यह भी आवश्यक है कि उनमें और जीवन में प्रयुक्त होने वाला भाषा में कोई अधिक अन्तर दिखाई न दे। ऐसा तभी संभव हो सकता है जब कि नाटककार चमत्कार, कृत्रिमता, आडंबर आदि के चक्कर में न पड़ कर, सहज रहे। रोचकता, प्रसंगानुकूलता अप्रतिहत प्रवाह, व्यग्य-विनोद, चुस्ता, चुटीलापन, चित्त एवं प्रचलित सीमा में कहावतों-मुहावरों एवं रोजमर्रा के प्रयोग-ये सभी बातें नाटकों को भाषा के लिए प्राय: आवश्यक एवं अनिवार्य माना जाता हैं चित्रमयता और काव्यमयता भाषा के दो अच्छे गुण माने जाते हैं पर ये उस सीमा तक नहीं रहने चाहिए कि अस्वाभाविक या कृत्रिम प्रतीत होने लगे। भाषा जटिल प्रयोग नाटकों में वर्जित होने चाहिए।

सहजता सरलता एवं रोचकता - इस नाटक की भाषा में सहजता, सरलता एवं रोचकता के गण प्रयाप्त होते हैं। कहीं भी दुरूहता, क्लिष्टता एवं जटिल शब्दावली का प्रयोग नहीं हुआ है। इसके साथ-साथ उसमें प्रयुक्त भाषा में सर्वत्र स्वाभाविकता और सरलता से युक्त बोलचाल की भाषा प्रयुक्त हई है

आधे अधूरे : नाटक के अभिव्यक्त संवेदना एवं शिल्प

लडका-पूछ ले इससे। अभी बता देगी, तुझे सब .... जो सुलेखा को बता रही थी बाहर।

छोटी लड़की - (सुबकने के बीच) वह बता रही थी मुझे कि मैं उसे बता रही थी? मन

लड़का - तू बता रही थी।

छोटी लड़की - वह बता रही थी।

लड़का - तू बता रही थी। अचानक मुझ पर नजर पड़ी कि मैं पीछे खड़ी सुन रही हूँ तो

छोटी लड़की - सुरेखा भागी थी कि मैं भागी थी?

लड़का - तू भागी थी।

छोटी लड़की सुरेखा भागी थी ।"

टिप्पणी

भावानुकूलता एवं प्रवाहमयता - 'आधे-अधूरे' नाटक की भाषा पूर्णता भावानुकूल एवं प्रवाहमयता के गुणों से ओत-प्रोत है। प्रसंगानुकूल गम्भीर भावों की अभिव्यक्ति में गम्भीर भाषा का प्रयोग हुआ है और हल्के-फुल्के प्रसंगों पर हल्की-फुल्की भाषा का प्रयोग हुआ है इसके साथ-साथ सभी प्रसंगों में चाहे हल्के हों या गहन भावों से युक्त, भाषा में सहज गति, प्रवहिमयता एवं अवच्छिन्नता बनी रहती है। तल्खी, बेचौनी एवं आक्रोश की भाषा में प्रवाहमयता का उदाहरण देखिए

"*बड़ीलड़की*- मेरा अपना घर!... हाँ। और मैं आती हूँ कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखू कि क्या चीज है वह इस घर में जिसे लेकर बार-बार मुझे हीन किया जाता है। (लगभग टूटते स्वर में) तुम बता सकती हो ममी, कि क्या चीज है वह? और कहाँ से वह? इस घर के खिड़कियों-दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुमने? डैडी में? किन्नी में? अशोक में? कहाँ छिपी है वह मनहूस चीज जिसे जो वह कहता है कि मैं इस घर से अपने अंदर लेकर गई हूँ? (स्त्री की दोनों बाँहे हाथ में लेकर) बताओ मम्मी, क्या है वह चीज? कहाँ पर है वह इस घर में?

यहाँ पर प्रयुक्त भाषा वातावरण में घुटन-टूटन एवं पात्रों की छटपटाहट भरी मन: स्थिति को प्रकट करने के लिए सर्वथा उपयुक्त है। इसके अलावा हल्के-फुल्के प्रसंगों पर हल्की-फुल्की भाषा का प्रयोग है यथा

"*स्त्री*-मैं नहीं लूँगी चाय!

बड़ी लड़की सबके लिए बना रही हूँ एक-एक प्याली।

लड़का - मेरे लिए नहीं।

बड़ी लड़की - क्यों पानी रख रही हूँ सिर्फ पत्ती लानी है।

लड़का - अपने लिए बनानी है, बना ले।

बड़ी लड़की - मैं अकेली पिऊँगी? इतने चाव से चीज-सैंडविच बना रही ।"

पात्रानुकूल भाषा - राकेश जी के सभी नाटकों में पात्रों की मन:-स्थिति प्रवृत्ति एवं व्यक्तित्व के अनुरूप भाषा प्रयुक्त है। 'आधे-अधूरे' नाटक के पात्र अपनी मन स्थिति में स्कन्दगुप्त अजातशत्रु पहला राजा आदि नाटकों के पात्रों की तरह लम्बे-लम्बे एवं दार्शनिक वाक्यों का प्रयोग नहीं करते हैं। अपित अपने समकक्षी व्यक्ति को श्रोता बनाकर बोलचाल की शब्दावली में अपने मन की भडास निकालते हैं। महेन्द्रनाथ जैसे दब्बू एंव पराक्षित पुरुष के अन्तर्द्वन्द्व को रचनाकार ने उसकी मनोदशा के रूप में व्यक्त किया है

यथा -

पता है कि मैं एक कीड़ा जिसने अन्दर-ही-अन्दर इस घर को खा लिया है। (बाहर दरवाजे की तरफ चलता है) पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए ।"

अशोक भी अपने पिता की भाँति बेकार, अकर्मण्य आवारा एवं फैशनपरस्त नवयुवक है। अत: उसके संवादों में अक्खड़पन, विद्रोही प्रवृत्ति झलकती है पुरुष दो की भोंडी हरकतों से क्षुब्ध होकर अशोक का कथन है "तुम्हारा बॉस न होता तो उस दिन मैने कान से पकड़कर घर से निकाल दिया होता। सोफे पर टाँग पसारे आप सोच कुछ रहे हैं, जाँघ खुजलाते देख किसी तरफ रहे हैं और बात मुझसे कर रहे हैं .... (नकल उतारता) अच्छा, यह बताइए कि आपके राजनीतिक विचार क्या हैं? श्राजनीतिक विचार हैं मेरे खुजली और उसकी मरहम!" नाटक की नायिक सावित्री के संवादों की भाषा से भी उसके ..... के अनुरूप आवारापन, ..

टिप्पणी

"स्त्री-(आवेश में उसकी तरफ मुड़ती) मत कहिए मुझे महेद्र की पत्नी। महेन्द्र भी एक आदमी .... है पत्नी है, यह बात महेन्द्र को अपना कहने वालो का शुरू से ही रास नहीं आई। महेन्द्र ने ब्याह क्या किया आप लोगों की नजर में आपका ही कुछ आपसे छीन लिया।"

इसी तरह नाटक के अन्य पात्रों की भाषा भी उनके चरित्र के अनुरूप ही है। किन्नी की भाषा में विद्रोहीपन अशष्टिता जिद्दीपन झलकता है तो पुरुष चार अर्थात् जुनेजा की भाषा में जीवन के अनुभव की गहराई।

ध्वन्यात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता -इस नाटक में स्थान-स्थान पर पात्रों की कारूणिक मन: स्थिति, भयावह परिवेश की विसंगति एवं घुटन, टूटन, बिखराव आदि को व्यक्त करने के लिए नाटककार ने भाषागत ध्वन्यात्मकता एवं व्यंगयात्मकता का प्रयोग किया है। नाटक में कई स्थलों पर शब्द और उसके अभिधेय अर्थ को नकारने की कोशिश की गई है। सिधानियाँ के संवाद शब्दों के अभिधेय अर्थ का अतिकमण कर जाते हैं

"*पुरुषदो*- हाँ हाँ ..... जरूर (बड़ी लड़की से) लो तुम भी। (स्त्री से) बैठ जाओ अब।

स्त्री - (मोठे पर बैठती) उस विषय में सोचा आपने कुछ?

पुरुष दो - (मुँह चलाता) किस विषय में?

स्त्री - वह जो बात मैंने की थी आपसे ... कि कोई ठीक-सी जगह हो आपकी नजर में. तो .....

पुरुष दो-बहुत स्वादिष्ट है।"

यहाँ पर स्त्री और पुरुष दो के संवादों में तार्किक संगति न होते हुए भी दोनों की मन:स्थिति व्यक्त होती नजर आ रही है। श्वह जो ... तो....' के उत्तर में बहुत ही स्वादिष्ट है' वाक्य समकालीन जीवन की विंसगत स्थितियों को नाटकीय ढंग से सम्प्रेषित करता है। नाटककार की यह प्रवृत्ति एवसर्ड नाटकों की भाषा में अनुप्राणित है।

नाटक में यथार्थ को अभिव्यक्ति देने के लिए व्यंग्यात्मक भाषा-शैली को अपनाया गया है। नाटक के लगभग सभी पात्रों की भाषा में व्यंग्य की तीखी मार दिखाई देती है। इससे जहाँ भाषा में विचित्र्य का समावेश हआ है, वहीं चमत्कार भी उत्पन्न हो गया हैं विशेष रूप से महेन्द्रनाथ एवं अशोक के संवादों की भाषा तो पूर्णत: व्यंग्यपरक है। सावित्री एवं महेन्द्रनाथ की वार्तालाप पूर्णत: व्यंगयपरक है यथा

आधे अधूरे : नाटक के अभिव्यक्त संवेदना एवं शिल्प

"पुरुष एक हाँ हाँ सिंघानिया तो लगवा ही देगा जरूर। इसलिए बेचारा आता है यहाँ चलकर।

स्त्री-शुक्र नहीं मानते कि एक इतना बड़ा आदमी, सिर्फ एक बार कहने भर से ....।

पुरुष एक-मैं नहीं शुक्र मनाता? जब-जब किसी नये आदमी का आना-जाना शुरू होता है यहाँ, मैं हमेशा शक्र मानता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था, फिर मनोज आने लगा था।

स्त्री-(स्थिर दृष्टि से उसे देखती) और क्या-क्या बात रह गई है कहने को बाकी? वह भी कह डालो जल्दी से।

पुरुष एक क्यों जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू हुए।

यहाँ पर महेन्द्रनाथ का व्यंग्यपरक संवाद सावित्री की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करता है। इसी तरह अशोक एवं सावित्री के संवादों में अशोक व्यंग्यपरक शैली में सिंघानियां एवं सावित्री के चरित्र का उद्घाटन करता है

टिप्पणी

"*लड़का*- मतलब वही जो मैंने कहा है। आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने, किस वजह से बुलाया है?

स्त्री - तू क्या समझता है, किस वजह से बुलाया है?

लड़का-उसकी किसी बड़ी' चीज के वजह से। एक को कि वह इंटेलेम्यूअल बहुत किस उसको तनख्वाह पाँच हजार हैं तीसरे को कि उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की है जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं होसकी तनख्यावह को नाम को रूतबे को बुलाया है।

स्त्री - और में उनहें इसलिए बुलाती हूँ कि .....

लड़का - पता नहीं किसलिए बुलाती हो, पर बुलावा सिर्फ ऐसे ही लोगों को हो। अच्छा, तुम्हीं बताओं, किसलिए बुलाती हो?"

इस तरह किन्नी, बिन्नी, जुनेजा आदि के संवादों में भी व्यंग्यपरक भाषा प्रयुक्त हुई है।

विभिन्न भाषाओं के शब्दों एवं मुहावरों का सार्थक प्रयोग -

'आधे-अधूरे' नाटक में सामान्य बोलचाल की उर्दू-अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी ही अधिकांश प्रयुक्त हुई। यों एकाध स्थलों पर संस्कृत शब्द भी तत्सम रूप में व्यवहृत हुए हैं। अधिकांश जनसामान्य में प्रचलित शब्द ही हैं। जिन भाषाओं के शब्द प्रसंगानुकूल किन्तु नाटक में प्रयुक्त हुए हैं उनका आकलन नीचे किया जा रहा है देखिए

1. **तत्सम शब्दों का प्रयोग** - इस प्रकार के शब्दों को प्रयोग बहुत कम मात्रा में हुआ है और वह हुआ भी है तो विशेष, प्रयोजन से ही, तथा

   "आप क्या सोचते हैं आजकल युवा लोगों में इतनी अराजकता क्यों है?"

   "अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क हैं न कम्पनी के, तो सभी देशों के लोग मिलने आते रहते हैं जापान से तो एक पूरा प्रतिनिधि मण्डल ही आया हुआ था पिछले दिनों-अभी उस दिन मैं जापान की पिछले वर्ष की औद्योगिक सांख्यिकी देख रहा था।" यहाँ पर श्युवाश, अराजकताश, प्रतिनिधिमण डल' आदि शब्द तत्सम हैं।

2. **तद्भव शब्दों का प्रयोग** - नाटक में तत्सम शब्द तो केवल एक विशिष्ट अवसर पर ही प्रयक्त टा हैं। अधिकांश हिन्दी के तद्भव शब्दों का ही प्रयोग 'आधे-अधूरे' में हुआ। इससे नाटक की भाषा में स्वाभाविकता एवं विकास का गुण आ गया है। शब्दों की यह तद्भवता हिन्दी के कुछ शब्दों में द्रष्टव्य है;घर (गृह), सीख (शिक्षा), आँखे (अक्षि), बूढ़ा (वृद्ध), होंठ (ओठ), माँ (मातृ), साड़ी (सादृक), रात (रात्रि) आदि-आदि।

3. **देशज शब्दों का प्रयोग** - तत्सम एंव तद्भव शब्दों के साथ ही भाव सम्प्रेषण की सुविधा के लिए नाटककार ने 'आधे-अधूरे नाटक में, कुछ देशज शब्दों का भी प्रयोग किया है, यथा चिढ, तिलमिला खीझना, चरख चरख, किट-किट, मुनिया, लोंदा आदि।

4. **उर्दू शब्दों का प्रयोग श्आधे**-अधूरे नाटक में उर्दू भाषा के शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। नाटक में प्रत्येक पृष्ठ तो क्या प्रत्येक संवाद अथवा प्रत्येक पंक्ति में कोई-न-कोई उर्दू शब्द अवश्य व्यवहत हुआ है। पर इतना अवश्य है कि उर्दू होते हुए भी शब्द आम बोलचाल के हैं। सरल भाव-संप्रेषण की सुविधा के लिए ही नाटककार ने इन शब्दों का प्रयोग किया है। भारी-भरकम संस्कृतनिष्ठ शब्दों की भरमार की अपेक्षा इस प्रकार की चलती हिन्दी-उर्दू भाषा

टिप्पणी

नाटक के कथन को बड़ी सरलता से सम्प्रेषित करने में सहायक हई है। यथा-कोशिश, मजाक, बरदाश्त, काफी, वजह, नौबत, राय, किराया, शऊर, जवाब, चेहरा, सवाल, सिर्फ, अखबार, शिकायत, खास, शादी, ज्यादा आदि।

5. **अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग नाटक में यत्र** - तत्र प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी खुलकर हुआ है। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग पात्रों के संवादों में भी है और स्वयं नाटककार ने अपने मंचीय संकेतों में भी इनका प्रयोग किया है यथा-सिगार, फुटपाथ, स्कूल बैग, मैगजीन, टी. ट्रे. कबर्ड, बॉस, फैक्टरी, प्रेस, फ्रिज, मीटिंग, बोर्ड, पर्स, डैडी, काफी, ट्रांसफर, किट, क्लास, फाउण्डर्स डे पी.टी. आदि।

अत: राकेश जी ने विभिन्न भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा शैली में समाहित करके उसे गहन भावों से युक्त एवं लोक जीवन की भाषा बनाया है राकेश जी ने अपनी नाट्य भाषा में मुहावरों को कम किन्तु साकि प्रयोग किया है। जिन मुहावरों को नाटककार ने प्रयोग किया है वे नाट्य-कथ्य के सम्प्रेषण में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुए हैं। इन मुहावरों से राकेश जी की नाट्य-भाषा की व्यंजनात्मकता गहराई प्राप्त करती है। जिन मुहावरों का प्रयोग नाटक में हुआ है उनमें से कुछ इस प्रकार है 'शहदेना, जिन्दगी काटना, श्मन का गुबार निकालना, मारा-मारा फिरना, जबान खोलना, अपने को हलाक करना, हड्डियों में जंग लगाना, जानमारी करनी, नाक में नकेल डालना, उल्लू बनाना, मिट्टी के लोंदे, जिन्दगी का भार ढोना, जिन्दगी की कमाई' श्रबड स्टैंप का तप्पा, जिन्दगी को चौपट करना, घुरधुसरा होना' आदि-आदि। वाक्यों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं

(1) तुम्हारी शह में उसका घर में आना-जाना न होता, तो क्या यह नौबत आती कि लड़की उसके साथ जाकर बाद में इस तरह ....?

(2) जापान ने इन सबकी नाक में नकेल कर रखी है आजकल

(3) उल्लू बना रहा था उसे।

सपाटबयानी एवं याथार्थवादी शैली

यथार्थवादी नाटक होने की वजह से नाटक का भाषा शैली में सपाटबयानी एव याथार्थवादी शैली व्यवहृत है। इस याथार्थपरक भाषा-शैली से नाटककार न आधुनिक जीवन की नग्न सच्चाइयों, विसंगतियों को बड़े प्रभावी ढंग से प्रकट किया हैं नाटक में चित्रित परिवार की वास्तविकता, परिवेश में तनाव घुटन, घर के सदस्यों में आन्तरिक संघर्ष तथा समूचे परिवेश की कुरूपता व भयावयता को प्रकट करने के लिए नाटककार ने सपाटबयानी एवं यथार्थवादी भाषा-शैली का प्रयोग किया है। संवादों में शब्दों की कसावट और स्पष्टता महानगरीय परिवेश की विसंगतियों को प्रभावी ढंग से स्थापित करती है। मानव-जीवन की निर्ममता और मानव के नृशंसतापूर्वक व्यवहार का तीखा एवं वास्तविक रूप किन्नी की इन पंक्तियों से प्रकट होता है

"मैं यहाँ थी, तो मुझे कइ बार लगता था कि मैं घर में नहीं, चिडियाघर के एक पिंजरे में रहती हूँ यहाँ ... आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार-तार कर देना ..... उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बन्द कमरे में पीटना ..... खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर ..... सिहरकर। मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भ्यानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने।"

इन पंक्तियों में यथार्थवादी शैली में समकालीन जीवन की विषय स्थितियाँ निरूपित हुई हैं। अत: कहा जा सकता है कि मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियों को नाटकीय रूप में चित्रित करने के लिए जिस

टिप्पणी

हरकत भरी भाषा की आवश्यकता थी उसी प्रकार की भाषा को नाटककार ने आधे-अधूरे' में प्रयुक्त किया हैं आज के जीवन के जंटिल अनुभवों, अनुभूत संवेदनाओं, उलझी हुई जीवन स्थितियों और अपने आप से या आपस में जूझते आधे-अधूरे चरित्रों की तनावपूर्ण विस्फोटक मन:स्थितियों को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत करने के लिए बोलचाल की इस सृजनात्मक भाषा की आवश्यकता थी। यही कारण है कि नाटककार ने अपनी भाषा-शैली में विभिन्न प्रयोग करते हुए उसे जन-जीवन की भाषा बनाकर प्रस्तुत किया है। डॉ० गोविन्द चातक इस नाटक की भाषा के बारे में लिखते हैं

"इस नाटक की भाषा नाटक के क्षेत्र में वर्षों से व्याप्त जड़ता को भंग करने में सफल हुई हैं इसमें सहजता ताजगी, लाज और चालूपन हैं, वह नाट्य भाषा की संपूर्ण संवेदनाओं और आंतरिक शक्तियों का उपयोग करता दिखता है। अपने कथ्यांक के अनुरूप यह भाषा आरोपों-प्रत्यारोपों उलझनों-उपालंभी, तल्खियों-झल्लाहटों को बखूबी व्यक्त करती है ।"

इतना ही नहीं 'आधे-अधूरे' की भाषा का अनगढ़पन एवं अतिसाधारण रूप भी लोक-प्रयोग के स्तर पर युगबोध की जटिल एवं सूक्ष्म संवेदना को व्यंजित करता है। अत: साधारण या बोल-चाल की भाषा को भी नाटककार ने अपने अनुभव की समग्रता देकर आधुनिक युग की विसंगतियों की अभिव्यक्ति की भाषा बनाया है इस नाटक के निर्देशक ओम शिवपुरी ने नाटक की भाषिक महत्ता प्रकट करते हुए कहा है

"पहले वाचन के समय ही मुझे इसकी भाषा में बड़ी कशिश लगी थी। कहना न होगा कि इस नाटक की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन, उनका क्रम उनका संयोजन-सब कुछ ऐसा है, जो बहुत सम्पूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्त करता हैं लिखित शब्द की यही शक्ति आप उच्चरित ध्वनि समूह का यहीं बल है, जिसके कारण यह नाट्य-रचना बंद और खुले, दोनों प्रकार के मंचों पर अपना सम्मान बनाए रख सकी।"

3.12 पात्रों का चरित्र-चित्रण

महेन्द्रनाथ - दोस्तों का चहेता और हँसमुख महेन्द्रनाथ सावित्री से शादी के बाद कारोबार में लगातार असफल होकर आज पत्नी की कमाई पर जिन्दा, लड़ने-कुढ़ने वाला और पत्नी के परिचितों या प्रेमियों के आने पर चुपचार घर से चला जाने वाला एक पराजित कटु और कभी-कभी खंखार कर जाने वाला अजीब-सा कुंठित व्यक्ति बन गया है।

महेन्द्रनाथ सम्पूर्ण नाटक में पुरुष एक' नाम से ही आता हैं उम्र पचास के आस-पास, चेहरे की विशिष्ट में एक व्यंग्य है। यों, अपनी स्त्री की कमाई की रोटियाँ तोड़ रहा है और गृह पति की मर्यादा से वंचित है। जीवन की लडाई में हार की छटपटाहट है, वह तीन बच्चों का बाप है पत्नी के परिचितों के आने पर घर से नि जाता है। "सावित्री को महेन्द्रनाथ सदा से दब्बू, व्यक्तित्वहीन, पर-निर्भर लम्य है और आधा-अधरा आटी भी। मन की कटुता ओर तिम्तता के व्यंग्यबाणों से पत्नी के अन्तरमन को भेदता रहता है। नाटक के प्रारम्भ में पुरुष का परिचय स्वागत भाषण के माध्यम से होता है। वह स्वयं कहता है, "यह नाटक भी अपने में मेरी तरह अनिश्चित है।" महेन्द्रनाथ नाटक का नायक है, साथ ही बेकार, निराश और असफल पति हैं शादी के बाद ही उसकी पत्नी को वह एक पूरे आदमी का आधा चौथाई अर्थात् अधूरा, लिवलिवा और चिपचिपाता-सा आदमी लगने लगा।

आधे-अधूरे : नाटक में अभिव्यक्त संवेदना एवं शिल्प

डॉ० पुष्पा बंसल का कहना है "गृहपति होते हुए भी वह घर का स्वामी नहीं रह गया है, सबसे बड़ा होने पर भी (वयोवृद्धत्व के नाते) उसको सम्मान नहीं मिलता। मन में एकदम न चाहने पर भी घर

टिप्पणी

के काम-काज में उसका प्रयोग एक स्टैम्प के समान किया जाता है।" नाटक के महेन्द्रनाथ के चरित्र की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ उद्‌घाटित होती है।

1. **कमजोर एवं पराश्रित व्यक्तित्व** - महेन्द्रनाथ में न तो स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता है और नही स्वतन्त्र रूप से कोई निर्णय लेने का सामर्थ्य है। न उसकी अपनी कोई विचारधारा है और न उसका अपना कोई व्यक्तित्व है वह हमेशा प्रत्येक बात के लिए दूसरों पर आश्रित रहता है। वह हर बात के लिए दूसरों के मुँह की ओर ताकता रहता है। सावित्री स्पष्ट घोषणा करती है जब से मैंने उसे जाना है, मैंने हमेशा हर चीज के लिए किसी-न-किसी को सहारा ढूँढते पाया है। यह कहना चाहिए या नहीं ..... जुनेजा से पूछ लूँ। यहाँ जाना चाहिए या नहीं जुनेजा से राय ले लूँ। कोई छोटी-सी-छोटी चीज खरीदनी है तो भी जुनेजा की पसन्द से। कोई बड़े-से-बड़ा खतरा उठाना है तो जुनेजा की सलाह से। यहाँ तक कि मुझे ब्याह करने का फैसला भी किया, उसने जुनेजा की हामी भरने से।" स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेने की क्षमता न होने के कारण तथा पर-आश्रित होने के कारण महेन्द्रनाथ की बौद्धिक क्षमताएँ कुंठित हो गई तथा व्यक्तित्व का पूर्णरूप से विकास नहीं हो पाया। अत: स्पष्ट है कि महेन्द्रनाथ पर-आश्रित व्यक्ति है।
2. **शंकालु प्रवृत्ति** - महेन्द्रनाथ इस नाटक में शंकालु प्रवृत्ति का स्वामी नजर आता है। अपनी पत्नी सावित्री के कार्यकलाप पर शंकालु दृष्टि रखता हैं सावित्री अपने बेटे अशोक की नौकरी लगवाने के लिये अपने कामुक पुरुष-मित्र सिंघानिया को घर बुलाती है तो महेन्द्र सावित्री के चरित्र को शंका की दृष्टि से देखता है-इसकी झलक निम्नलिखित उदाहरण में दृष्टव्य है

"पुरुष एक-कौन आएगा? सिंघानियाँ

स्त्री-उसे किसी के यहाँ खाना खाने जाना है इधर। पाँच मिनट के लिए यहाँ भी आएगा। मुझे यह आदत अच्छी नहीं लगती तुम्हारी कितनी बार कह चुकी हूँ।

पुरुष एक-तुम्हीं ने कहा होगा उससे आने के लिए।

स्त्री-कहना फर्ज नहीं बनता मेरा, आखिर मेरा बॉस है।

पुरुष एक-बॉस का मतलब यह थोडे ही है कि ?

स्त्री - लोगों को तो ईर्ष्या है मुझसे कि दो बार मेरे घर आ चुका है। आज तीसरी बार आएगा।

पुरुष एक-तो लोगों को भी पता है वह आता है?

महेन्द्रनाथ अपनी इस शंकालु भावना का प्रदर्शन तब भी करता है। जब उसकी बड़ी लड़की बिन्नी मनोज के घर से भाग कर चली आती है। वह अपनी शंका सावित्री पर प्रकट करता है और उससे कहता है कि वह बिन्नी से पूछे कि अपना घर छोड़कर क्यों चली आई है। वह बिन्नी के विषय में अपनी शंका इस प्रकार प्रकट करता है

"पुरुष एक मुझे तो यह उस तरह आयी लगती है।

स्त्री-चाय ले लो।

पुरुष एक-इस बार कुछ सामान भी नहीं है साथ में।

स्त्री हो सकता है थोड़ी ही देर के लिए आई हो।

अत: स्पष्ट है कि महेन्द्रनाथ शंकालु स्वभाव का व्यक्ति है। इसका मुख्य कारण उसकी पत्नी का चरित्रहीन होना है।

टिप्पणी

3. ईर्ष्यालु एवं कुढ़नशील - महेन्द्रनाथ को सावित्री के चरित्र पर सन्देह तो हमेशा ही रहता है उसके साथ ही सावित्री के पुरुष मित्रों से उसे ईर्ष्या भी होती है। जब-जब कोई व्यक्ति उसके घर आता है वह जल उठता है और वह ऐसे लोगों की उपस्थिति में स्वयं घर से बाहर चला जाता है। बहाने बनाकर घर से चला जाना उसकी ईर्ष्या का ही परिचायक है सिंघानियाँ के आने से पहले का यह वार्तालाप उसकी ईर्ष्या प्रवृत्ति का परिचय देता है।

"पुरुष एक-उसमें क्या है? आदमी को काम नहीं हो सकता बाहर?

स्त्री-वह तुम्हें आज भी हो जाएगा तुम्हें।

पुरुष एक-जाना तो है आज भी मुझे .... पर तुम जरूरी समझों मेरा यहाँ रहना तो ....।

स्त्री-तुम्हें सचमुच कहीं जाना है क्या? कहाँ आने की बात कर रहे थे तुम?

पुरुष एक-सोच रहा या जुनेजा के यहाँ हो आता ।"

श्री ओम शिवपुरी का कहना है -"यह सावित्री के पुरुष मित्रों को जानता है, और जब-तब उनका जिक्र करके अपने दिल की भड़ास निकालता रहता है। अपने कुचले आत्मसम्मान को बचाने की खातिर वह

अक्सर शुक्र-शनीचर घर छोड़कर चला जाता है। लेकिन कुछ घण्टे बाद वापिस लौट आता है-थका, हारा, पराजित .... क्योंकि यहीं उसकी नियति है ।"

वह फाइलों से जूझता है। सावित्री की बातें सुनना चाहता है। इसलिए फाइलों की उठा-पटक करता है क्योंकि उसे सिंघानियाँ से ईर्ष्या भी है। वह इस बात से भी जलता है कि सावित्री जिन लोगों के सम्पर्क में आती है वे महेन्द्रनाथ की अपेक्षा प्रतिष्ठित, सम्मानित और ऊँचे पदों वाले लोग होते हैं। अपनी इस जलन का प्रदर्शन भी वह स्वयं कर देता है, "अधिकार रूतबा, इज्जत यह सब बाहर के लोगों से मिल सकता है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बना है, या आगे बन सकता है, तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे। मेरे भरोसे तो सब कुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही बिगड सकता है।

नाटक में महेन्द्रनाथ प्रत्येक क्षण एक कुढ़ा हुआ व्यक्ति दिखाई देते है। वह स्वयं को सबसे छोटा अपाहिज व्यक्ति अनुभव करता है इसीजिए प्रत्येक बात पर कुढ़ता रहता है। स्वयं उसके घर के सदस्य ही उसकी उपेक्षा करते हैं और बात-बात पर अपमानित करते रहते हैं। अपनी पत्नी की घोर अपेक्षा और प्रताडना के कारण ही वह ओछा बन जाता हैं और न कहने योग्य बात भी अपने बच्चों के सामने ही कह देता है। पत्नी की उपेक्षा से वह तिलमिला जाता है किन्तु प्रतिरोध करने की शक्ति न होने के कारण केवल कुढ़ता ही रह जाता है तथा

पुरुष एक - यह सब कहता है वह? और क्या-क्या कहता है?

स्त्री - वह इस वक्त तुमसे बात नहीं कर रही।

पुरुष एक पर बात तो मेरे ही घर की हो रही है।

स्त्री-तुम्हारा घर! हहँ! पुरुष एक तो मेरा घर नहीं है यह ? कह दो नहीं है। स्त्री-सचमुच तुम अपना घर समझते इसे तो....।

पुरुष एक कह दो, जो कहना चाहती हो।

स्त्री-दस साल पहले कहना चाहिए था मुझे..... जो कहना चाहती हूँ।

पुरुष एक-कह दो अब भी .... इससे पहले कि दस साल, ग्यारह साल ।"

नाटक में और कई स्थल हैं जहाँ पर ईर्ष्याभाव एवं कुढ़नशीलता महेन्द्रनाथ की चारित्रिक बनकर उभरती

4. **प्रभावहीन व्यक्तित्व एवं आरामतलब** - महेन्द्रनाथ का व्यक्तित्व अपनी पराश्रिता, दब्बूपन एवं आरामतलब जिन्दगी के कारण प्रभावहीन हो गया है। वह गृहस्वामी होकर भी गृहपति की मर्यादा से वंचित हैं उसे न घर से सम्मान प्राप्त है न बाहर। उसकी पत्नी मानने से इन्कार करती है "मत कहिए मुझे महेन्द्रनाथ की पत्नी।' बड़ी लड़की घर से भाग जाती है। लड़का अशोक निकम्मा हो जाता है तथा छोटी लड़की उद्दण्ड हो जाती है। महेन्द्रनाथ अपने को श्रबड़ स्टैम्प' ओर रबड़ का टुकडा मानता हैं उसका जीवन अस्तित्वहीन ओर अर्थहीन हो गया है, ऐसा उसे हरदम लगता है। वह अपना आत्म-विश्लेषण और आत्म-परीक्षण करते हुए कहता है "अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ, इन सबकी जिन्दगियाँ चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ ..... क्योंकि अन्दर से मैं आरामतलब हूँ।" अपना आत्मपरीक्षण करते हुए आगे कहता है, "मुझे पता है मैं एक कीड़ा हूँ, जिसने अन्दर-ही-अन्दर इस घर को खा लिया है। महेन्द्रनाथ सारा दिन घर करके बेकार-बेगार रहकर चाय पीता रहता है, अखबार पढ़ता रहता है और घर के सारे सामान को अव्यस्थित सारा रख छोड़ता है जिससे सावित्री आकर बड़बड़ाती है। बाल बच्चों के प्रति कर्त्तव्य को वह निभाता नहीं है बल्कि उन्हीं के समक्ष सावित्री को पीटता है, उसके बाल नोचता है, जिससे बालक उसका सम्मान नहीं करते। महेन्द्रनाथ स्पष्ट कहता है- "मेरी क्या यही हैसियत है इस घर में जो जब जिस वजह से जो भी कह दे, चुपचाप सुन लिया करूँ? हर वक्त की घुतकार, हर वक्त की धोंच, बस यही कमाई है यहाँ मेरी इतने सालों से ।"

अत: स्पष्ट है कि महेन्द्रनाथ अपने परिवार में उपेक्षित और तिरस्कारपूर्ण जीवनयापन कर रहा है। न ही उसको अपने घर में सम्मान प्राप्त है और न बाहर। आरामतलबी एवं आलसी प्रवृत्ति ने उसके हृदय में हीन भावना उत्पन्न कर दी है। इसीजिए बेकारी की हालत के कारण बच्चे एवं पत्नी उससे दूर होते जा रहे हैं। बच्चों एवं पत्नी के प्रति कर्त्तव्य को भी वह भली-भाँति नहीं निभाता तथा अपनी ऐय्यासी के कारण परे परिवार को आर्थिक अभाव की दलदल में घकेल दिया हैं महेन्दनाथ की बेकारी-बेगारी एवं आरामतबली-अकर्मकता के कारण सावित्री की इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती जिसके कारण वह पर-पुरुषों से सम्पर्क जोड़ती हैं जिससे उसका परिवार विघटन के कगार पर पहुँच जाता है।

अत: कहा जा सकता है कि महेन्द्रनाथ के रूप में मोहन राकेश जी ने एक ऐसे मध्यवर्गीय निम्न आय वाले परिवार के मुखिया का चित्रण किया है जो अपने पराश्रित, आलसीपन और दब्बूपन के कारण एक-दूसरा हुआ आधा-अधूरा व्यक्ति हैं वह नाटक का नायक हैं परन्तु सबसे दुर्बल और दयनीय पात्र भी हैं वह गृहस्वामी होकर गृहपति की मर्यादा से वंचित है। पूरे परिवार की भर्त्सना सहता है। अपमानित होकर घर छोड़ता है। परन्तु अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण उसी घर से लौटकर अपमानित और जिन्दगी जीने के लिए मजबूर है।

अशोक - आधे-अधूरे' नाटक में अशोक एक महत्त्वपूर्ण सहायक पात्र के रूप में उपस्थित हुआ है। अशोक इस नाटक में आधुनिक युवा पीढ़ी की पीड़ा, आक्रोश, अकर्मण्यता, अस्वीकार और पलायन को साक्षात रूप में मंच पर प्रस्तुत करता है।

टिप्पणी

आधुनिक विचारधारा से अनुप्राणित यह नवयुवक फ्रेंच कट दाढ़ी, रंग-बिरंगी बुशर्ट-पतलून तथा नई-नई पत्रिकाओं के अध्ययन आदि में रुचि रखता है। वह कर्तव्य पथ से च्यूत, बेकार-बेगार नवयुक है, जो सारा दिन घर पर रहकर पत्रिकाओं में अश्लील तस्वीरें काटता रहता है। उद्योग सैंटर वाली वर्णा के पीछे जूतियाँ चटखाता फिरता हैं नाटककार मोहन राकेश ने उसका परिचय इस प्रकार दिया "उम्र इक्कीस के आसपास। पतलून के अन्दर दबी भड़कीली बुशर्ट घुल-धुलकर घिसी हुई। चेहरे से, यहाँ तक कि हँसी से भी झलकती खास तरह की कड़वाहट।" अशोक की महेन्द्रनाथ की भाँति बेकार-बेगार है और कोई भी कार्य निष्ठापूर्वक नहीं कर सकता। वह न तो मन लगाकर पढ़ाई कर सका और न एयरफ्रीज में नौकरी ठीक प्रकार से कर पाता है। उसके चरित्र में निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है।

1. **स्पष्टवादिता एवं वाकपटुता**-अशोक पूरे नाटक में एक स्पष्टवादी वाकपटु पात्र के रूप में प्रकट होता है। वह अपने रुचि के प्रतिकूल बात को चाहे वह बात कड़वी हो, भद्दी हो या अच्छी हो। नई स्पष्ट एवं वाकचातुर्य से प्रकट कर देता हैं वह जानता है कि उसकी माँ अपने बॉस सिंघानिया का बहुत आदर करती है और उसके विषय में अपमानजनक बात नहीं सुन सकती, किन्तु स्वयं उसके मन में सिंघानियाँ की जो इमेज' बनी है उसे भी वह झुठला नहीं सकता। निम्नलिखित वार्तालाप में उसकी स्पष्टवादिता स्पष्ट रूप से मुखर हो रही है। देखिए

   "*स्त्री*-दोनों बार इसी के लिए बुलाया था मैंने उसे। आज भी इसी की खातिर।

   लड़का - मेरी खातिर? मुझे लेना-देना है उससे?

   बड़ी लड़की - ममा उसके जरिए तेरी नौकरी के लिए कोशिश कर रही होंगी न.....।

   लड़का - मुझे नहीं चाहिए नौकरी। कम-से-कम उस आदमी के जरिए हरगिज नहीं।

   बड़ी लडकी - क्यों, उस आमी को क्या है?

   लड़का-चुकन्दर है वह आदमी है? जिसे न बैठने का शऊर है न बात करने का।

   स्त्री - पाँच हजार तनख्वाह है उसकी। पूरा दफ्तर सँभालता है।

   लड़का-पाँच हजार तनख्वाह है, पूरा दफ्तर सँभालता है, पर इतना होश नहीं कि अपनी पतलन के बटन।

   स्त्री-अशोक ।"

   इतना ही नहीं है वह अपनी माँ सावित्री को भी उसके गलत कार्यों के लिए फटकारने में नहीं हिचकता। वह जानता है कि सिंघानियाँ जैसे लोगों की मनोवृत्ति कैसी है इसलिए वह अपनी माँ से कहता है

   'नहीं बर्दाश्त है, तो बुलाती क्यों हो ऐसे लोगों को घर कि जिनके आगे ... ? जिनके आगे हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में।' ... आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने, किसी वजह से बुलाया है उसकी किसी बडी चीज की वजह से। एक को कि वह इंटलेक्चुअल बहुत बड़ा है। दूसरे कि उसकी तनख्वाह पाँच हजार है। तीसरे को कि उसकी तरक्की चीफ कमिश्नर की हैं जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं-उसकी तनख्वाह को, नाम को रूतबे से बुलाया हैं बात को रहने दो, ममा! मैं नहीं चाहता मेरे मुँह से कुछ ऐसा निकल जाए तुम ..... इन संवादों से अशोक की स्पष्टवादिता ही नहीं अपितु वाकपटुता भी झलकती है।

टिप्पणी

2. **आवारा एवं चरित्रहीन युवक** - इस नाटक में अशोक के कार्यकलापों से पता चलता है कि वह एक आवारा एवं चरित्रहीन युवक है। वह घर को घर न समझकर तीन-तीन दिन तक घर से गायब रहता हैं लड़कियों के पीछे जूती चटकाता फिरता है। पढ़ाई की किताबों से नाता तोड़कर अश्लील किताबें पढ़ता है। अभिनेत्रियों के अश्लील चित्र जमा करने का उसे विशेष शौक है। बिन्नी के शब्दों में, वह सेंटर वाली वर्णा के पीछे भागता है और घर की अनेक वस्तुएँ उसे भेंट कर चुका है। अश्लील पुस्तकें पढ़ने के आरोप में पकड़े जाने पर भी वह अपनी हठता का परिचय देता है। यथा छोटी लड़की-झूठ बिल्कुल झूठ। मैंने देखी भी नहीं यह किताब।

   लड़का - नहीं देखी?

   छोटी लड़की - तू तकिए के नीचे रखकर सोए, तो भी कुछ नहीं, मैने जरा निकालकर देख भर ली, तो.....।

   पुरुष एक - मैं देख सकता हूँ?

   लड़का - नहीं .... आपके देखने की नहीं है। अब फिर पूछों मुझसे कि इसकी उम्र कितने साल की है।

   बड़ी लडकी - क्यों अशोक ..... यह वही किताब है न कैसनीवा वाली?"

   इसके साथ-साथ वह अपनी माँ की जरा सी भी इज्जत नहीं करता है एवं अपने आवारापन के कारण पढ़ाई एवं नौकरी दोनों में असफल है।

3. **अशिष्ट एवं विद्रोही युवक** - अशोक के माध्यम से मोहन राकेश ने आज के युवा वर्ग की अगिष्टता एवं विद्रोहीपन को चित्रित किया है। माँ सावित्री के चारित्रिक पतन एवं पिता की महत्तवहीन स्थिति ने अशोक की मानसिकता को विद्रोही एवं अशिष्ट बना दिया हैं अपने पारिवारिक तनावपूर्ण सम्बन्धों से उसके अन्दर खीज एवं विद्रोह की प्रवृत्ति पनपती है। वह अपने घर के परिवेश में विद्रोही हो जाता है। इसी विद्रोहीपन कारण उसके व्यवहार में भी अशिष्टता आ गई है। अशोक के विद्रोह एवं अशिष्टता का एक उदाहरण देखिए।

   लड़का-मतलब वहीं जो मैंने कहा है। आज तक जिस किसी को बुलाया है तुमने किस वजह से बुलाया है?

   स्त्री-तू क्या समझता है, किस वजह से बुलाया है?

   लड़का - उसकी किसी बड़ी चीज की वजह से। एक को कि वह इंटेलेक्युअल बहुत बड़ा है। दूसरे को कि उसकी तनख्वाह पाँच हजार है। तीसरे को कि उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं सकी तनख्वाह को नाम को रूतबे को बुलाया है।

   स्त्री - और मैं उन्हें इसलिए बुलाती हुँ कि

   लड़का - पता नहीं किसलिए बुलाती हो पर बुलावा सिर्फ ऐसे ही लोगों को ही। अच्छा, तुम्हीं बताओं, किस लिए बुलाती हो?

   अत: कहा जा सकता है कि अशोक के चरित्र में विद्रोह का भाव अपनी तमाम विद्रूपताओं के साथ प्रकट हुआ है।

टिप्पणी

4. आधुनिक विचारधारा का फैशनपरस्त युवक - इस नाटक में अशोक आधुनिक विचारधारा के फैशनपरस्त युवक के रूप में चित्रित है। वह पाश्चात्य संस्कृति में अंधानुकरण से भौतिकता से जुड़ा नवयुवक है। वह आधुनिकता के आवरण में अपने बड़ों की इज्जत करना भूल गया है तथा नित बदलते फैशनों को अपनाता है। वह शरीर से दुबला-पतला है किन्तु फैशन की तरफ उसमें विशिष्ट आकर्षण है। नाटककार ने उसकी वेशभूषा के बारे में लिखा है

"पतलून के अन्दर दबी भड़कीली बुशर्ट धुल-धुलकर घिसी हुई।"

जब बिन्नी उससे शेव न बनाने का कारण पूछती है, तो वह इस प्रकार से कहता यथा

बड़ी लड़की-शेव करना छोड़ दिया है क्या तूने? लड़का-(अपने चेहरे को छूता हुआ) मैं फँचकट रखने की सोच रहा हूँ। कैसी लगेगी चेहरे पर?

इतना ही नहीं वह अपनी फैशनपरस्ती में पत्रिकाओं से नये-नये फैशनों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है।

5. बेरोजगार एवं दायित्वहीन युवक - अशोक एक बेरोजगार दायित्वबोधहीन युवक है। वह अपनी नौकरी को अपनी दायित्वहीनता के कारण छोड़ देता है। एयरफ्रीज में मिली नौकरी को वह अपनी अकर्मण्यता के कारण छोड़ देता हैं इसके अलावा वयस्क होने पर भी वह अपने घर के प्रति जरा भी चिन्तित नहीं है। वह विदेशी मैग्जीनों से तस्वीर काट-काटकर अपना खाली समय काट रहा है।

नाटक के प्रारम्भ में ही सावित्री अशोक की कारगुजारी पर प्रकाश डालते हुए कहती है - और अशोक बाबू यह कमाई करते रहे हैं दिन भर। (तस्वीरें उठाकर देखती) एलिजाबेथ टेलर .... आड्रहेबर्न.... शैल मैम्लेन। जिन्दगी काट रहे हैं इन तस्वीरो के साथ।" ' इस सन्दर्भ में डॉ. सुन्दर लाल कथूरिया का कथन है।

"वह अपनी इक्कीस वर्षीय आयु में ही, जब उसे अपने पैरों पर चलना चाहिए था, विरक्त होकर अथवा निरूपाय अवस्था में निकम्मा हो बैठता हैं उसकी सहानुभूति पिता महेन्द्रनाथ के प्रति शायद इसलिए है कि उन दोनों की प्रवृत्ति में कहीं गहरी समानता है। उसके क्रिया-कलापों में अभिनेत्रियों की तस्वीरें काटना, योन-विषयक पुस्तकों को पढ़ने आदि में जहाँ यौवन के एक यथार्थ को अभिव्यक्ति मिलती है वहाँ अनेक यथार्थ निकम्मेपन की आड़ में दब भी जाते हैं।"

अत: निष्कर्षत कहा जा सकता है कि अशोक आज की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है। चेहरे पर हँसी के साथ ही युवा पीढ़ी की बेचौनी, दु:ख, हैरानी, अस्वीकार, पलायन ओर आक्रोश भी व्यक्त होता है। अपने को बेकार और आवारा सिद्ध करता है। परिवार के तनाव, विद्रोह और उबाऊ सन्दर्भो के कारण अशोक के व्यक्तित्व में भी नकारात्मक तत्त्व आ गए हैं।

डॉ० जयदेव तनेजा ने अशोक के चरित्र की गुण-दोष की विवेचना करते हुए स्पष्ट लिखा है "लड़के अशोक के चेहर की हँसी से झलकती कड़वाहट आज की युवा पीढ़ी की पीड़ा अस्वीकार, पलायन और आक्रोश तथा आन्तरिक तनाव को अपनी तेजावी से प्रकट करती हैं इक्कीस वर्षीय अशोक चलना शुरू करने से पहले ही विरक्त और निकम्मा होकर बैठ गया है। उसकी प्रच्छन्न सहानुभूति पिता के प्रति (क्योंकि शाय उन दोनों में ही गहरी समानता है) और माँ के प्रति प्रकट वितृष्ण एवं असहमति है। काम-काज और जीवन के यथार्थ से मुँह मोड़कर अभिनेत्रियों की तस्वीरों, यौन-विषयक पुस्तकों और वर्णा से रोमांस के बीच जिन्दगी बिता रहा है ।"

टिप्पणी

बड़ी लड़की अथवा बिन्नी - इस नाटक में बड़ी लड़की अर्थात् बिन्नी की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वह महेन्द्रनाथ एवं सावित्री की बड़ी लड़की तथा अशोक एवं किन्नी की बड़ी बहन हैं नाटककार ने उसका परिचय इस प्रकार दिया है "उम्र बीस से ऊपर नहीं। भाव में परिस्थितियों से संघर्ष का अवसाद और उतावलापन। कभी-कभी उम्र से बढ़कर बड़प्पन। साड़ी माँ से साधारण। पूरे व्यक्तित्व में एक बिखराव।"

बिन्नी अपनी मर्जी से अपनी माँ के प्रेमी मनोज से शादी करने पर भी विवाहित जीवन की खुशियों से वंचित है। मनोज के साथ रहते हुए भी अलगाव-बोध से पीड़ित है सावित्री द्वारा पूछने पर वह स्पष्ट कहती है कि, "शादी से पहले मुझे लगता था कि मैं मनोज को अच्छी तरह जानती हूँ पर अब आकार लगने लगा है कि वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था ।"

बिन्नी के विषय में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसकी स्थिति नाटक की मूल समस्या का उद्घाटन करने के बहुत सहायक है। वह अपने परिवार की स्थिति को अपने संवादों एवं व्यवहार से स्पष्ट करती है। अपने माता-पिता के आपसी सम्बन्धों के खोखलेपन और पारिवारिक परिवेश की कटुता को स्पष्ट करते हुए वह पुरुष चार अर्थात जुनेजा को बताती है।

"आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार-तार कर देना उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बंद कमरे में पीटना .... खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर ... (सिहरन) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने।" बिन्नी की चारित्रिक विशेषताएँ इस नाटक में निम्नलिखित रूप में उभर कर आई है।

1. **आवारा एवं हताश युवती**-बिन्नी के चरित्र में अपनी माँ सावित्री की भाँति ही आवारापन भी दिखाई देता है। यह आवारापन सम्भवत: उसके अन्दर अपने माता-पिता के आवारापन को देखकर ही उपजा है। वह अपनी माँ के प्रेमियों को प्रत्यक्ष रूप से घर में आता-जाता देखती थी। एक दिन स्वभावत: अपने घर में आने वाले मनोज नामक युवक के प्रति वह भी आकर्षित हो जाती है और एक रात बिना घर वालों को बताए वह मनोज के साथ भाग जाती है एक नया घर बसाने। वह घर तो बसा लेती है किन्तु वहाँ खुश नहीं रह पाती क्योंकि एक व्यक्ति से आजीवन सम्बद्ध हो जाना तो उसने सीखा ही नहीं था। उसकी माँ ही जब एक व्यक्ति से सम्बन्ध न रख सकी तो वह कैसे रह पाती। और भागकर अपने पिता के घर आ गई। इस प्रकार उसके चरित्र में आवारापन के साथ ही हताशा भी घर कर गई। उसकी निराशा का चित्रण निम्नलिखित संवाद से होता है

   "*स्त्री*-तू खुश है वहाँ पर?

   आधे अधूरे : नाटक के अभिव्यक्त संवेदना एवं शिल्प

   बड़ी लड़की (वचते स्वर में) हाँ ऽऽ बहुत खुश हूँ।

   स्त्री-सचमुच खुश है?

   बड़ी लड़की - और क्या ऐसे ही कह रही हूँ?

   पुरुष एक - (बिल्कुल दूसरी तरफ मुँह किए) यह तो कोई जवाब नहीं है।

   बड़ी लड़की - (तुनककर) तो जवाब क्या तभी होता अगर मैं कहती कि मैं खुश नहीं हूँ, बहुत दुखी हूँ?" घर के कुण्ठित और विषैले वातावरण से मुक्ति के लिए वह मनोज के

आधे-अधूरे : नाटक में अभिव्यक्त संवेदना एवं शिल्प

टिप्पणी

साथ भाग जाती है, किन्तु अपने नये जीवन को स्वाभाविक नहीं बना पाती। यही बिन्नी का आवारापन है और इसी आवारापन के कारण अपने नये घर में दमघोटू वातावरण, अपरिचय, अजनबीपन से हताश एवं निराश है।

2. **पारिवारिक - यन्त्रणाओं से पीड़ित** बिन्नी जिस परिवार में पली और पड़ी हुई है। वह इतना अनुशासनहीन एवं चरित्रहीन परिवार है कि बिन्नी को संस्कारागत आदर्श मिल नहीं पाते हैं। बिन्नी ने विघटनशील परिवार के विघटन को प्रत्यक्ष रूप से झेला है। पिता महेन्द्रनाथ के रूप में कभी दब्बूपन देखती है तो कभी अपने उसी पिता का राक्षसी रूप। माँ सावित्री की महत्वाकांक्षाओं से उसे वह आवारापन की शिक्षा-दीक्षा मिली है। अपने घर को वह चिड़ियाघर मानती है। वह अपने घर के दमघोटू एवं भयावह वातावरण का खुलाषा जुनेजा अंकल के सामने करती है

"आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार-तार कर देना उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें बन्द कमरे में पीटना....खींचते हुए गुसलखाने में कमोड पर ले जाकर...(सिहरकर) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर मैं मैंने।"

इतना ही नहीं घर में उससे छोटे अशोक और किन्नी भी उसका सम्मान नहीं करते हैं।

प्रेमी मनोज के संग भागकर नया घर बसाती है तो यहाँ भी पारिवारिक यातनाएँ उसका पीछा नहीं छोड़ती हैं। उसका दाम्पत्य जीवन सुखी नहीं है। वह मनोज को छोड़कर वापस उसी घर के विषाक्त वातावरण में आने के लिए मजबूर है। वह मानती है कि वह इस घर से कुछ ऐसी चीज या हवा ले गई है जो उसे सहज नहीं रहने देती है।

3. **बिखराव भरा व्यक्तिव**-पारिवारिक विघटन अजनबीपन कुण्ठा एवं अलगाव-बोध ने बिन्नी के व्यक्तित्व को कुचल कर रख दिया है। सम्पूर्ण नाटक में उसके चेहरे पर अवसाद तथा उतावलापन झलकता है। वह कभी युवाओं की तरह चंचल होकर मनोज के साथ घर से भाग जाती है और कभी प्रौढ़ों की तरह अपने परिवार के सदस्यों को शिक्षाप्रद सांत्वना देती है। अपने इस बिखराव को दूर करने अथवा उससे मुक्ति पाने के लिए बिन्नी कभी मनोज से लड़ पड़ती है। कभी उनसे दूर रहना चाहती है, कभी उसकी इच्छा के विरूद्ध नौकरी कर लेना चाहती हैं उसके मन में गुबार फट नहीं पाते, अपनी माँ से अपने इस बिखराव को वह इन शब्दों में व्यक्त करती है

"एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अन्दर भरा रहता है और मैं इंतजार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे बाहर निकल लूँ। ...क्योंकि मुझे कहीं लगता कि .... कैसे बताऊँ क्या लगता है? वह

(सनोज) जितने विश्वास के साथ यह बात करता है, उससे...उससे मुझे अपने से एक अजब-सी चिढ़ होने लगती है। मन कहता है मन करता है कि आस-पास की हर चीज को तोड-फोड डालूँ।

बिन्नी का यह बिखराव उसके व्यक्तित्व को अधूरा बना देता है। वह मनोज से सच्चा प्यार करके भी उसके साथ अजनबीपन महसूस करती है। उसके मन की यही अशान्ति उसके दु:खों को मूल कारण बनती है।

टिप्पणी

4. **पारिवारिक रिश्तों में संवदेनशीलता** - बिन्नी के चरित्र का सबसे उज्जवल पक्ष यह है कि वह पारिवारिक रिश्तों में अत्यन्त संवेदनशील है। वह अपने माता-पिता, भाई-बहन एवं पति मनोज के साथ गहन रूप से जुडी है। माता-पिता के घर का तनाव उसे खलता है। वह घर के दमघोटू वातावरण से भागी जरूर थी। परन्तु उसे अपने परिवार के सभी सदस्यों से बहुत लगाव है। बिन्नी खुद अपने दाम्पत्य जीवन की एक रसता से तनाव पूर्ण है। फिर भी अपने माता-पिता का तनाव कम करना चाहती है। वह अपनी माँ की सहेली जैसी बनकर उसके तनाव को कम करना चाहती है यथा

   "*बड़ीलड़की-* (उसके पीछे जाकर) ममा!

   तुम तो आदी ही रोज-रोज ऐसी बातें सुनने की। कब तक इन्हें मन पर लाती रहोगी।

   (उसकी तरफ आती) एक तुम्हीं करने वाली हो सब कुछ इस घर में। अगर तुम्ही पिता के प्रति भी उसकी सहानुभूति है। वह अपने भाई-बहन को ममता एवं शिक्षा देती हैं परन्तु उसकी विडम्बना यह है कि वह अपने परिवार को तनाव एवं घुटन से मुक्ति दिलाने में कोई कारगर भूमिका नहीं निभा पाती है। वस्तुत: उसकी एक भूल ने उसको संघर्ष की जड़ बना दिया है।

अत: कहा जा सकता है कि पारिवारिक परिस्थितियों ने बिन्नी जैसी सुशिक्षित युवती को चंचल हृदया, आवारा कुण्ठित एवं बिखरे व्यक्तित्व की स्वामिनी बना दिया है। पारिवारिक यन्त्रणाओं से अभिशप्त इस युवती के पूरे व्यक्तित्व में बिखराव एवं अधूरापन दिखाई देता है। परन्तु अपने इस बिखरे व्यतित्व में भी वह पारिवारिक रिश्तों में अत्यन्त संवेदनशील है। अपने आप टूटकर अपने परिवार को बचाए रखने की कोशिश उसके चरित्र का उज्जवल पक्ष है।

सावित्री - सावित्री 'आधे-अधूरे' नाटक की प्रमुख एवं सशक्त पात्रा है। वह नाटक में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक विद्यमान रहती है तथा नाटक की सभी घटनाओं के मूल में वहीं है। नाटक के अन्य सभी पात्र उससे सम्बन्धित है तथा फलभोक्त्री भी वहीं सिद्ध होती है। अत: निर्विवाद रूप से नाटक की नायिका है। उसके बहिरंग व्यक्तित्व का चित्रांकन नाटककार ने इस प्रकार से किया है "उम्र चालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष। ब्लाऊज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरुचिपूर्ण। दूसरी साड़ी विशेष अवसर की।"

सावित्री इस नाटक की सबसे अधिक विवादास्पद एवं सशक्त पात्रा है। सावित्री का दोहरा व्यक्तित्व है, एक घर के भीतर और दूसरा बाहर। घर में उसे अपने पति व बच्चों की देखभाल, चिन्ता करनी हैं बाहर उसका अपने बॉस से संबंध बनाए रखना तथा अपने बेटे की नौकरी के लिए पर-पुरुषों से संबंध रखना। लेकिन यह न उसके बेटे को पसंद है न पति को। आज का जमाना सिफारिश और पैसों का है। सावित्री की त्रासदी ही यह है कि घर में दो पुरुषों के होने पर भी उसे ही बाहर के आदमियों से निपटना पड़ता है। सावित्री के निमंत्रण पर घर आए मेहमानों का बेटा मजाक उड़ाता है तो पति घर से गायब रहता है। वह तंग आकर एक दिन बेटे से कह देती है श्अगर उसे यह पसन्द नहीं तो वह आज से उसे लिए कोशिश करना बन्द कर देगी।' अगर बाप-बेटे को सावित्री का यह रूप पसंद नहीं तो वे उसकी नौकरी छुड़वाकर स्वयं जा सकते हैं। यह काम वे करना नहीं चाहते और उसे ताने देने से भी नहीं चूकते। 'आधे-अधूरे' में नारी की इस मनोव्यथा का यथार्थ चित्रण हुआ है। आखिर अपने परिवार के लिए इतना खपकर सावित्री को क्या मिला? वही अपमान ताने व्यंग्य आदि। उसकी आदते उन्हें पसंद नहीं थी पर वे फिर भी चुप थे क्योंकि उसी से घर का खर्चा चल रहा था।

टिप्पणी

कहा जाता है कि गृहलक्ष्मी से ही घर स्वर्ग बनता है। अगर वह उच्छृखल हुई तो अच्छा खासा घर भी नरक बन जाता है। आधुनिक विचारों वाली शिक्षित एवं नौकरीपेशा नारी भी अपने घर को स्वर्ग बना सकती है, यदि वह खोखली एवं अर्थहीन महत्वाकांक्षा में न पड़कर अपने व्यक्तित्व को संयमित बनाए रखे। अगर वह झठे दिखावे, अर्थहीन स्वाभिमान कोरी चपलता से दिग्भ्रमित हो जाए, तो भले ही वह तितली बन जाएगी पर गृहिणी कदापित नहीं बन सकती। 'आधे-अधूरे' नाटक में सावित्री एक ऐसी गृहिणी है जिसका भरा-पूरा परिवार तो है पर वह उस परिवार को घर नहीं बना पाती। वह दीन-हीन और आत्मसमर्पण वाली नारी न होकर अपने अहं और स्वाभिमान को सुरक्षित रखने वाली स्वावलम्बी स्त्री है। सारे परिवार के बोझ को ढोती वह अपनी मर्जी अपनी इच्छाओं को सब पर लादने की क्षमता रखती है। क्योंकि वह परिवार का आर्थिक केन्द्र बिन्दु है अन्य सभी उस पर आश्रित है। आर्थिक रूप से परिवार की पोषिका होने के कारण वह अपनी उच्छखल महत्वाकाक्षाओं को जबर्दस्ती परिवार को थोपती और पूरे परिवार के विघटन का कारण बनती है। अत: नाटक में सावित्री की प्रमुख रूप से निम्नलिखित चारित्रिक विशेषताएँ उभर कर सामने आती है

1. **कर्त्तव्य बोध युक्त नारी** - नाटक में महेन्द्रनाथ तो कर्त्तव्यपथ से विचलित है। परन्तु सावित्री नाटक में कर्त्तव्यपरायण नारी के रूप में दृष्टिगोचार होती है। सतपत्री कठोर परिश्रम करके उपने बेकार-बेगार पति महेन्द्रनाथ और अपने बाल-बच्चों का भरण-पोषण करती हैं नाटक के प्रारम्भ में ही वह लदी-थकीहारी घर में प्रवेश करती है। नाटककार का कहना है "स्त्री (सावित्री) कई-कुछ सँभाले बाहर आती है। कई-कुछ में कुछ घर का है, कुछ दफ्तर का है, कुछ अपना। चेहरे पर दिन-भर के काम की थकान है और इतनी चीजों के साथ चलकर आने की उलझन। आकार सामान कुर्सी पर रखती हुई पूरे कमरे पर एक नजर डाल लेती है।" इस प्रकार एक ओर तो सावित्री परिवार के लिए अर्थार्जन करती है। तो दूसरी तरफ बाल-बच्चों की जिम्मेदारी-दायित्व को भी अपने दुर्बल कन्धों पर दृढ़ता से सँभाले हुए है। अपने पुत्र अशोक, पुत्री बिन्नी-किन्नी के विकास-सुख-सुविधा के लिए भी चिन्तित है। इस घर का कुछ बन जाए, इसलिए भी वह भरसक प्रयास करती हैं। इसी हेतु वह अपने बॉस सिंघानियाँ को घर पर आमन्त्रित करती है। और अपने बच्चों को भविष्य एक परिवार की आर्थिक दशा सुधारने के लिए अपने चरित्र को भी पतन की गर्त में गिरा देती है। डॉ सुन्दर लाल कथरिया का कहना है - "सावित्री उस आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है जिसका पति महेन्द्रनाथ निठल्ला है। फलत: वह परिवार के संचालन का बोझ ढ़ोती है। उसे अपने बेटे की नौकरी और बेटी के सुख की चिन्ता है। परिवार की आर्थिक अन्यवस्था और उसे उत्पन्न तनाव से वह दिनोंदिन कटु होती जाती है। परिवार के लिए दिन-रात जुटे रहकर भी वह उपेक्षा और तिरस्कार पाती है।

2. **महत्त्वाकांक्षी आधुनिक नारी** -आधे-अधूरे' नाटक में सावित्री एक महत्त्वाकक्षी नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती है। महेन्द्रनाथ सावित्री की महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ है। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु वह अन्य पुरुषों का अवलम्बन पाकर घर में विषैले वातावरण से मुक्त होने का प्रयत्न करती है। किन्तु उसके जीवन में आने वाले सभी पुरुष-जुनेजा, शिवजी, जगमोहन और मनोज-अपनी किसी-न-किसी दुर्बलता से अपूर्ण सिद्ध होते हैं। आगे का मार्ग बन्द पाकर जब वह अतीत में लौटकर एक नई जिन्दगी अपनाने के संकल्प से जाती है, तो वहाँ भी जगमोहन बच्चों के भविष्य की आड़ में अपना दामन छुड़ा लेता है। वह पुन: ढही हुए संकल्पों की रेत में लौट आती है। कितनी त्रासदायक बन जाती है

जिन्दगी, जब व्यक्ति चाहकर अपनी परिस्थितियों से मुक्त न हो पाए, उब अतीत और अविष्य वर्तमान के अंधेरे में खो चुके हो। अपूर्णता के इस संसार में पूर्णता की अपेक्षा करना अपने साथ दूसरों के जीवन में विष घोलने के समान है। नाटक के अन्त में आने वाला जुनेजा सावित्री के जीवन की इसी वास्तविकता पर प्रकाश डालता है। कि चारों पुरुषों में से कोई भी पुरुष उसका पति होता तो भी उसकी निराशा का स्वरूप यही होता। जुनेजा के निम्न संवाद सावित्री के अवचेतन का प्रतिबिम्ब है "क्योंकि तुम्हारे यहाँ जीने का मतलब रहा है...कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना।" नाटककार का कहना है "जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं, उसकी तनख्वाह को, नाम एवं रूतबे को बुलाया है।" ' प्रारम्भ में महेन्द्रनाथ एक समृद्ध व्यापारी था, इसी हेतु सावित्री उससे विवाह करती है। महेन्द्रनाथ स्पष्ट कहता है-उन दिनों इस घर का खर्च बहुत अधिक था तथा सावित्री को खुश करने के लिए वह चार सौ रुपए महीना के किराए पर बड़ी-बड़ी कोठियों लेता है, किस्तों पर फ्रीज खरीदता है और आना-जाना भी टैक्सियों में होता तथा बच्चों को कॉन्वेट जैसे महँगे स्कूलों में पढ़ाया जाता है।" परन्तु अब सावित्री अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु विपथगामिनी बन जाती है।

अत: कहा जा सकता है कि सावित्री उस आधुनिक नारी का प्रतिरूप है जो अपनी महत्तवाकांक्षाओं और इच्छाओं की पूर्ति हेतु पर-पुरुषों से अनैतिक संबंध बनाकर भारतीय नारी के आदर्श एवं एक गरिमा को ठेस पहुँचाती है तथा अपने परिवार के विघटन का कारण बनती है।

3. **भौतिक सुख** - सुविधा भौतिक भोगिनी नारी सावित्री वास्तव में एक सुविधा भोगिनी नारी है। वह केवल अपनी सुविधाओं पर ध्यान देती है। वह यह भी नहीं सोचती कि उसकी भोगवादिता परिवार पर घुन लगा रही है। वह कामुक और सुविधाजीवी नारियों का ही प्रतिनिधित्व करती है। अपना पति उसे आधा-अधूरा लगता है क्यों? इसलिए कि वह उसमें अपना एक मादा, अपनी एक शख्सियत नहीं देखती। वह आदमी में कई चीजें एक साथ देखना चाहती है पद भी व्यक्तित्व भी, वैभव भी और एक पूरा आदमी भी। सावित्री के साथ विवाह के समय महेन्द्रनाथ एक सफल एवं समृद्धशाली व्यापारी था और सावित्री की इच्छाएँ असीम, अनन्त और अपार थी लेकिन महेन्द्रनाथ की नासमझी और ऐय्याशी प्रवृत्ति ने सारे धन को लुटा दिया, जिसके कारण सावित्री की इच्छाओं पर तुषारापात हो गया। सावित्री को कठोर परिश्रम करके अब पूरे परिवार का पाल-पोषण करना पड़ता है और अपने सुखों के प्रति ललक के कारण ही वह जगमोहन के साथ घर छोड़ने के लिए तत्पर सुप्रसिद्ध रंगशिल्पी ओम शिवपुरी का कहना है-"महेन्द्रनाथ सावित्री से बहुत प्रेम करता है। सावित्री भी उसे चाहती रही होगी लेकिन ब्याह के बाद महेन्द्रनाथ को बहुत निकट से जानने पर उसे उससे वितृष्णा होने लगी, क्योंकि जीवन में सावित्री की अपेक्षाएँ बहुमुखी और अनन्त है।" नाटक में पुरुष चार अर्थात् जुनेजा स्त्री की उच्च महत्त्वाकांक्षाओं और मृग तृष्णा और उसके अन्तर्विरोध को प्रकट करते हुए कहता है

- "पुरुष चार-असल बात इतनी है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिंदगी में तो साल-दो साल बाद, तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिंदगी में भी ऐसे ही कोई महेन्द्र कोई जुनेजा कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकी वजह से तुम यही सब सोचती यही सब महसूस करती। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना-कुछ एक साथ होकर कितना-कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना-कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल

टिप्पणी

पाता इसलिए जिस-किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करतीं, तुम हमेशा इतनी ही खाली इतनी ही बेचौन बनी रहती।

4. **दाम्पत्य जीवन से असन्तुष्ट नारी** - सावित्री अपने दाम्पत्य जीवन से असन्तुष्ट है। वह अपने पति महेन्द्रनाथ के निठल्लेपन, पराश्रित एवं दब्बूपन के कारण उसे पति रूप में पाकर सन्तुष्ट नहीं है। विवाह से पूर्व महेद्रनाथ एक सफल और धनाढ्य व्यापारी था लेकिन उससे विवाह के बाद सारा पैसा ऐय्याशी में उड़ा दिया जिसके कारण परिवार का जीवन में सुखों के प्रति गहरी ललक थी और उसकी इच्छाएँ भी असीम और अनन्त थी। लेकिन अब उसकी इच्छाएँ पूरी नहीं हो सकती थी, वह महेन्द्रनाथ को आधा-अधूरा मानकर उसके लिए कभी भी पत्नी-प्रेम का समर्पण नहीं कर पाई। इतना ही नहीं क्षुब्ध हालत में तो वह अपने-आप को महेन्द्र की पत्नी मानने से भी इनकार करती है।

"मत कहिए मुझे महेन्द्र की पत्नी। महेन्द्र भी एक आदमी है, जिसके अपना घर-वार है, पत्नी है, यह बात महेन्द्र ने ब्याह क्या किया, आप लोगों की नजर में आप का ही कुछ आपसे छीन लिया। महेन्द्र अब पहले की तरह हँसता नहीं। महेन्द्र अब दोस्तों में बैठकर पहले की तरह खिलता नहीं। महेन्द्र अब वह पहले वाला महेन्द्र नहीं रह गया। और महेन्द्र ने जी जान से कोशिश कि वह वही बना रहे किसी तरह। कोई यह न कह सके दीवारों से पटकता है। बच्चों को पीटता है। बीवी के घुटने तोड़ता है।"

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि सावित्री दाम्पत्य जीवन से कितनी असन्तुष्ट थी। विवाह के दो वर्ष के भीतर ही महेन्द्रनाथ सावित्री को एक पूरे आदमी का आधा-चौथाई से भी कम, एक लिजलिजा ओर चिपचिपा आदमी लगने लगता है और पूरे आदमी की तलाश में उसके सामने सबसे पहले आता है महेन्द्र का मित्र जुनेजा, जो पैसे और दबदबे वाला एक काइयाँ व्यक्ति है। जुनेजा के साथ कोई मार्ग न मिल पाने के कारण उसकी दृष्टि क्रमशः शिवजीत, जगमोहन, मनोज एंव सिंघानिया जैसे पर पुरुषों पर पड़ती है। वह उनके साथ अपने बाकी जीवन को बिताने की असफल कोशिश करती है।

5. **विपथ गामिनी एवं अहंकारी महिला** - सावित्री इस नाटक में एक ऐसी कामुक और विपथगामी आधुनिक महिला का प्रतिनिधित्व करती है जो अपनी सुविधाओं के मोह में यहाँ-से-वहाँ भटकती है किन्तु उसे हर पुरुष एक जैसा मिला जिसने उसे निचोड़ा, रस लिया और फिर निचुड़ी स्थिति में या तो उसकी लड़की को रात के अंधेरे में भगा ले गया या फिर उसे सहानुभूति के दो-चार शब्द कहकर दुत्कार दिया।

अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और काल्पनिक पूरे पन की तलाश में वह भारतीय नारी के समस्त आदर्शों को सूली पर चढ़ाकार पाँच-पाँच पुरुषों से अनैतिक सम्बन्ध बनाती हैं ऊँचे पद तनख्वाह और व्यक्तित्व के लिए अपने पतिव्रत रूप को त्याग कर विपथगामिनी बनती हैं तथा अपने परिवार की घुटन-टूटन का कारण बनती है।

इसके साथ-साथ वह स्वावलम्बी एवं कमाऊ महिला है और उसकी पति निठल्ला, बेकार, बेगार है। जिसके कारण वह अहं भाव से युक्त हो गई है। वह चाहती है कि इस घर में जो कुछ भी हो वह उसी की इच्छा के अनुरूप हो। वह इतनी अहंकारी महिला है कि अपने पति महेन्द्रनाथ को भी पति स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। वह स्पष्ट कहती है मत कहिए मुझे महेन्द्र की पत्नी।' वह पग-पग पर महेन्द्र के गृहपतित्व को चुनौती देती है

टिप्पणी

"पुरुष एक - पर बात तो मेरे ही घर की हो रही है।

स्त्री - तुम्हारा घर। हुँह। पुरुष एक-तो मेरा घर नहीं है यह? कह दो नहीं है।

स्त्री - सचमुच तुम अपना घर समझते इसे, तो।"

वह अपने पति महेन्द्रनाथ के मैले पाजामें को इस प्रकार उठाती है जैसे मरा हुआ जानवर। वह महेन्द्रनाथ का पाजामें, चाय की जूठी प्यालियों आदि के लिए भी डाँटती है।

वह इतनी जिद्दी हठीली एवं अहंभाव से युक्त महिला है कि पुरुष चार (जुनेजा) के याद दिलाने पर उसके समक्ष अपनी हठी का प्रदर्शन करते हुए महेन्द्रनाथ को अपने ही पास रख लेने को कहती है। वह पुरुषों की इस साजिश के प्रति क्षुब्ध हो उठती है और कहती है "आप जाइए और कोशिश करके उसे हमेशा के लिए अपने पास रखिए। इस घर में आना और रहना सचमुच उसके हित में नहीं। और मुझे भी....मुझे भी अपने पास उस मोहरे की बिल्कुल-बिल्कुल जरूरत नहीं है। जो न खुद चलता है और न किसी और को चलने देता

6. **यन्त्रणाओं की शिकार** - इस नाटक में सावित्री का इतना फ्लर्ट (आवारा) होना एक मनोवैज्ञानिक कारण भी रखता है। यह ठीक है कि वह अपनी महत्तवाकांक्षाओं की मृग तृष्णा में वह पद, सम्मान, वैभव और पूरे आदमी की तलाश में भटकी है। परन्तु महेन्द्रनाथ के व्यवहार, उसकी परमुखपेक्षिता, दब्बू प्रकृति, निठल्लापन आदि की प्रतिक्रिया में वह मानसिक आघातों से पीड़ित हुई है तथा काल्पनिक पूरेपन की तलाश में आवारा बनी है।

   जीवन के हर मोड़ पर अपने पति की असफलताओं से क्षुब्ध सावित्री का नारीत्व विद्रोह करने लगता है। वह अपने पति के रूप में पूरे आदमी की तलाश की और यथोचित यंत्रणा झेलती है। महेन्द्रनाथ के व्यवहार को... कई स्थलों पर स्पष्ट रूप से चित्रित किया हैं यथा "फलाँ से तुम ठीक से बात क्यों नहीं करती? तुम अपने को पढ़ी-लिखी कहती हो।.....तुम्हे तो लोगों के बीच न उनके बैठने की भी तमीज नहीं है....और वही महेन्द जो दोस्तों के बीच .... मुस्कराता है, घर आकर एक दरिंदा बन जाता है।..... बोल, बोल, बोल चलेगी उस तरह कि नहीं जैसे ..... वह सब नहीं जो मैं कहता हूँ।" पर सावित्री फिर भी वैसे नहीं चलती। वह सब कि नहीं मानती।

   बड़ी लड़की बिन्नी के शब्दों में महेन्द्रनाथ का राक्षस रूप उभर कर सामने आता है। "आप शायद सोच भी नहीं सकते कि क्या-क्या होता रहा है यहाँ। डैडी का चीखते हुए ममा के कपड़े तार-तार कर देना..... उनके मुँह पर पट्टी बाँधकर उन्हें एक कमरे में पीटना.... खींचते हुए गुसलखाने के कमोड पर ले जाकर ..... (सिहरकर) मैं तो बयान भी नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने।

   इस प्रकार सावित्री के चरित्र में आवारापन वर्तमान आर्थिक विसंगतियों, बढ़ती महत्त्वाकांक्षाओं और पाते के निठल्लेपन और पारिवारिक यन्त्रणाओं के कारण है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सावित्री पूरे नाटक की केन्द्रीय पात्रा है। नाटक की समस्त कथावस्तु उसके चारों तरफ घूमती है। नाटक की फलभोगिन भी वही है। अत: हम उसे नाटक की नायिका कह सकते हैं। परिस्थितियों और महत्त्वाकांक्षाओं ने उसे भटकाया है। भटकाया ही नहीं छला पति भी है। कुल मिलाकर सावित्री का चरित्र वर्तमान समाज में विवशतावंश नौकरी के बोझ से दबी मध्यवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करता है। पति की आर्थिक असफलता घर के बोझ को पूर्णतया उस लाददेती है।

टिप्पणी

घर की टूटती-बिखरती जिन्दगी से ऊब कर पिछले बीस-बाईस सालों से अपनी कल्पना के एक पूरे आदमी की तलाश में इधर-उधर भागती है। अपने मादे और अपनी शख्सियत वाले पूरे आदमी की तलाश में वह अधूरे आदमीयो से टकरा-टकरा कर लौटती है और अपनी खीझ में चीखती-चिल्लाती, तार-तार होती है और उसी अधूरे पुरुष महेन्द्रनाथ के साथ जीने के लिए मजबूर होती है।

सावित्री को आधे-अधूरे' नाटक में उस महत्त्वाकांक्षिणी आधुनिक नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो पति की असमर्थता अथवा आर्थिक वैषम्य को उसका अधूरापन मानकर स्वयं अपने अधूरेपन को अन्य

पुरुषों के सम्बन्ध को पूर्ण होने का पूर्ण प्रयास करती है और वह पर-पुरुष आकर्षण उसके व्यक्तिव को ही तोड़कर रख देता है।

3.13 आधे-अधूरे : मूल्यांकन और आधुनिक जीवन के प्रश्न

आधुनिकता ने सामंतवाद से आगे जाकर एक नवीन दृष्टि का प्रतिपादन किया है जिसे मोटे रूप में आधुनिक जीवन मूल्य कहा गया है। आधुनिक जीवन मूल्य से तात्पर्य ऐसी विचारप्रणाली व जीवन पद्धति से है जो समझ, समानता एवं विश्वबंधुत्व की बात करता हो। इस दृष्टि से जहाँ कहीं भी जींवत-पद्धति में असमानताएँ मिलने लगती है। वहाँ आधुनिक जीवन की विसंगतितीव्रगति से हमारे सामने दिखने लगती है। विसंगति, बिडम्बना, अन्तविरोध संत्रास जैसे पद आधुनिक जीवन की विसंगति ही है। "आधे-अधूरे' नाटक आधुनिक जीवन विसंगति को केन्द्र में रख कर लिया गया नाटक है।

'आधे-अधूरे' की कथावस्तु के केन्द्र में नगरी-मध्यमवर्गीय परिवार व उसकी अतृप्त इच्छाएँ हैं। नाटक के केन्द्र में एक परिवार है। परिवार का प्रसार क्रमशः मध्यमवर्ग तक सिमट जाता है मध्यमवर्गीय पारिवारिक विघटन की सारी समस्याएँ जो 'नई कहानी' के केन्द्र में थी, वह सब आधे-अधूरे में विस्तार-गहराई व तीव्रता से उठाई गई है। पारिवारिक विघटन नई कहानी के केन्द्र में था, आधे-अधूरे में वह विघटन और जटिल रूप धारण कर चुका है। यहाँ परिवार भी टूट रहा है लेकिन साथ लगाव भी है। प्रतिबद्धताएँ भी नहीं है, लेकिन मजबूरी भी है। यानी सामाजिक जीवन की जटिलत्य अपने अधूरेपन में व्यंग्यात्मक रूप से व्यक्त हुई है। सभी पात्र आधे-अधूरे हैं। अधूरेपन का एहसास व उसकी नियति आधुनिक जीवन समस्या है। अधूरेपन को व्यक्त करने के लिए नाटककार ने वर्व्य विषय व पात्र चयन सब में प्रयोग किया है। सावित्री अधुरेपन का केन्द्रीय प्रतीक है। नाटक में अधूरेपन को व्यक्त करता संवाद देखिये "पुरुष चार-असल बात इतनी ही है कि महेन्द्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिन्दगी में, तो साल-दो साल बाद, तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है।..... क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है कितना कुछ एक साथ होकर कितना-कुछ एक साथ पाकर और कितना-कुछ एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना-कुछ कभी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस-किसी के साथ भी जिंदगी शुरू करती, तु हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचौन बनी रहतीं। ..... कह सकते हैं कि सावित्री का अधूरापन 'प्रक्षेपण' के माध्यम से व्यक्त किया गया है। सभी पात्र आधे-अधूरे हैं। इसलिए वे अपनी पूर्णता को दूसरों में खोजने का प्रयास कर रहा है।

3.14 आधे-अधूरे : चरित्र और समाज

किसी भी समाज की गति-परिवर्तन का संकेत उसके चरित्रों में माध्यम से मिलता है। चरित्र निर्माण की रात इसीलिए किसी भी समाज में काम्य होती है, क्योंकि उसके बिना न तो समाज उठ सकता है

टिप्पणी

और न संस्कृति का संरक्षण ही हो सकता है। दूसरे शब्दों में चरित्र और समाज का संबंध अनिवार्य और परस्पर अन्योन्याश्रित है। इसी समझ के अनुसार साहित्य में चरित्रों की सृष्टि होती रही है। आदर्शवादी युग तक तो महनीय चरित्र' ही काम्य रहे लेकिन आधुनिकता के आगमन के पश्चात यथार्थवादी चरित्रों की सृष्टि पर बल दिया जाने लगा। यर्थाथवादी चरित्र अपने मूल रूप में 'आम आदमी' के करीब के चरित्र होते थे, जो प्राय: मनुष्य की मूल वृत्तियों से संचालित होते थे। क्रमश: इस प्रकार के चरित्र में भी क्रमश: दो वर्ग हो गये। एक प्रकार का चित्रण मुनष्य की संभावना और गतिशीलता को स्वीकार करता था तो दूसरे प्रकार का वर्ग मनुष्य के अवचेतन, मन, अतृप्ति यानी कुल मिलाकर सामाजिक दबाव तले जी रहे मनुष्य और उसकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं का ही चित्रण करता था। प्रथम प्रकार के वर्ग को प्रगतिशील या मार्क्सवादी पद्धति कहा गया तो दूसरे प्रकार के वर्ग को अस्तित्ववादी, व्यक्तिवादी या मनोविश्लेषणवादी। समझ की दृष्टि से किया गया विश्लेषण ही इस संदर्भ में हमारी मदद कर सकता है क्योंकि ये वर्गीकरण स्थूल रूप से किए गये हैं। इसके अतिरिक्त भी कई वर्गीकरण रहे हैं और कुछ ऐसे भी रहे हैं जिनमें परस्पर एक-दूसरे का मिश्रण भी हो गया है। नाटकीय चरित्र चित्रण विचारधारात्मक दबाव के बावजूद अपनी नाटकीय शर्तों की पूर्ति क्रम में अलग ही स्वरूप प्राप्त कर लेता है। नाटकीय चरित्र-चित्रण में इसीलिए एक ओर जहाँ पात्र अपने व्यक्तिव के प्रकटीकरण के लिए विचार का आश्रय लेता है वहीं दूसरी ओर नाटकीय भंगिमाओं का भी.....। आधे-अधूरे नाटक की पात्र संख्या सीमित है। पात्रों में काले सूट वाला व्यक्ति, पुरुष एक, पुरुष दो, पुरुष तीन, पुरुष चार, स्त्री (सावित्री), बड़ी लड़की, छोटी लड़की, लड़का इत्यादि पात्र ही है। इस नाटक का मुख्य पात्र कौन है? नाटक की प्रस्तावना में नाककार ने लिखा है- "नाटक अंत तक फिर भी इतना ही अनिश्चित बना रहता और यह निर्णय करना इतना ही कठिन होता है कि इसमें मुख्य भूमिका किसकी थी मेरी, उस स्त्री की, परिस्थितियों की या तीनों के बीच से उठते हुए कुछ सवालों की? ' स्पष्ट है यह नाटक परिस्थिति केन्द्रित है, पात्र केद्रित नहीं। पात्र इस नाटक में केन्द्रित नहीं है, यह नाटककार के पात्र संयोजन से भी स्पष्ट हो जाता है। पुरुष एक (महेन्द्रनाथ), पुरुष दो (सिंघानिया), पुरुष तीन (जुनेजा), पुरुष चार (जगमोहन) के नाम से ही संबोधन है, यह व्यक्तिवहीनता का चरम हैं चरित्रों की प्रधानता की दृष्टि से बात करें तो सावित्री नाटक की प्रधान पात्र ठहरती है क्योंकि अन्या सारे पात्र उसी की क्रिया-प्रतिक्रिया में विकसित होते हैं।

अधूरेपन, टूटन-विखराव को इस युग की नियति के रूप में नाटककार ने अपनी स्वीकारोक्ति दे दी है, लेकिन उसके मूल कारणों की ओर संकेत करके उसने अपने लेखकीय दायित्व का निर्वहन भी कर दिया है।

3.15 आधे-अधूरे और नाटकीय : रंगमंचीय संदर्भ

आधे-अधूरे' नाटक अपने कथ्य की नवीनता एवं रंगमंचीय प्रयोग दोनों दृष्टियों से चर्चित व लोकप्रिय हुआ था। हिन्दी नाटकीय परम्परा में एक ही व्यक्ति चार रोल करेगा। (फिल्मी पात्रों की तरह), यह परिकल्पना पहली बार मोहन राकेश ने प्रस्तुत की थी। आधे-अधूरे के बाद कुछ प्रयोगशील नाटकारों (सुरेन्द्र वर्मा जैसे) ने इस प्रयोग को बखूबी निभाया। एक ही व्यक्ति कई रोल करेगा, यह तो फिल्मों में भी होता है, लेकिन एक ही व्यक्ति दूसरे के रोल क्यों करेगा? आधे-अधूरे में इस प्रश्न को उठाया गया हैं काले सूट वाला आदमी, पुरुष एक, पुरुष दो, पुरुष तीन एवं पुरुष चार जैसे निर्देश इसलिए रखे गये हैं क्योंकि उनके नाम होने से भी कुछ फर्क पड़ने वाला नहीं था। क्योंकि व्यक्तिव की दृष्टि से उनमें कोई अन्तर नहीं है ..... सभी आधे-अधूरे हैं।

टिप्पणी

नाटककार ने प्रारम्भ में ही रंग-निर्देश व नाट्य निर्देश दे दिये हैं। पूरा नाटक एक कमरे को आधार बना करके मंचित हुआ है। इस संदर्भ में आवश्यक निर्देश नाटककार ने नाटक के प्रारम्भ में ही दिये हैं। इसी प्रकार बीच-बीच में नाटककार रंगमंचीय निर्देश देते चलता है, जैसे रंग निर्देश का एक उदाहरण देखें "हल्के अभिवादन के रूप में सिर हिलाता है जिसके साथ ही उसकी आकृति धीरे-धीरे धुंधलाकर कमरे में गुम हो जाती है। उसके बाद कमरे के अलग-अलग कोने एक-एक करके आलोकित होते हैं और एक आलोक-व्यवस्था में मिल जाते हैं ....." इसी प्रकार नाटक के अंत में नाटककार द्वारा दिये गये रंग-निर्देश देखें .... प्रकाश खंडित होकर स्त्री और बड़ी लड़की तक सीमित रह जाता है। स्त्री स्थिर आँखों से बाहर लड़की की तरफ देखती आहिस्ता से कुरसी पर बैठ जाती है। बड़ी लड़की एक बार उसकी तरफ देखती है, फिर बाहर की तरफ। हल्का मातमी संगीत उभरता है, जिसके साथ उन दोनों पर भी प्रकाश मद्धिम पड़ने लगता है। तभी लगभग अंधेरे में लड़के की बांह थामे पुरुष एक की धुंधली आकृती अंदर आती दिखाई देती है/

लड़का - (जैसे बैठे गले से) देखकर डैडी, देखकर

उन दोनों के आगे बढ़ने के साथ संगीत

आधे अधूरे : नाटक के अभिव्यक्त संवेदना एवं शिल्प

अधिक स्पष्ट और अंधेरा अधिक गहरा होता जाता है।

3.15 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **संवेदना की विविध परिभाषाओं को लिखकर उनकी विवेचना कीजिए।**
2. **मोहन राकेश के नाटक 'आधे अधूरे' में संवेदनाओं के विविध रूपों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।**
3. **स्त्री की त्रासदी के क्या अभिप्राय है?**
4. **'असंतोष की भावना' कथन की पुष्टि करे।**
5. **गोहन राकेश के नाटक 'आधे-अधुरे' नाटक की अभिनेयता की बिवेचना करे।**

विस्तुत उत्तरीय प्रश्न

1. **मोहन राकेश के नाटक 'आधे अधूरे' की वस्तु योजना किस प्रकार की है?**
2. **मोहन राकेश के नाटक 'आधे अधूरे' के नाम की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।**
3. **मोहन राकेश के नाटक 'आधे अधूरे' में पारिवारिक संबंधों के विघटन पर प्रकाश डाला गया है। इसको स्पष्ट कीजिए।**
4. **मोहन राकेश के नाटक 'आधे अधूरे' की संवाद योजना किस प्रकार की है?**
5. **देशकाल-वातावरण की दृष्टि से मोहन राकेश के नाटक 'आधे अधूरे' की समीक्षा कीजिए।**

♦♦♦♦♦

इकाई 4

भारतेन्दु युग

संरचना

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 नवजागरण तथा आधुनिक बोध
4.4 साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली के उपयोग का आरम्भ एवं विकास
4.5 भारतेन्दु युग
4.6 राष्ट्रीयता की भावना
4.7 सामाजिक दुर्दशा का चित्रण
4.8 नई सामाजिक चेतना
4.9 जनजीवन का चित्रण
4.10 काव्यानुवाद का आरम्भ
4.11 ब्रजभाषा का प्रयोग
4.12 छन्द अलंकार
4.13 काव्य कृतियाँ–नाटक, उपन्यास, इतिहास और पुरातत्व सम्बन्धी, यात्रा वृतान्त, जीवनी
4.14 भारतेन्दु युगीन पत्राकारिता और साहित्य
4.15 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

4.1 उद्देश्य

इस इकाई में भारतेन्दु युगीन साहित्य का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है तथा साथ ही इस युग के साहित्य की विशिष्ट प्रवृत्तियों की जानकारी दी गई है

- नवजागरण तथा आधुनिक बोध की संकल्पना से परिचित हो सकेंगे/
- साहित्यक भाषा के रूप में खड़ी बोली के उपयोग के प्रारम्भ और विकास की चर्चा कर सकेंगे/
- खड़ी बोली गद्य के विकास की जानकारी दे सकेंगे/
- भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता, गद्य साहित्य, निबन्ध उपन्यास तथा अन्य गद्य विधाओं से परिचित हो सकेंगे/
- भारतेन्दु युगीन कविता को विशेषताओं की जानकारी दे सकेंगे/

4.2 प्रस्तावना

भारतेन्दु युगीन कविता में भारतेन्दु ही प्रमुख हस्ताक्षर हैं। उनकी कविता में सामाजिकता का आशय बड़ी मात्रा में मुखर हुआ हैं। सामंती परिवेश से कविता निकलकर आयी थी। इसलिए स्त्री के प्रति विलासीता की भावना खत्म होकर उसकी दशा सुधारने हेतु शिक्षा आदि पर बल दिया जाने लगा। विधवा विवाह, बालविवाह, अंधविश्वास आदि की कठोर आलोचना होने लगी, वर्णव्यवस्था का कुछ कवियों ने विरोध किया तो कुछ की दृष्टि यथास्थिती वादी ही रही। वस्तुत: भारतेन्दु युग में अन्तविरोध साफ झलकते हैं। राष्ट्रीयता, ब्रिटिश शासन वर्णव्यवस्था, विधवा विवाह, जैसे मुख्य विषयों के संदर्भ में वे उभरकर आये हैं। जो भी हो परन्तु नये युग की कविता संक्रमणावस्था से गुजर रही थी इसलिए कुछ कुरितियों का खण्डन, सामाजिक दुरावस्था प्रति दुख, आर्थिक शोषण प्रति विरोध, खेद, धन विदेश जाने का विरोध जैसी कुछ प्रमुख घटनाओं का चित्रण कविता में आया हैं/

भारतेन्दु का युग साधारणत: डॉ० नगेन्द्र के अनुसार भारतेन्दु संपादित मासिक पत्रिका 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन वर्ष 1868 ई० से, सरस्वती के प्रकाशन वर्ष 1900 ई० तक हैं। अधिकांश विद्वानों ने आधुनिक युग का प्रारंभ ही 1843 से माना हैं। भारतेन्दु का जन्म 1850 में हुआ और मृत्यु 1885। डॉ० नगेन्द्र ने ही कहा हैं की, श्कोई काव्यप्रवृत्ति ठीक किसी निश्चित वर्ष प्रारंभ होकर किसी निश्चित वर्ष में समाप्त नहीं होती। डॉ० रामचन्द्र शुक्ल भी 1868 से 1883 तक के 25 वर्ष को काल की नयी धारा-प्रथम उत्थान के रूप में स्वीकृत करते हैं। मिश्र बंधुओं ने भी 1868-1888 इन 19 वर्षों को भारतेन्दु युग कहा हैं। डॉ. केसरीनारायण शुक्ल ने 1865 से 1900 तक के 35 वर्षों को भारतेन्दु काल माना है। मार्क्सवादी ऋषि डॉ. रामविलास शर्मा भी 1868 से 1900 तक के काल को भारतेन्दु युग ही मानते हैं किन्तु विद्वानों ने डॉ० नगेन्द्र के कालखण्ड को (भारतेन्दु युग) योग्य एवं तर्कशुद्ध रूप में स्वीकार किया हैं/

रीतिकाल का अंत हमने 1843 माना हैं तो 1843 से 1967 के बीच किस प्रकार का काव्य लिखा जा रहा होगा ऐसा प्रश्न पाठकों के मन से उभर सकता हैं। डॉ० नगेन्द्र ने उसका भी उत्तर दिया हैं, 1843 से 1967 तक का कृतित्व न तो पूर्णत: रीकिाल के प्रभाव-क्षेत्र के अन्तर्गत आता हैं और न इसमें भारतेन्दु-युग की पुनजागरणमूलक प्रवृतियाँ विद्यमान हैं। अत: इसका अनुशीलन भारतेन्दु युग की पृष्ठभूमि के रूप में किया जा सकता है। क्योंकी इस कालखण्ड में भक्ति, शृंगार, नीति, हास्य, वीर भावनाओं की साहित्य सृजना हो रही थी। काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का सृजन भी हो रहा था किन्तु आधुनिकता से उसका जुड़ाव पूर्णत: नहीं था। नये ढंग का लेखन मात्र भारतेन्दु से ही प्रारंभ हो जाता हैं।

टिप्पणी

भारतेन्दु युग की कविता का लक्ष्य किसी सामंत राजा को रिझाना, प्रसन्न करना नहीं था, लोक जागरण फैलाना था। इसलिए उन्होंने काव्य रूप भी बदले और काव्य प्रवृत्तियाँ भी। परिवेश तो बदल ही रहा था/

4.3 नवजागरण तथा आधुनिक बोध

वैसे साहित्य में काल खण्डो की प्रारम्भिक और अंतिम तिथियों विशेष सार्थक नहीं होती। साहित्य, भाषा विशेष के बोलने वालों की चेतना में आने वाले परिवर्तन का प्रतिबिम्ब होता है। चेतना में यह परिवर्तन एकाएक किसी तिथि-विशेष को नहीं होता, वह धीरे धीरे होता है। हिन्दी भाषियों ने नवजागरण और आधुनिक बोध क्रमशः विकसित हुआ। इस बात पर बराबर बहस होती है कि उन्नीसवीं सदी में भारतीय जनमानस में जो परिवर्तन हुआ, यह अंग्रेजों की देन है अथवा नहीं। यह मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि यदि अंग्रेजों के आगमन और उनके यहाँ शासक बनने ने भारतीय जनमानस को अत्यधिक प्रभावित किया। हमारे जीवन का हर पक्ष कही-न-कहीं अंग्रेजों के इस देश में आगमन से प्रभावित है।

अंग्रेजों के भारत में आगमन से भारतीय-मानस प्रभावित हुआ इसका सीधा-सा प्रमाण यह है कि इस देश के जिस भाग से उनका प्रभुत्व स्थापित हुआ उसी भाग से भारतीयों में नवजागरण और आधुनिकता की चेतना प्रारम्भ हुआ। सबसे पहले अंग्रेजों ने सन् 1757 ई० में प्लासी की लड़ाई जीतकर बंगाल पर अपना प्रभुत्व जमाया। ए.सी. सरकार ने इस वर्ष से बंगाल में मध्यकाल का अन्त और आधुनिक काल का प्रारम्भ माना है। 1818 ई० में महाराष्ट्र अधीन हुआ। महाराष्ट्र में आधुनिकता का प्रारम्भ इसी वर्ष से माना जाता है। सन् 1856 में अवध अंग्रेजों के अधीन हुआ। अवध के अंग्रेजों के अधीन होते ही लगभग सारा भारतवर्ष उनके अधीन हो गया। लेकिन अगले ही वर्ष 1857 ई० में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का सूत्रपात भी यही से हुआ। जिस क्रम से और जिन स्थानों से भारत पर अंग्रेजों का शासन स्थापित होना शुरू हुआ, उसी क्रम से और उन्हीं स्थानों से अंग्रेजों प्रशासन, शिक्षा-संस्थाएँ, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, समाज सुधार के आंदोलन आदि का प्रारम्भ हुआ। कलकत्ता में 1800 ई० में ओरियण्टल सैमिनरी की स्थापना की गयी, जो बाद में फोर्टविलियम कालेज कहलाया। इससे पहले 1780 ई० में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में विश्वविद्यालयों की स्थापना बहुत बाद में हुई। सबसे पहले राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' (1828 ई०) की स्थापना और मूर्तिपूजा, जातिप्रथा, सतीप्रथा आदि का विरोध किया तथा विधवा-विवाह, स्त्रीशिक्षा, स्त्री-पुरुष की समानता अंग्रेजी शिक्षा आदि का समर्थन किया।

4.4 साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली के उपयोग का आरम्भ एवं विकास

उन्नीसवी शताब्दी से पूर्व खड़ी बोली का साहित्यिक भाषा के रूप में प्रयोग नगण्य है। नाथों, महानुभाव, पंथियों, वारकरियों और कबीर पंथियों आदि ने अपनी रचनाओं में खड़ी बोली का जो उपयोग किया है, उसके पीछे प्रेरणा धर्म की है, न कि साहित्य। यह अलग बात है कि इसमें से कुछ की रचनाएँ साहित्यिक महत्व पा सकी। लेकिन खड़ी बोली को साहित्य के माध्यम के रूप में विकसित करने से इनका योगदान अवश्य स्वीकार करना होगा। सचेत रूप से साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ी बोली का उपयोग अमीर खुसरों ने किया। उन्होंने अपनी पहेलियाँ मुकरिया और कविताएँ खड़ी बोली में लिखी, लेकिन उनकी रचनाओं में खड़ी बोली का जो रूप आज मिलता है यह वही जिसका उपयोग खुसरों ने किया था, इस पर स्नेह प्रकार किया जाता है। संत कवियों की सखियों के अतिरिक्त, मीरा, माधोदास, रहीम, नरहरि, गंग, सूदन कुलपति, आलम शेख, भूषण, नागरीदास, ग्वाल, धनानंद, बेनी इत्यादि कवियों की रचनाओं में यंत्र-तंत्र खड़ी बोली के साहित्यिक भाषा के रूप में उदाहरण मिलते

टिप्पणी

है। दरअसल भारतेन्दु से पहले खड़ी बोली का साहित्यिक भाषा के रूप में उपयोग दक्खिन के कवियों और गद्यकारों ने किया। कवियों में गेसूदराज, मुहम्मद कुलीकुतुबशाह, इब्नशिनी, शेखसाडी आदि ने जिस भाषा में अपनी कविताएँ लिखी है। वह मूलत: खडी बोली है जिस पर अरबी-फारसी, मराठी तथा दक्षिण भारतीय भाषाओं का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा है। सन् 1700 के बाद इस दक्खिनी हिन्दी का अरबी-फारसीकरण किया जाने लगा और बाद में इसे उर्दू घोषित किया गया। दक्खिनी हिन्दी गद्य के लेखकों ख्वाजा बन्देनवाज गेसूदराज शाह मीराजी, शाह बुरहानदीन, अब्दुस्समद, मुहम्मद वली उल्ला कादरी, अबिदशाह अलहसन-उल-हुसैनी इत्यादि की गद्य रचनाओं की भाषा खडी बोली हिन्दी ही है। उसमें लेखकों के मुसलमान होने और गद्य रचनाओं में सूफी मत के निरूपण आदि के कारण अरबी-फारसी का पुट अवश्य है।

4.5 खडी बोली और साहित्यिक भाषा के रूप में उसका विकास

हिन्दी भाषा और गद्य के उदय के संबंध में हमने पहले भी विचार किया है। वहाँ हमने हिन्दी उर्दु के मसले पर भी विस्तार से चर्चा की है। यहाँ हम खड़ी बोली और साहित्य की भाषा के रूप में उसके विकास पर दृष्टि डालेंगे। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य से आधुनिक काल को अलग करने वाला एक क्षेत्र यदि नवजागरण और आधुनिकता बोध का विकास है तो दूसरा, महत्वपूर्ण क्षेत्र है साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में खड़ी बोली की स्वीकृति और विकास। विभिन्न कारणों से आधुनिक काल से पहले राजस्थानी, मैथिली, अवधी और ब्रजभाषा हिन्दी की साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। खड़ी बोली को तो आधुनिक काल में ही पहले गद्य की भाषा के रूप में और बाद में पद्य या काव्य की भाषा के रूप में स्वीकृति मिली। इसका अर्थ यह नहीं है कि खड़ी बोली आधुनिक काल में ही जन्मी। बोली या जनभाषा के रूप में वह भी उतनी ही पुरानी है जितनी हिन्दी क्षेत्र की अन्य बोलियाँ।

खड़ी बोली मूलत: दिल्ली और मेरठ के आसपास बोली जाने वाली है। इसका जन्म ग्यारहवीं शताब्दी में अपभ्रंश से वैसे ही हुआ जैसे अन्य हिन्दी बोलियों का हुआ। खड़ी बोली पुकारी जाने से पहले यह हिन्दी हिन्दी या दक्खिनी हिन्दी के नाम से पुकारी जाती थी। सबसे पहले 1803 ई. में लल्लू जी लाल और सदल मिश्र ने इसे खड़ी बोली कहा। प्रेम सागर में उन्होंने लिख "एक समै व्यासदेव कृत श्रीमत भागवत के दसम स्कन्ध की कथा को चतुर्भुज मिश्र ने दोहा चौपाई में ब्रजभाषा में किया। सो पाठशाला के लिए महाराजाधिराज सकल गुण निधान, पुण्यवान, महाजान मारकुइस वालिजलि गवर्नर जनरल प्रतापी के राज में श्री युतगुनगाहक गुनियन सुखदायक जान मिलकिरिक्त की आज्ञा से सवंत् 1860 में लल्लूजी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्त्र अवदीच आगरे वाले ने जिसका सार ले यामिनी भाषा छोड़ दिल्ली आगरे की 'खड़ी बोलीश में बहू नाम प्रेमसागर धरा।" उसी वर्ष सदल मिश्र ने नासिकेतोपाख्यान के संबंध में लिखाश-अब संवत् 1860 में नासिकेतोपाख्यान को जिसमें चंद्रवती की कथा कही है, देववाणी से कोई कोई समझ नहीं सकता, इसलिए खड़ी बोली में किया।" इसका नाम खड़ी बोली क्यों रखा गया और उसका अर्थ क्या है, इस पर बहुत विवाद रहा है इसकी चर्चा करना यहाँ अप्रासंगिक होगा।

4.6 भारतेन्दु युग

आधुनिक काल को कई उप-कालों में विभक्त किया गया है। डॉ० नगेद्र के अनुसार ये उप-काल निम्नवत् है

1. पुनर्जागरण काल (भारतेन्दु युग) - 1857 ई० - 1900 ई०

2. जागरण सुधार काल (द्विवेदी युग) - 1900 ई० 1918 ई०
3. छायावादी युग - 1918 ई०-1938 ई०
4. छायावादोत्तर काल
   (अ) प्रगति-प्रयोग काल (1938 ई०-1953 ई०)
   (ब) नवलेखन काल (1953 ई० ..... ई०)

उक्त वर्गीकरण काव्य की दृष्टि से है। गद्य में हुए विकास को अलग ढंग से समझा जा सकता है। आधुनिक काल के प्रथम चरण को भारतेन्दु काल कहना इसलिए उपयुक्त है क्योंकि यह नामकरण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के महिमामंडित व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर किया गया। भारतेन्दु जी का रचनाकाल सन् 1850 ई० से 1885 ई० तक रहा है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका का सम्पादन 1903 ई० में संभाला था। सरस्वती का प्रकाशन सन् 1900 ई० से प्रारंभ हुआ था अत: 1850 ई० से 1900 ई० तक को अवधि को भारतेन्दु युगश कहना समीचीन है। भारतेन्द जी सही अर्थों में हिंदी गद्य के जनक कहे जा सकते हैं। उनकी भाषा में न तो मुंशी सदासुखलाल की भाषा का पंडिताऊपन है, न लल्लूलाल का ब्रजभाषापन और न सदल मिश्र का पूरबीपन। राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक ही सीमित न था, वाक्य-विन्यास में भी व्याप्त था तो दूसरी ओर राजा लक्ष्मण सिंह की भाषा विशुद्ध एवं मधुर होते हुए भी आगरा की बोली का पुट लिए हुए थी। भारतेन्दु जी ने भाषा संस्कार करते हुए इन सभी दोषों से यथासंभव अपनी भाषा को मुक्त रखा। उन्होंने न केवल गद्य की भाषा का संस्कार किया। अपितु पद्य की ब्रजभाषा को भी सुसंस्कृत किया।

भारतेन्दु जी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने हिंदी साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया। देशहित एवं समाजहित की भावना का समावेश सर्वप्रथम भारतेन्दु जी की साहित्यक रचनाओं में हुआ है। बंगाल में लिखे गए नाटकों एवं उपन्यासों में इसका सूत्रपात पहले ही बंगाली लेखक कर चुके थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतेंदु के इस योगदान पर टिप्पणी करते हुए लिखा है-"हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद बढ़ रहा था, उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नए नए विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले हरिश्चंद्र ही हुए।"

भारतेन्दु युग की मझी हुई परिष्कृत भाषा को सामने लाएँ तो हिंदी भाषा जनता की बोली थी। अत: भाषा का जो विवाद उनसे पहले चल रहा था, वह बहुत कुछ सुलझ गया।

4.7 भारतेन्दु युग के साहित्यकार

भारतेन्दु जी ने यद्यपि 35 वर्ष की अल्पायु ही प्राप्त की किंतु इस अल्पकाल में ही उनके बीच लेखकों का एक अच्छा-खासा मंडल तैयार हो गया था जिसमें **पं0 प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधर प्रेमघन, ठाकुर जमोहन सिंह और पं. बालकृष्ण भट्ट** के नाम लिए जा सकते हैं।

भारतेन्दु जी की शैली के दो रूप हैं-1. भावावेश शैली, 2. तथ्य निरूपण शैली। इनमें से प्रथम शैली में लिखे गए वाक्य छोटे-छोटे हैं। भाषा एवं बोलचाल की है। तथ्य निरूपण शैली के अंतर्गत संस्कृत शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है।

पं0 प्रतापनारायण मिश्र विनोदी प्रकृति के थे, अत: उनकी भाषा में स्वच्छंदता एवं बोलचाल की चपलता और भावभंगिमा दिखाई पड़ती है।

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन के लेखों में गद्य काव्य के पुराने ढंग की झलक दिखाई पड़ती है।

टिप्पणी

पं0 बालकृष्ण भट्टकी भाषा वैसी है जैसी खरी-खरी कहने वालों की होती है। ठाकर जगमोहन सिंह की भाषा-शैली शब्द-शोधन और आनुप्रसिकता से युक्त है/

भारतेन्दु युग में गद्य का प्रारंभ भी नाटकों से हुआ। **भारतेन्दु जी** ने बंगला के नाटक, **विद्यासंदर** का हिंदी में अनुवाद किया। नाटकों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का उपयोग भी पहले पहल भारतेन्दु मंडल के लेखकों ने किया। यहीं नहीं ये लोग स्वयं भी नाटकों में अभिनय करते थे। **पं. शीतला प्रसाद त्रिपाठी** कृत **जानकी मंगल नाटक** में भारतेंदु जी ने स्वयं अभिनय किया था और इसे देखने स्वयं काशीनरेश महाराज ईश्वरी नारायण सिंह पधारे थे। प्रतापानायण मिश्र ने एक नाटक में अभिनय करने के लिए मूंछ मुड़वा लेने की आज्ञा अपने पिता से माँगी थी।

इस काल में अनेक अच्छे निबंधकार भी हुए जिन्होंने विविध विषयों पर निबंध लिखे। राजनीति, समाज, देश, ऋतु, पर्व, त्योहार, जीवन चरित्र तथा अन्य अनेक विषयों पर इस काल में निबंध लिखे गए/

बंगभाषा के अनकरण पर हिंदी में उपन्यासों की ओर झुकाव बढ़ रहा था। हिंदी का पहला उपन्यास **लाला श्री निवास दास** द्वारा लिखा गया। जिसका नाम है-**परीक्षा गुरु**। इसके उपरांत राधाकृष्ण दास ने निस्सहाय हिंदू और **पं0 बालकृष्ण भट्ट** और पं० बालकृष्ण भट्ट ने **नूतन ब्रह्मचारी** तथा **सौ अजान एक सुजान** नामक उपन्यासों की रचना की/

इस काल में उपन्यासों के अनुवाद की परंपरा भी चल रही थी। प्रतापनारायण मिश्र एवं ठाकुर जगमोहन सिंह ने भी बाँग्ला उपन्यासों के अनुवाद हिंदी में किए। यद्यपि इन अनुदित उपन्यासों की भाषा उन्नत नहीं थी तथापि हिंदी पाठकों को नए ढंग के सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का परिचय प्राप्त हो रहा था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द

भारतेंदु जी का जन्म 1850 ई० में तथा मृत्यु 35 वर्ष की अल्पायु में सन् 1885 ई० में हुई। इसे अप्लकाल में ही इस महान साधक ने माँ भारती के भंडार में अभूतपूर्व वृद्धि की। वे बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। उनके संपूर्ण कृतित्व का विवरण निम्नवत् है

मौलिक नाटक

1. वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति	2. चंद्रावली नाटिका	3. विषस्य विषमौषधम्
4. भारत दुर्दशा	5. नीलदेवी	6. अंधेर नगरी
7. प्रेम जोगिनी	8. सती प्रताप (अधूरा)	

अनूदित नाटक

1. विद्यासुंदर	2. पाखंड विडंबन	3. धनंजय विजय
4. कर्पूर मंजरी	5. मुद्राराक्षस	6. सत्य हरिश्चंद्र
7. भारत जननी	8. दुर्लभ बंधु	9. रत्नावली।

काव्य कृतियाँ

1. प्रेमाश्रुवर्णन	2. प्रेम माधुरी	3. प्रेम तरंग
4. उत्तरार्द्ध भक्त माल	5. प्रेम प्रलाप	6. गीत गोविंदानंद
7. सतसई सिंगार	8. होली	9. मधुमुकुल

टिप्पणी

10. रागसग्रंह 11. वर्षा विनोद 12. विनय प्रेम पचासा
13. फूलों का गुच्छा 14. प्रेम फुलवारी 15. कृष्ण चरित्र
16. तन्मय लीला 17. दान लीला 18. प्रबोधिनी
19. प्रातसमीरन 20. बकरी विलाप 21. रामलीला।

उपन्यास

1. हमरी हठ 2. रामलीला 3. सूलोचना
4. शीलवती 5. सावित्री चरित्र।

निबंध

1. सबै जाति गोपाल की 2. मित्रता 3. सूर्योदय
4. कुछ आप बीती कुछ जग बीती 5. जयदेव 6. बंग भाषा की कविता।

इतिहास ग्रंथ

1. कश्मीर कुसुम 2. बादशाह दर्पण।

भारतेंदु जी के पिता **गोपालचंद्र** भी अच्छे कवि थे और **गिरधरदास** नाम से कविता करते थे। भारतेन्दु जी के काव्यगुरु पं. लोकनाथ थे/

भारतेन्दु जी के नाटकों, निबन्धों में विषय वैबिध्य था। चद्रावली नाटिका में प्रेम के आदर्श का निरूपण है, तो नीलदेवी ऐतिहासिक नाटक है। भारत-दुर्दशा में देश की दशा का चित्रण है तो विषस्य विषमौषध म् में देशों रजवाड़ों के षड्यत्रों का पर्दाफाश किया गया है। प्रेम जोगिनी में धार्मिक पाखंड का चित्रण हैं उनकी कविता में भक्ति भावना, शृंगारिकता के साथ-साथ स्त्री शिक्षा, समाज सुधार, राष्ट्रीयता आदि का बेजोड़ संगम हैं भारतेदु युग के अन्य लेखकों ने भी अपने समाचार पत्रों-पत्रिकाओं एवं रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों, मिथ्याचारों, अधविश्वासों पर कुठाराघात किया।

भारतेंदु युग के प्रमुख कवियों में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के अतिरिक्त प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, अम्बिकादत्त व्यास, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वमी आदि है। भारतेंदु जी के नाटकों में जो गीत हैं उनमें एक और तो भारत के अतीत गौरव का अंकन किया गया है, तो दूसरी ओर वर्तमान अधोगति का चित्रण हैं प्रतापनारायण मिश्र की हरगंगा हिंदी की हिमायत, बुढ़ापा आदि कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हुई। बदरीनारायण चौधरी की कविताओं में भी समकालीन विषयों का उद्घाटन किया गया है। उनकी कविताओं में देश की तत्कालीन दशा का भी यथार्थ चित्र अंकित किया गया है।

4.8 भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

भारतेन्दु बाबु को आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवर्तक माना जाता है। भाषा, काव्य रूपों की विविध ता, नया जागरण संदेश उन्हीं की कविता द्वारा हिन्दी साहित्य में आया। इसलिए हिन्दी नवजागरण के साहित्यिक अग्रदूत भी उन्हें कहा जाता हैं। शृंगार और विलासिता के केंचूल को उन्होंने दूर किया था और कविता को जनसाधारण के निकट लाया। नायिका का नखशिख वर्णन, और विरह की व्याकुल का स्थान, देश की जनता की दुर्दशा का वर्णन, देश स्वाभिमान की भावना ने ले लिया। यही कारण है की शृंगार, अलंकार, रीति निरुपण, प्रकृति का उद्दीपन चित्रण प्राय: कम होता गया। भक्ति, नीति भी

टिप्पणी

पिछड़ती गयी। जातीय, राष्ट्रीय प्रबोधन को पराश्रय मिला। राष्ट्रीय भावनाओं का देश भक्ति का चित्रण इस कालखंड में अधिक देखा जा सकता है। शिक्षा का महत्व, विधवा विवाह का समर्थन, बालविवाह का विरोध, अंग्रेजी राजनीति की आलोचना, राजभक्ति, गो-रक्षा जैसे विषय कविता के केन्द्र में आए। ब्रिटिशों ने भौतिक साधनों तर्क पद्धतियों शासन प्रबंधन से नया युग पहले ही लाया था। मुद्रण तंत्र का आविष्कार, समाचारपत्रों का विकास आदि ने जन-जागरण को फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। समाजसुधार एवं देश सुधार की भावना पल्लवति-पुष्पित होती गई।

भारतेन्दु काल के प्रमुख अन्य साहित्यकारों ने भी भारतेन्दु की प्रवृत्तियों को स्वीकारा और साहित्य सृजन किया। जिनमें महत्वपूर्ण है, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र जगमोहन सिंह, राधाकृष्ण दास, जगन्नाथदास रत्नाकर, नवनीत चतुर्वेदी आदि। डॉ० नगेन्द्र ने राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, भक्तिभावना, श्रृंगारिकता, प्रकृति चित्रण, हास्य-व्यंग, रीति-निरुपण, समस्यापूर्ति काव्यानुवाद, कलापक्ष के अन्तर्गत आनेवाली प्रवृत्तियों का विश्लेषण अपने इतिहास में किया हैं।

राष्ट्रीयता की भावना

भारतेन्दु युग में देशभक्ति के साथ राजभक्ति की प्रसार भावना का आविष्कार हुआ हैं। देशभक्ति के अंतर्गत ही राष्ट्रीयता का विस्तार मात्र उनकी उपलब्धि रही हैं। वीर प्रताप, छत्रसाल, राजा शिवाजी ने क्षेत्र विशेष वीरता, राष्ट्रीयता का प्रतिपादन किया। भूषण जैसे कवियों ने उसी प्रकार का चित्रण किया परन्तु स्वयं बाबू भारतेन्दु ने क्षेत्रियता से ऊपर संपूर्ण राष्ट्र की नब्ज को टटोलने का प्रयास किया। इस काल के कवियों में देशभक्ति एवं राजभक्ति की भावना का कविता द्वारा अभिव्यक्त किया हैं। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार देशभक्ति की यह भावना बाद में मैथलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' में लक्षित हुई स्वयं भारतेन्दु की विजयिनी विजय वैजयन्ती, प्रेमधन की आनंद अरुणोदय, प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व, राधाकृष्णदास की 'भारत बारहमासा और विनय शीर्षक कविताएँ देशभक्ति से पुरित एवं प्रेरित हैं

"भीतर भीतर सब रस चूसै,
हंसि हंसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन! नहीं अंगरेज।"

जैसी कविता लिखकर अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले शोषण का चित्र वे खींचते हैं। देशवासियों को जागृत करते दिखते हैं।

तो दूसरी ओर अंग्रेजों द्वारा देश की संपत्ती का होने वाला दोहन देखकर मन भारी हो जाता हैं

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी,
पै धन विदेश चल जात यह आति स्वारी।

का भाव उनकी कविता में व्यक्त हुआ है। भारतेन्दु युग की कविता राष्ट्रीय भावना की कविता हैं। विदेशी वस्तुओं के प्रयोग का बहिष्कार भी उन्होंने किया है। देश की जागृति के लिए बार-बार ईश्वर वंदना भी वे करते हैं। देश सारणजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक पतन को देखकर वे अतीत का गौरव गान भी करते हैं। जिससे साम्प्रदायिक भावनाओं के विकास में आगे चलकर सहयोग मिलें। उनका हिन्दी-हिन्दू-हिन्दूस्तान वाला गुणगान इसी कोटि का हैं।

अंग्रेजी राज के करण भारत मुगलों के कठोर शासन से मुक्त हुआ, इस प्रकार का एक दृष्टिकोण भारतेन्दु की कविता में आया हैं। अत्याचार पूर्ण शासन की समाप्ति प्रति वे संतोष जाहिर करते हुए अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति/निष्ठा को भी इस समय की कविता व्यक्त करते हैं। इस देश में सुधार लाने

टिप्पणी

की गुहार भी वे ब्रिटिशों प्रति लगाते हैं। एक ओर यह कविता देशभक्ति का परिचय देती हैं तो एक ओर राजभक्ति का। स्वयं भारतेन्दु बाबू को ब्रिटिश राज परम मोक्ष का फल लगता हैं

"परम-मोक्ष फल राजपद परसन जीवन माँही।
बृटन देवता राजसुत पर परसह चित चाहि।"

विद्वानों को राजभक्ति प्रदर्शन के कारण रूप में कंपनी के अत्याचारपूर्ण शासन समाप्ति और नयी शासन एवं नयी व्यवस्था की स्थापना का स्वीकार भी लगती हैं

"लेकर राज कंपनी के कर सौ निज हाथन,
किए सनाथ भोली भारत की प्रजा अनाथन।"

में व्यक्त होती हैं। जिसमें राजभक्ति साफ झलकती हैं, महाराणी विक्टोरिया की घोषणा का स्वागत, विक्टोरिया की मृत्यु पर शोक, लार्ड रिपन के प्रति श्रद्धाजंली आदि विषयों पर इस काल के कवियों ने कविता लिखी हैं। फिर भी प्रेमधन जैसे कवि अंग्रेजों को भारत हित के लिए राज करने के लिए कहते हैं।

"करहु आज सों राज आप केवल भारत हित,
केवल भारत के हित साधन में दीने चित।"

विद्वानों का कहना हैं राजभक्ति के अंतर्गत आने वाली कविता को देखकर कवियों पर राजद्रोह या साम्प्रदायिकता का दोष नहीं लगाना चाहिए। सही भी हैं परन्तु इस काल के साहित्य ने साम्प्रदायिकता की प्रवृत्ति का बीजारोपन किया इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। नगेन्द्र के अनुसार भले ही श्यह नयी राजनीतिक चेतना की कविता हो फिर भी यह कहना होगा कि स्वतंत्रता के बाद भारत उत्तर नयी राजहनीति से रूढ़ होकर सन 1990 के साहित्य, राजनीतिक में यहीं उभरकर आयी। इसी कारण नवजागरण को ही हिन्दु धर्म पुनरुत्थान के रूप में शंभुनाथ, वीर भारत तलवार जैसे विद्वनों ने देखा जो सही प्रतीत होती हैं।

सामाजिक दुर्दशा का चित्रण

रीतिकाल के कवियों ने समाज की ओर से अपनी आँखों बंद कर ली थी, किंतु भारतेंद युगीन कवियों ने सामाजिक जीवन का यथातथ्य निरूपण करने में रुचि दिखाई है। आर्यसमाज एवं ब्रह्मसमाज जैसे सामाजिक आदोलन के प्रभाव से इस काल में नवीन सामाजिक चेतना का उदय हुआ ओर विधवा विवाह, नारी शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने वाली कविताएँ लिखी गई। सामाजिक रूढ़ियों को नकारते हुए बाल विवाह, विधवा विवाह, सती प्रथा, छुआछुत को काव्य विषय बनाया गया और सामाजिक कुरीतियों, छल-कपट एवं पाखंड का खंडन करने में इन कवियों ने बढ़-चढ़कर योगदान किया। भारतेंदु जी ने भारत दुर्दशा का चित्रण इन पंक्तियों में किया

रोबहु सब मिलि आबहु भारत भाइ।
हा हा भारत दुर्दशा देखी न जाई।।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करने वाले साहबों पर व्यंग्य करते हुए लिखा

चूसहु चुरुट लाख पर लागत पान बिना मुँह सून।
अच्छर चारि पढ़े अंगरेजी बन गए अफलातून।।

बाल विधवाओं की दर्दशा पर प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा -

'कौन करेजो नहिं कसकत सुनि विपति बाल विधवन की।'

टिप्पणी

राधाचरण गोस्वामी ने भी भारत की दुर्दशा का चित्रण करते हुए लिखा है

मैं हाय-हाय दै धाय पुकारौं रोई।
भारत की डूबी नाव उबारौ कोई॥

वस्तुत: वे अपनी पीढ़ी को सचेत करते हुए भारत की डूबी नैया को उबारने की बात कह रहे हैं।

नई सामाजिक चेतना

युगीन कविता ने नयी सामाजिक समस्याओं पर कविता लिखी। जिसमें सामाजिक समस्याओं को दूर करते हुए, ब्राह्म समाज, आर्य समाज के आंदोलनों का प्रभाव उक्त काल की कविता पर पड़े। विध वा विवाह का समर्थन, बालविवाह का विरोध, सती प्रथा का विरोध, छुआछूत के प्रति उदारता का दृष्टिकोण, सड़ी-गली रुढ़ियों का विरोध , करने के लिए मध्यवर्ग के सामाजिक जीवन का चित्रण कविता में आया। एक तरह से यह कविता जनवाद की ओर दृष्टिपात करती हैं। भारतेन्दु युग के कवियों को समाजसुधार के कवि माना जाता हैं। जिस पर प्रश्न भी उठते हैं। कुछ कवि उदारता का परिचय नहीं देते। भारत धर्मश कविता में अंबिका दत्त व्यास द्वारा वर्णाश्रम धर्म का दृढ़तापूर्वक अनुमोदन और राधाचरण गोस्वामी द्वारा विभिन्न कविताओं में प्राचीन शास्त्र-नीतियों का समर्थन एवं विधवा-विवाह का विरोध ऐसे ही उदाहरण हैं। अर्थात् यह स्पष्ट हैं कि कुछ कवि समाजसुधार के आग्रही थे तो कुछ यथास्थितिवाद को बनाये रखने में धन्यता मानते थे।

स्वयं भारतेन्दु ने मात्र सुधारणावादी दृष्टिकोण अपनाया हैं। भारत दुर्दशा जैसे नाटकों में वर्णव्यवस्था की संकीर्णता का विरोध उन्होंने किया हैं-बहुत हमने फैलाये धर्म, बढ़ाया छुआछूत का कर्म इनके समकालीन कवि बालमुकुन्द गुप्त ने भी समाजसुधार की दृष्टि अपनायी हैं। धनिकों को संबोधित करते हुए वे कहते हैं

"हे धनिकों, क्या दीन जनों की, नहीं सुनते हो हाहाकार,
जिसका मरे पड़ोसी भूखा, उसके भोजन को धिक्कार।
भूखें की सुधि उसके जी में, कहिए किस पथ से जावे,
जसका पेट मिष्ट भोजन से, ठीक नाक तक भर जावें॥"

वस्तुत: आर्य समाज की सामाजिक एवं धार्मिक सुधार वृत्ती का प्रभाव कुछ लेखकों पर स्पष्ट है। कुछ सहर्ष स्वकारते हैं, कुछ नहीं। ऐसे ही वेद मार्ग छोड़कर मुस्लिम धर्म संस्कृति को स्वीकारने वालों की कटु आलोचना राधाचरण गोस्वामी करते हैं।

"यज्ञ याग, सब मेट पेट भरन में चातुर
पितर पिन्ड नहीं देते यवन-सेवा में आतुर।
पढ़े जनम तैं फारसी छोड़, वेद मारग दियो।
हा हा हा विधि वाम ने सर्वनाश भारत कियो।"

"हा हा हाश से स्पष्ट है कि गोस्वामी की व्यथा कौन-सी और किस प्रकार की रही हैं।

प्रतापनारायण मिश्र भी स्त्री शिक्षा के प्रति प.पाली रवैया अपनाते हैं, बालविवाह का विरोध भी करते हैं और विधवाओं के दुख से विलाप भी करते हैं

"निज धर्म भली विधि जानै, निज गौरव पहिचानै,
स्त्रीगण को विद्या देवै, करि पतिव्रता यश लावै।
झूठी यह गुलाब की लाली धोवत ही मिटी जाय,
बाल-ब्याह की रीति मिटाओ रहे लाली मुँह छाय।

टिप्पणी

विधवा विलपै नित धेनु कटें कोऊ लागत हाय गोहार नहीं।"

पुराणपंथी दृष्टि के बावजूद भी कविता में बड़ी मात्रा में सुधारणावादी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। एक तरह से मानवतावादी विचारों-भावनाओं का सृजन कर्म इस दौर में शुरू हो चुका था, ऐसा कहा जा सकता है।

आर्थिक चिन्ताओं का प्रकटीकरण

ब्रिटिशों द्वारा की जाने वाली आर्थिक लूट को देखकर भारतेन्दु का मन भी बड़ा व्यथित हो चुका था। इसलिए कवियों ने स्वदेशी उद्योगों एवं वस्तुओं का प्रयोग करने का आव्हान किया था। भारतेन्दु ने प्रबोधिनी, कविता में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को प्रत्यक्ष प्रेरणा दी हैं। भारतीय परिपत्रक पर सवाल उठाते हुए भी ब्रिटिशो की आर्थिक शोषण नीति का विरोध प्रतापनारायण मिश्र जैसे कवियों ने किया हैं

"अभी देखिए क्या दशा देश की हो,
बदलता हैं रंग आसमां कैसे कैसे!"

सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों की ओर से भी, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार भाव भारतेन्दु में आया हैं। जिसमें वे मलमल और मारकीन का प्रयोग करने वालो की आलोचना कटु शब्दों में करते हैं

"मारकीन मलमल बिना चलत कछु नाहिं काम,
परदेसी जुलहान के मानहुँ भये गुलाम।"

तो ब्रिटिशों की साम्राज्यवादी नीति के प्रति गहरा क्षोभ भी कवियों ने व्यक्त करते हुए स्वतंत्रता की माग की है

"सब तजि गहौ स्वतंत्रता, नहिं चुप लाते खाब।
राजा करै सो न्याव हैं, पासा परे सो दाँव।"

या तत्कालीन भारतीय समाज की आर्थिक दुरावस्था देखकर कवि करुणार्द हो जाते हैं

"रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।"

भारत की आर्थिक दुर्गति को ब्रिटिश शासन कारणीभूत रहा हैं, इस बात को कवि भूलते नहीं और वे देशप्रेम भाव को भी व्यक्त करने से चुकते नहीं।

जन-जीवन का चित्रण

डॉ० रामविलास शर्मा के अनुसार भारतेन्दु युग की जनवादी भावना उसके समाज सुधार में निहित हैं। आगे वे कहते हैं कि, वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समता और भाईचारे का भी साहित्य हैं। भारतेन्दु स्वदेशी आन्दोलन के भी अग्रदूत न थे, वे समाज सुधारकों में से भी प्रमुख थे। स्त्री-शिक्षा, विधवा विवाह, विदेश-यात्रा आदि के समर्थक थे। ..... भारतीय महाजनों के पुराने पेशे सूदखोरी की उन्होंने कड़ी आलोचना की थी, सर्वदा से अच्छे लोग ब्याज खाना और चुड़ी पहनना एक-सा समझते हैं पर अब आलसियों को इसी का अवलंब हैं, न हाथ हिलाना पड़े न पैर, बैठे बैठे भुगतान कर लिया। (कविवचन सुधा, 22 दिसम्बर 1873)

कवियों ने मानवहित के लिए सामाजिक सुधार को अपनाते हुए कुप्रथाओं, धार्मिक मिथ्याचार, छल-कपट, स्वार्थपरायणता, आदि विषयों पर कविता द्वारा प्रहार किया हैं। अंग्रेजों के शोषण विरुद्ध जागरण फैलाया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया हैं। शासन सुधार की आकांक्षा भी जन-जीवन को व्यक्त करती हैं। अपनी कविता में यथार्थ चित्रण समाज जीवन का ही चित्रण हैं। जन-जीवन को उभारने हेतू उन्होंने लावणी, गजल, ठुमरी, मलार, दादरा जैसे

टिप्पणी

लोकगीतों, संगीत का प्रयोग कविता में भारतेन्दु ने किया हैं। जनता में जागरण हेतू ग्रामगीतों द्वारा उन्नति का मार्ग इन्होंने स्वीकारा हैं।

श्रृंगार की कविता

भारतेन्दु युग के कवियों ने शृंगार की मतादित अभिव्यक्ति की है। रीतिकालीन पद्धति पर नख-शिख वर्णन एवं नायिका भेद का चित्रण तो इन कवियों ने किया ही है, साथ ही कृष्ण को नायक मानकर तथा राधा को नायिका मानकर उनकी प्रेमलीलाओं का चित्रण भी किया है। भारतेन्दु जी की रचनाओं-प्रेम सरोवर, प्रेम तरंग, प्रेम माधुरी, प्रेम फुलवारी में शृंगार भावना की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। वयसंधि को प्राप्त नायिका का सुंदर चित्र दृष्टव्य है

सिसुताई अजौं न गई तन तें,
तऊ जीवन जोति बटौरें लगीं।
सूनि कै चरचा हरिचंद की कानन,
कूक दै भौंह मरोरै लगीं।।
बचि सासु जेठानिन सौं पियतें,
दुरि घूघट मैं दृग जोरै लगीं।
दुलही उलही सब अंगन तै,
दिन द्वै ते पीयूष निचौरें लगीं।।

इन कवियों ने वियोग शृंगार का भी सुन्दर चित्रण अपनी रचनाओं में किया है। ठाकुर जगमोहन सिंह ने अपनी रचना श्प्रेम संपत्ति ललिताश में नायिका के विरह का निरूपण इन पंक्तियों में किया है

अब यौं उर आवत है सजनी,
मिलि जाऊँ रे लगि कैं छतियाँ।
मन की करि भाँति अनेकन औ,
मिलि कीजिए री रस की बतियाँ।।
हम हारि अरी करि कोटि उपाय,
लिखी बहु नेह भरी पतियां।
जगमोहन मोहनी मूरित के बिना,
कैसे करें दूख की रतियाँ।।

पंडित प्रतापनारायण मिश्र एवं **राधाकृष्णदास** जैसे कवियों ने शृंगार को अपना काव्य विषय नहीं बनाया।

भाक्ति भावना

भारतेंदु जी को भक्ति भावना पैतृक विरासत में मिली थी। उनकी भक्तिपरक रचनाओं में प्रमुख है-भक्ति सर्वस्व, वैशाख महात्म्य एवं कार्तिक स्नान। इसीलिए वे इस प्रकार की पंक्तियाँ लिख सकने में समर्थ हो सके -

टिप्पणी

"मेरे तो साधन एक ही हैं जग नंदलला वृषभानु दुलारी।।"

- भारतेंदु

राधाकृष्ण की मधुर छवि का अंकन उनके अनेक पदों में उपलब्ध होता है। यथा -

नैन भरि देखि लेहु यह जोरी।
मनमोहन सुंदर नर नागर श्री वृषभानु किसोरी।
कहा कहूँ छवि कहि नहिं आवै वह सांवर यह गोरी।।

-भारतेंदु

पंडित प्रतापनारायण मिश्र एवं राधाकृष्णदास के काव्य में भक्तिभावना का वह स्वरूप दिखाई पड़ता है, जो निर्गुण भक्त कवियों के काव्य में विद्यमान था। उन्होंने संसार की नश्वरता, माया-मोह के बंधन, और विषय वासना की निस्सारता, आदि का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है, यथा -

जो विषया संतन तजी ताहि मूढ़ लपटात।
जो नर डारत वमन करि स्वान सौं खात।।

-राधाकृष्णदास

ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास व्यक्त करते हुए भारतेन्दु जी ने अपनी दीनता का उल्लेख किया है और उनसे अपने उद्धार की प्रार्थना की है

उधारौ दीनबंधु महराज।
जैसे हैं तैसे तुमरे ही नहीं और सौं काज।।

-भारतेन्दु

इस काल की कुछ अन्य भक्तिपरक रचनाएँ इस प्रकार हैं

1.	अलौकिक लीला	-	बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'
2.	कंसवध	-	आंबिकादत्त व्यास
3.	सूर्य स्तोत्र	-	बदरीनारयण चौधरी 'प्रेमघन'
4.	नवभाक्तमाल	-	राधाचरण गोस्वामी
5.	भक्ति सर्वस्व	-	भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र
6.	वैशाख माहात्म्य	-	भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र
7.	कार्तिक स्नान	-	भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र

प्रकृति चित्रण

रीतिकाल की तरह प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण का अभाव भारतेन्दु युगीन कविता में रहा है और वह स्वाभाविक है सौन्दर्य बोध में सहायक स्वतंत्र प्रकृति चित्रण का श्रेय किसी सीमा तक ठाकुर जगमोहनसिह का ही दिया जा सकता हैं। भारतेन्दु समवेत अन्य कवियों ने परम्परा का निर्वाह किया गया हैं। "अम्बिकादत्त व्यास की 'पावस पचासा', गोविन्द गिल्लाभाई की 'षडऋत', और पावस पयोनिधी आदि कृतियों में वसंत और वर्षा ऋतु का आलंबनात्मक चित्र मौजूद है।" भारतेन्द की प्रात समीरन, प्रेमधन की मयंक महिमा और प्रतापनारायण मिश्र की प्रेम पुष्पांजली में स्वतंत्र प्रकृति चित्रण हैं किन्तु सफलतापूर्वक नहीं ऐसा मत नगेन्द्र व्यक्त कर चुके हैं क्योंकि "प्रकृति को श्रृंगारिक मनोदशाओं, सामाजिक उद्‌बोधन, नीति कथन आदि से संबद्ध करने की अनिवार्यता ने" प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन इस काल में रूप ग्राहक नहीं कर पाया परन्तु रीतिकाल के उ. दीपक वर्णन को न स्वीकारते हुए र स्कृत

टिप्पणी

काव्य में उपलब्ध नैसर्गिक सौन्दर्य वर्णन से प्रकृति का सजीव चित्रण उनके काव्य में आया है। पर्वत श्रृंखला का सौन्दर्य चित्रण इसी प्रकार का हैं

"पहार अपार कैलास से कोटिन ऊँची शिखा लगि अम्बर चूम।
निहारत दीठि भ्रमै पगिया गिरि जाक उत्तंगता ऊपर झूम।
प्रकाश पतंग सो चोटिन के बिकसें अरविन्द मलिन्द सुझूम।
लसै कटि मेखला के जगमोहन कारी घटा घन घोरत धूम।"

हास्य-व्यंग्य की प्रधानता

इस काल के कवियों ने हास्य-व्यंग्परक रचनाओं के महत्त्व को समझते हुए इनके माध्यम से अंगेजी शासन पाश्चात्य सभ्यता, सामाजिक अंधविश्वास एवं रूढ़ियों पर करारी चोट की। भारतेंदु जी ने अपने नाटकों एवं एकांकियों में व्यंग्योक्तियों के माध्यम से तत्कालीन परिस्थितियों का सुंदर चित्रण किया है। अंधेर नगरी में चूरनवाला कहता है

चूरन साहब लोग जो खाता।
सारा श्हिंदश हजम कर जाता॥

नए जमाने की मुकरी में कवि ने सामयिक बुराइयों पर व्यंग्य किए हैं। मद्यपान के संबंध में उनकी व्यंग्योक्ति देखिए

मुँह जब लागे तब नहिं छूट,
जाति मान धन सब कुछ लूट।
पागल करि मोहि करै खराब,
क्यों सखि साजन नहीं सराब॥

प्रतापनाराण मिश्र की कविताएँ हर गंगा, बुढ़ापा, उर्दू का स्यापा, हास्य-व्यंग की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध हुई।

रीति-निरूपण में परम्पराबद्ध ग्रंथों की रचना

रीति-निरूपण संबंधी परम्परा से संबंध ग्रंथों का लेखन भी इस कालखण्ड में हुआ हैं। भारतेन्दु युग में लछिराम, बह्मभट्ट, कविराजा मुरारिदान और बालगोविन्द मिश्र आदि रीति-निरूपण पद्धति ग्रंथ लिख रहे थे। जिसमें प्रमुख हैं लछिराम की महेश्वर विलास जिसमें नायिकाभेद एवं नवरस का विश्लेषण हैं, रामचन्द्रभूषण अलंकार शास्त्र का ग्रन्थ है, रावणेश्वर कल्पतरु सर्व-काव्यांग निरूपण कृती हैं। मुरारिदान का जसवन्त जसोभूषण बृहत काव्य शास्त्रीय ग्रंथ हैं। "यही मूलत: अलंकार ग्रंथ हैं जिसमें काव्य-स्वरूप, शब्दशक्ति, गुण और रीति का सार मौजुद है। बालगोविन्द मिश्र का 'भाषा छन्द प्रकाश में अड़तालीस मात्रिक-वार्णिक छन्दों का स्वरचित काव्य-लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत है। अन्य दो उल्लेखनीय रचनाकार हैं प्रतापनारायणसिंह की रसकुसुमाकर (1894) और कन्हैयालाल पोद्दार की अलंकार प्रकाश (1896)।

महत्वपूर्ण बात यह भी है की रीति-निरूपण की वृत्ती पिछड़ती जा रही थी और काव्य नये साँचे में ढल रहा था। भारतेन्दु के बाद तो यह प्रवृत्ति रहीं ही नहीं।

समस्यापूर्ति परक काव्य रचना

भारतेंदु काल के कवि समस्या पूर्ति के रूप में ही काव्य रचना करते थे। कोई एक पंक्ति या पद्यांश समस्या के रूप में दिया जाता था और कविजन विलक्षण कल्पनाएँ करते हुए उस समस्या पूर्ति का प्रमुख नियम यह था कि दी गई पंक्ति छंद या कविता के अंत में ही आनी चाहिए। समस्या पूर्ति की

टिप्पणी

यह परंपरा कवियों की प्रतिभा को परखने एवं उनके रचना-कौशल की थाह पाने को कसौटी समझी जाती थी। कवि गोष्ठियों में समस्या पूर्ति की प्रतियोगिता होती थीं और रसिक समाज इन्हें बड़े चाव से सुनता था। समस्या पूर्ति के लिए जो विषय दिए जाते थे वे प्राय: शृंगार से संबंधित होते थे। कानपुर की एक संस्था श्रसिक समाजश में एक बार समस्या पूर्ति के लिए एक पंक्ति दी गई "पपीहा जब पूछि है पीव कहाँ इस समस्या की पूर्ति पंडित प्रताप नारायण मिश्र ने इस प्रकार की -

वन बैठि है मान की मूरित सी,
मुख खोलत बोलै न नाहीं न हों।
तुम ही मनुहारि कै हारि परे
सखियान की कौन चलाई तहा।।
वरषा है प्रतापजू धीर धरौ,
अबलौ मन कौं समझायौ जहाँ।
वह ब्यारि तबै बदलैगी कछु,

पपीहा जब पूछि है पीव कहाँ।। समस्या पूर्ति के माध्यम से उक्ति वैचित्र्य, अलंकरण एंव कल्पना का मनोहारी प्रयोग करने की रीतिकालीन प्रवृत्ति को काव्य में पर्याप्त प्रश्न मिला। समस्यापूर्ति से संबंधित इस काल के कुछ प्रमुख काव्य संग्रह है-**अबिकादत्त व्यास कृत समस्या पूर्ति सर्वस्व** द्विजगंग कृत श्समस्या प्रकाश और गोविंद गिल्ला भाई कृत समस्यापूर्ति प्रदीप।

काव्यानुवाद का आरम्भ

काव्यानुवाद की परम्परा भी इसी युग से शुरू हो चुकी है। संस्कृत और अंग्रेजी के काव्यानुवाद बड़ी मात्रा में हुए हैं। सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं, राजा लक्ष्मणसिंह का रघुवंशी और मेघदूत। भारतेन्दु ने नारद-भक्ति-सूत्र और शांडिल्य के भक्तिसूत्र को तदीय सर्वस्व और भक्तिसूत्र वैजयन्ती नाम से अनवाद किया हैं। बाबू तोताराम ने वाल्मिकी रामायण का राम-रामायण, ठाकुर जगमोहनसिंह ने ऋतुसंहार एवं मेघदूत, लाला सीताराम भूप ने मेघदूत, कुमार संभव, रघुवश और ऋतुसंहार।

अंग्रेजी से श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ का 'हरमिट' ओर डेजर्टेड विलेज को एकांतवासी योग तथा उजड़ ग्राम नाम से अनुवाद किया है। भाषा, लालित्य, शब्दानुभाव, सरलता को गुणों से ये सम्पन्न हैं। ऐसा डॉ० नगेन्द्र ने कहा है।

काव्यरूपों की विशेषता

भारतेन्दु युग में काव्य रूपों के विविध प्रयोग रुढ़ हो गये कुछ परम्परागत, लोकगीत, संगीतात्मक थे तो व्यंग नये रूप में विकसित हुए किन्तु प्रधानता मुक्तक काव्य की ही रही है। उसके साथ प्रबंध गीति में भारतेन्दु के रानी छद्मलीला, देवी छद्मलीला, और तन्यमलीली का उल्लेख किया जाता हैं। निबंध काव्य रूपों में विजयिनी विजय वैजयन्ती तथा हिन्दी भाषा महत्वपूर्ण हैं। कुछ सतसई परम्परा के उदाहरण भी देखे जा सकते हैं। हरी औध का कृष्णशतक (1882) अम्बिकादत्त व्यास का 'सुकवि सतसई आदि/

प्राचीन पद शैली के आधार पर ठुमरी, मलार, दादरा, ईमन, आदि राग-रागनियों में काव्य रचनाएँ की गई हैं। लोकसंगीत की शैली काफी लोकप्रिय थी उदाहरणार्थ "प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र की कजलियाँ तथा भारतेन्दु (वर्ष विनोद) प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी और जगमोहनसिंह की लापनिया महत्वपूर्ण है। व्यंग में बंदर सभा, उर्दू का स्यापा एक नए शैली में आयी हैं। भारतेन्द ने मकरियों का

टिप्पणी

लेखन भी किया हैं। गजल का नवप्रयास 'रसा उपनाम से भारतेन्द द्वारा तथा आबरु उपनाम से प्रेमधन द्वारा किया गया हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि काव्य के परम्परागत रूपों में इस काल के कवियों ने बंधे न रहकर नये प्रयोग भी किये हैं।

ब्रजभाषा का प्रयोग

भारतेंदु युग के अधिकांश कवियों ने ब्रजभाषा में ही काव्य रचना की। यद्यपि खड़ी बोली का प्रयोग इस काल में प्रारंभ हो गया था। इन कवियों की भाषा पद्माकर एवं घनानंद जैसी परिष्कृत भाषा तो नहीं है, किंतु उसमें प्रवाह एवं स्वाभाविकता है। पंडित प्रतापनारायण की ब्रजभाषा में कन्नौजी का प्रभाव तथा उर्दू शब्दों को प्रयोग साफ झलकता हैं। भारतेंदु जी ने यद्यपि साफ-सुथरी ब्रजभाषा का प्रयोग किया तथापि उनकी रचना फूलों का गुच्छाश में उर्दू के पर्याप्त शब्द है। इस काल के कुछ कवियों ने खड़ी बोली में भी रचनाएँ लिखी पर वे कला एवं भाव की दृष्टि से उतनी प्रभावपूर्ण नहीं हैं। अधि कांश कवियों ने मुक्तक शैली में लिखा तथापि कुछ प्रबंध काव्य भी लिखे गए। इन कवियों ने दोहा, चौपाई, कुंडलिया, रोला, सवैया, हरिगीतिका कवित्त जैसे परंपरित छदों में काव्य रचना की। छंदों की दृष्टि से इनके काव्य में विविधता है।

भारतेन्दु युग के कविया ने कविता को रीतिकालीन परिवेश से निकालकर सामयिक समस्याओं में जोड़ दिया। विदेशी शासकों के अत्याचारों का वर्णन भी उन्होंने किया, भले ही वह दबी जबान से किया गया हैं। भारतेन्दु के रूप में एक सबल साहित्यकार हिंदी को प्राप्त हुआ। **वे सच्चे अर्थों में आधुनिक काल के जनक कहे जा सकते है।** राष्ट्र और समाज को उद्‌बोधन देते हुए उन्होंने कवि कर्त्तव्य का बखूबी पालन किया, जिसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

छन्द अलंकार

भारतेन्दु युगीन कवियों ने परम्परागत छंद-अलंकारों का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। जिसमें उल्लेखनीय हैं, आर्या, कुण्डलियाँ, दोहा, चौपाई, सोरठा, रोला, हरिगीतिका जैसे मात्रिक छंदों तथा कविता, सवैया, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, वंशस्थ, वसन्ततिलका जैसे वर्णिक छंदों का विविधमुखी प्रयोग "लोकसंगीत का गाँवों में प्रचार-प्रसार करने के लिए

4.9 काव्यकृतियाँ

प्रेम माधरी, प्रेम तरंग, प्रेमाश्रु वर्णन, प्रेम सरोवर, प्रेम मालिका, प्रेम, फुलवारी, प्रेम प्रताप आदि भक्ति तथा दिव्य प्रेम पर आधारित रचनाएँ हैं। केवल प्रेम को ही लेकर इनकी रचनाओं के उपर्युक्त सात संग्रह प्रकाशित हए। अपने आराध्यदेव श्री कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का चित्रण इन्होंने प्रेमपूर्वक-देवी छद्मलीला, तन्मय, लीला, कृष्णचरित; दान-लीला आदि रचनाओं में किया है। भारत वीरत्व, विजय वल्लरी, विजयिनी एवं विजय पताका में देश प्रेम की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती है। उर्दू का स्याया, बन्दर सभा, नये जमाने की मुकरी आदि रचनाओं में इनकी हास्य व्यंग्य प्रकृति के दर्शन होते हैं।

नाटक

भारतेन्दु जी ने मौलिक और अनुदित दोनों प्रकार के नाटकों की रचना की है। इनकी कुल संख्या 17 है। इनमें वैदिक हिंसा, हिंसा न भवति, सत्य हरीशचन्द्र, श्री चन्द्रावली, भारतदुर्दशा, नीलदेवी, अँधेर नगरी, पाखण्ड विडम्बनम आदि प्रमुख हैं। इनके हास्य व्यंग्य की प्रवृत्ति का पूर्ण विकास इनके कुछ नाटकों में भी हुआ है।

उपन्यास

पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा इनके द्वारा रचित उपन्यास हैं।

इतिहास और पुरतत्व सम्बन्धी

कश्मीर कुसुम, महाराष्ट्र देश का इतिहास, रामायण का समय, अग्रवालों की उत्पत्ति, बूंदी का राज वंश तथा चरितावली।

यात्रा वृतान्त

सरयू की यात्रा, लखनऊ की यात्रा आदि।

जीवनी

सूरदास, जयदेव, महात्मा, मुहम्मद आदि।

भारतेन्दु जी के सभी काव्य-ग्रन्थ इसके काव्य विषयों की व्यापकता की ओर संकेत करते हैं। इनकी कविताओं में प्रमुख रूप से देश-प्रेम, भक्ति भावना, सौन्दर्य और प्रेम निरूपण, हास्य-व्यंग्य, सामाजिक जागरण, प्रकृति-चित्रण, हिन्दी प्रेम आदि प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं।

भारतेन्दु जी की शैली इनके भावों के अनुकूल है। इन्होंने मुख्य रूप से मुक्तक शैली को अपनाया है। इस शैली में नवीन प्रयोग करके इन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। लोकगीतों की गीति-शैली में इन्होंने राष्ट्रीयता से परिपूर्ण काव्यों की रचना की है। भारतेन्दु जी ने ब्रजभाषा में अधि कतर शृंगारिक रचनाएँ की हैं। अपनी रचनाओं में इन्होंने शृंगार के दोनों पक्षों, संयोग और वियोग का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। इन्होंने अपनी रचनाओं में कवित्त, सवैया, लावनी, चौपाई, दोहा, छप्पय, गजल, कुण्डलिया आदि विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया हैं। विभिन्न अलंकारों के सुन्दर प्रयोग भी आपकी कविता में अनायास देखने को मिल जाते हैं। इन्होंने अलंकारों के चमत्कारपूर्ण प्रयोग को नहीं वरन् सरसता को प्रधानता दी है।

नि:सन्देह भारतेन्दु हरिशचन्द्र आधुनिक काल के प्रवर्तक थे। इनके पश्चात् इनके, जैसी बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न कोई रचनाकार हिन्दी साहित्य को पुन: न मिल सका। युग-परिवर्तन, युग प्रवर्तन एवं युग का नेतृत्व करने के लिए केवल नये युग का ज्ञान या बोध ही पर्याप्त नहीं होता वरन् उस ज्ञान या बोध को सच्ची अनुभूति सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से जन-साधारण के हृदय तक पहँचा देने की क्षमता भी अपेक्षित होती है। निस्सन्देह भारतेन्दु हरिशचन्द्र में यह प्रतिभा थी, जिसके बल पर वे अपने यग को सच्चा और सफल नेतृत्व प्रदान कर सके।

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त जी ने इनके सम्बन्ध में उचित ही लिखा है भारतेन्दु कर गये भारती की वीणा-निर्माण। किया अमर स्पर्शों ने जिसका बहुविधि स्वर-संधान।

4.10 भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता और साहित्य

खड़ी बोली हिन्दी गद्य और भारतेन्दु युगीन साहित्य के विकास में उस काल के पत्र-पत्रिकाओं का बड़ा मोगदान है। इस काल की सारी जागृति सारी सुधारवादी चेतना और सारा साहित्य पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही सामने आया और जनसाधारण तक पहुँचा। हिन्दी के पहले साप्ताहिक उदंत मार्तड का प्रकाशन कलकत्ता से 30 मई 1826 ई० को प्रारम्भ हुआ और ग्राहकों के अभाव में 4 दिसंबर 1827 ई० को बंद हो गया। इससे पहले राजा राममोहनराय ने बंगदूतश का हिन्दी संस्करण भी निकाला था। कलकत्ता से ही हिन्दी का पहला दैनिक समाचार पत्र श्यामसुन्दर सेन ने जून 1854 ई० में समाचार

टिप्पणी

सुधावर्षणश के नाम से निकाला जो कई वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। बनारस से जनवरी 1845 ई० में गोविंद रघुनाथ थते के सम्पादन में राजा शिव प्रसाद ने बनारस अखबार निकाला। हिन्दी क्षेत्र से निकलने वाला यह पहला पत्र था। इसकी भाषा का झुकाव अरबी-फारसी शब्दों की और अधिक था। सिमला अखबार, मालवा अखबार, काशी पत्रिका आदि इस समय निकलने वाले पत्र भाषा की दृष्टि से उर्दू के ही पत्र थे। हिन्दी भाषा को सच्चे अर्थों में अपनाने वाले काशी के सुधाकर और आगरा के बुद्धि प्रकार जैसे पत्र थे।

इन पत्रों में साहित्य का प्रकाशन नगण्य था। समाचारों का प्रकाशन ही मुख्य था। साहित्य का प्रकाशन मुख्यत: उन पत्र-पत्रिकाओं में हुआ, जिन्हें उस समय के साहित्यकारों ने निकाला। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविवचन-सुधा (1868 ई०) और हरिश्चन्द्र मैगजीन (1873 ई०) का प्रकाशन किया। इनके अतिरिक्त इस काल में निकल रहे 'भारतमित्र, सारसुधनिधि, उचितप्रवक्ता, हिन्दी बंगवासी, आदि का उल्लेख भी आवश्यक है। राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना जगाने, रूढ़ियों और अंधविश्वास से मुक्त करके समाज सुधारने और भारत के भविष्य को उज्जवल बनाने के अतिरिक्त इनका उद्देश्य यथा हिन्दी भाषा का प्रचार करना व हिन्दी लिखने वालों की संख्या-वृद्धि" करना भी था। भारतेन्दु युग का अधिकांश साहित्य पहले पहल इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से सामने आया और हिन्दी भाषा का परिजमार्जन हुआ। भारतेन्दु ने कालचक्र में यह सच ही लिखा था कि 1873 में "हिन्दी नये चाल में ढली। यहाँ यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं हैं कि इसी वर्ष हरिश्चन्द्र मैगजीन या हरिश्चन्द्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ।

4.11 भारतेन्दु युगीन गद्य-साहित्य

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "आधुनिक काल में गद्य का आर्विभाव सबसे प्रधान साहित्यिक घटना है।" गद्य के आर्विभाव के साथ की साहित्यिक विधाओं का आर्विभाव भी अनिवार्य हआ। अधि कांश साहित्यिक गद्य विद्या भारतेन्दु युग में ही जन्मी। इस युग में जन्म लेकर विकसित होने वाली तीन मख्य साहित्यिक विधाएँ है नाटक, निबंध और उपन्यास।

4.12 नाटक

भारतेन्दु से पूर्व नाटक के नाम पर मिलने वाली रचनाएँ एक तो बहुत कम है दूसरे सच्चे अर्थों में वे नाटक है भी नहीं। इस युग से पहले नाट्य रचना के अनुकूल स्थितियाँ भी नहीं थी। भारतेन्दु ने कालचक्र में एक दृष्टि से ठीक ही नोट किया "हिन्दी में प्रथम नाटक-नहुष नाटक (1859) तथा द्वितीय नाटक शकुन्तला (1863) तथा तृतीय-विधासुन्दर (1871)।" इन तीन नाटकों में से दो नाटक अनुवाद है। राजा लक्ष्मणसिंह कृत शकुन्तला कालिदास के अभिज्ञानशकुन्तलात्कम का अनुवाद है और 'विद्यासुन्दर स्वयं भारतेन्दु ने एक अंग्रेजी से एक बंगला से और पाँच संस्कृत से नाटकों के अनुवाद किये और दस मौलिक नाटक लिखे। उनके अनूदित नाटकों में मुद्राराक्षस पुनर्रचित नाटकों के अनुवाद में हरिश्चन्द्र और भौतिक नाटकों में वैदिक हिंसा हिंसा न भवति, श्री चन्द्रावली, भारतदुर्दशा और अन्धेर नगरी को विशेष ख्याति मिली। उन्होंने अपने कुछ नाटकों में यदि अपनी प्रेम और भक्ति की भावनाओं को अभिव्यक्त किया तो अन्य अधिकांश नाटकों में अपने समकालीन समाज, धर्म, राजनीति, प्रशासन, न्याय व्यवस्था और अर्थव्यवस्था की समस्याओं को उजागर किया है। इन समस्याओं को उजागर करने में उनका सबसे बड़ा अस्त्र है हास्य और व्यंग्य। अधेर नगरी के अंत में महन्त द्वारा कही गयी इन पंक्तियों से तीखा कटाक्ष अंग्रेजी शासन पर और क्या हो सकता हैं जहाँ न धर्म न बुद्धि नहि, नीति न सुजान समाज/

टिप्पणी

ये ऐसहि आपूहि नसे जैसे चौपटराज," भारतेन्दु ने अपने नाटकों के लिए भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यशैलियों के उपयुक्त तत्व लेकर एक नयी नाटय शैली का निर्माण किया था। उनके नाटकों के केन्द्र में नाटयवस्तु नाटयशिल्प और जीवन दृष्टि संबंधी प्रयोगशीलता और प्रगतिशीलता दोनों विद्यमान है। उन्होंने अपने नाटक रंगमंच के लिए लिखे थे। वे स्वयं रंगमंच पर सक्रिय थे। इसलिए उनके अधेर नगरीश जैसे नाटक आज भी सफलतापूर्वक मंचित होते हैं/

निबन्ध साहित्य

भारतेन्दु युग में जिस दूसरी गद्य-विद्या का विकास विशेष रूप से हुआ, वह निबंध है। निबंध से हमारा तात्पर्य उस लधवाकार अकथात्मक गद्य रचना से है, जो अपनी संरचना में स्वच्छन्द होती है और जिसमें लेखक की वैयक्तिकता उसका व्यक्तित्व निर्बन्ध अभिव्यक्ति पाता है। इस दृष्टि से लेख निबंध से अलग है। इस युग के गद्य लेखकों ने समकालीन जीवन और इतिहास के अनेक पक्षों पर प्रभूत मात्रा में लेख लिखें है, जिसमें से अधिकांश तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें में दबे पड़े हैं। इन लेखों का महत्व असंदिग्ध है क्योंकि इनके माध्यम से हम न केवल उस काल के लेखकों की सोच से परिचित होते है, अपितु युग की प्रामाणिक जानकारी भी हमें मिलती है। लेकिन साहित्यिक दृष्टि से इन लेखों की अपेक्षा निबंधों का महत्व अधिक है/

यद्यपि भारतेन्दु युग के अनेक लेखकों ने निबंध लिखें है, किन्तु निबंधकार रूप में अपना वैशष्ट्य स्थापित करने वाले चार ही लेखक है-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बालकृष्ण, भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र और बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन हैं भारतेन्दु ने निबंध कम लेख अधिक लिखे हैं। उनके विभिन्न विषयों पर लिखें गये लेखों में उनकी भावनाओं और उनकी व्यंग्य-प्रवृत्ति ने अभिव्यक्ति अवश्य पायी है किन्तु इतनी क्षीणता के साथ ही लेख, निबंध नहीं बन सके है। अगर भारतेन्दु को निबंधकार के रूप में हम याद करते है तो 'अंग्रेजी से हिन्दुस्तानियों का जी क्यों नहीं मिलताश, स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन, स्त्री सेवा-पद्धति, अथ मदिरास्तवराज, कंकर स्रोत, ईश्वर बड़ा विलक्षण हैश, पांचवे (चूसा) पैगम्बर जैसी रचनाओं के कारण। इन रचनाओं के कारण। इन रचनाओं में भारतेन्दु का स्वच्छन्द प्रगतिशील व्यक्तित्व, व्यंग्य-विनोद, विचारों के मुक्त प्रवाह, चमत्कापूर्ण किन्तु अनौपचारिक अभिव्यक्ति-शैली के माध्यम से छलका पड़ता हैं भारतेन्दु की अपेक्ष्य "बालकृष्ण भट्ट के निबंध संख्या में भी अधिक है ओर परिपक्वता भी उनमें कहीं अधिक है। वे विद्वान थे, अंग्रेजी साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे, गम्भीर विचारक थे और परिहासप्रिय भी थे। वे एक और शिक्षित समुदाय का ध्यान हिन्दी की ओर आकृष्ट करना चाहते थे और विदंग्ध साहित्यश को प्रोत्साहन देना चाहते थे, दूसरी और उनकी मान्यता थी कि रसिक पढ़ने वाले हास्य पर अधिक टूटते है। सच पूछो, हास्य ही लेख का जीवन है। लेख पढ़ कुन्द की कली समान दांत न खिल उठे तो लेख ही क्या।" इसलिए उन्होंने चाहे राजनैतिक, सामाजिक साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक आदि गम्भीर विषयों पर लिखा हो अथवा चढ़ती उमर, मुग्ध माधुरी, पौगण्ड व कैशोर, श्रोटी तो किसी भंति कमा खये मुछन्दर, बातचीत, आंख, खटका, जवान, नही।" , जी, नाम, ढोल, के भीतर पोल, नये तरह के जनून आदि हल्के फुल्के विषयों पर उनके निबंधों में विचार, भावना, परिहास और व्यंग्य सब एक साथ विद्यमान रहते है। न किसी निबंध में आद्यन्त गम्भीर विचारात्मकता मिलेगी न भावुकता और न ही हास्य-व्यंग्य। उनके निबंधों में विभिन्न भाषाओं की काव्य पंक्तियों के उद्धरण भी विद्यमान है और उक्ति चमत्कार भी। वे हिन्दी के गिने चुने श्रेष्ठ निबंधकारों में से एक है/

उपन्यास साहित्य

उपन्यास अन्य गद्य विधाओं की तुलना में सबसे अधिक लोकप्रियात्मक है। हिन्दी साहित्य में इस विधा का आरम्भ इस दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण है कि इसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि हिन्दी न

टिप्पणी

जानने वालों ने भी उपन्यास पढ़ने की ललक से हिन्दी सीखी। भारतेन्दु युग में आधुनिक हिन्दी उपन्यास जन्मा भी और विकसित भी हुआ। उसे प्रेरणा मिली बंगला उपन्यासों से। 1864 ई० में बकिंमचन्द्र के उपन्यास दर्गेशनन्दिनी का हिन्दी में अनुवाद हुआ। उसके बाद न केवल बंकिमचन्द्र के अपितु रमेशचन्द्र, दत्त, हाराणाचन्द्र, रक्षित, चण्डीचरण सेन, चारूचन्द्र आदि के उपन्यासो से प्रेरित होकर हिन्दी में उपन्यास लिखे जाने लगे/

हिन्दी के पहले उपन्यास के रूप में जिन चार रचनाओं का नाम लिया जाता है वे हैगौरीदत्त-कृत-देवरानी-जेठानी (1870 ई०) मुंशी ईश्वरीप्रसाद मुदर्रिस रियाजी और मुंशी कल्याण राव मुदरिस अव्वल उर्दू-कृत 'वामा-शिक्षक अर्थात् दो भाई और 'चार बहनों की कहानी (1872 ई०), श्रद्धाराम फिल्लौरी-कृत 'परीक्षा-गुरुश (1882 ई०)। इनमें से पहली तीन रचनाओं के कोरी उपदेशात्मकता ओर यर्थाथ जीवन का आभास न देने वाली कथाएँ होने के कारण उपन्यास नहीं माना गया। अब प्राय: सभी 'परीक्षा गुरू (1882 ई०) को हिन्दी का पहला उपन्यास स्वीकार करते है। क्योंकि उपदेशात्मक होने पर भी इसकी कथा यर्थाथभासी है और इसमें नये ढंग से चरित्रचित्रण का प्रयास भी किया गया है। लालाजी सचेत भाव से उपन्यास लिख रहे थे।

इस पहले उपन्यास के बाद भारतेन्दु युग में बहुत बड़ी संख्या में उपन्यास लिखे गये। इन उपन्यासों को लक्ष्य की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। एक वर्ग उन उपन्यासों का है जो अपना विषय चाहे समाज से ले, चाहे इतिहास-पुराण से अथवा शुद्ध काल्पनिक कथा गड़े, लेकिन मनुष्य जीवन की विभिन्न समस्याओं और भावनाओं को उपस्थित करने के साथ-साथ शिक्षा भी देते हैं ऐसे उपन्यास किशोरी लाल गोस्वामी, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी व जगमोहन सिंह, हरिऔध, गोकुलनाथ शर्मा, बालकृष्ण भट्ट, मेहता लज्जा राम शर्मा आदि ने लिखे। इनमें से किशोरीलाल गोस्वामी का वैशिष्टटय इस बात में है कि उन्होंने संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक उपन्यास लिखे है और सभी तरह के उपन्यास लिखे है। सभी में श्रृंगार का रीतिकालीन पद्धति से खुला चित्रण किया और स्वाभाविक एवं प्रमाणिकता की बिल्कुल चिंता नहीं की है। राधाचरण गोस्वामी के उपन्यासों का वैशिष्टय हिन्दू समाज की विसंगतियों को प्रस्तुत करने में है। उनके तथा राधाकृष्णदास एवं मेहता लज्जा राम शर्मा के उपन्यास हिन्दु गौरव भी भावना से ओतप्रोत है।

4.13 अन्य गद्य विधाएँ

उपर्युक्त तीन गद्य विधाओं के अतिरिक्त अन्य गद्य विधाओं की दृष्टि से भारतेन्दु युग की कोई विशेष देन नहीं है। कहानी का जन्म इस युग में होकर द्विवेदी युग में हुआ। पत्रिकाओं में पुस्तकों की परिचायात्मक सूचना को पुस्तक समीक्षा का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है। भारतेन्दु के निबंध श्नाटक (1883 ई०) से सैद्धांतिक और लाला श्री निवासदास के नाटक 'संयोगिता स्वयंवर की बालकृष्ण भट्ट और प्रेमघनश द्वारा लिखित विस्तृत और तीक्ष्ण आलोचना से व्यवहारिक आलोचना का सूत्रपात अवश्य हो गया, किन्तु उसका विकास आगे चलकर ही हुआ।

4.14 भारतेन्दु युगीन कविता

भारतेन्दु युग में ग्रंथ को लेकर कोई सुविधा नहीं है न कथ्य को लेकर माध्यम भाषा को लेकर क्योंकि भारतेन्दु युग से पूर्व हिन्दी में गद्य की कोई पुष्ट परम्परा नहीं थी लेकिन कविता को लेकर दुविधा है। भक्तिकाल और रीतिकाल की सम्पन्न काव्य परम्परा को छोड़कर एक नये कविता मार्ग पर चलना भारतेन्दु युग के कवियों के लिए सम्भव नहीं था। इसलिए भारतेन्दु युग में भक्ति शृंगार और नीति की प्रचुर कविता का लेखन हुआ तथा इसकी भाषा ब्रजभाषा ही रही। इस युग के अनेक कवि परंपरा का

टिप्पणी

कोरा अनुकरण कर रहे थे, और कविता के नाम पर केवल चमत्कार सृष्टि कर रहे थे, जैसे महाराज कुमार बाबू नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह का शिवाशिव शतक किन्तु स्वयं भारतेन्दु हिजदेव, सरदार कवि, लाल कवि, शाहकुंदन लाल ललित किशोरी, लछिराम जगन्नाथदास रत्नाकारश आदि ऐसी परम्परागत कविता लिख रहे थे जिसमें अनुभव की सजीवता भी थी और चमत्कार भी। भारतेन्दु का निम्नलिखित सवैया भावों की मधुरता और ब्रजभाषा की स्वाभाविकता के कारण परम्परागत होते हुए हुए भी श्रेष्ठ कहा जायेगा।

"एक ही गांव में बास सदा घर पास रहौ नहिं जानती है।
पुनि पाचाएं-सताए आवत जात की आसन चित में आनती है।
ब्रह्म कौन उपाए करै, इनको, हरिश्चंद महा हठ ठानती है।
पिय प्यारे तिहारे निहोरे बिना, अंखिया नहिं मानती है।"

भारतेन्दु युग का नया कवि जब अपने वर्तमान पर दृष्टि डालता है तो एक ओर तो उसे अपना अतीत गौरव याद आता है और दूसरी ओर अपनी वर्तमान अधोगति पर क्षोभ आता है। वह वर्तमान की अधोति पर विचार करता है और उसके लिए उत्तरदायी अनेक कारण सामने आते है। इनमें से एक कारण है भारतीय समाज की जड़ता, रूढ़िप्रियता और तमाम कुरीतियां है। इसलिए यह समाज को सुधारना चाहता है लेकिन यहाँ भी द्वन्द्व और दुविधा है। उस समय समाज-सुधार के ऐसे अनेक प्रश्न थे, जिन पर इस युग के नये कवि भी एक मत नहीं थे-जैसे, बाल विवाह या विधवा विवाह। इन विषयों को लेकर समाज-सुधार की पक्षधरता के कारण ही भारतेन्दु को 'क्रिस्तान कहा गया था। इस युग के नये कवि धर्म का वही रूप स्वीकार करने के लिए तैयार थे, जो स्वस्थ हो। वे कर्मकाण्डों के विरोधी थे। दूसरा कारण था अंग्रेजों द्वारा भारत का आर्थिक शोषण। सन 1857 ई० के विद्रोह के दमन की क्रूरता से उत्पन्न आंतक तथा परवर्ती मध्यकालीन अराजकता आदि से मुक्ति दिलाने के कारण ये कवि अंग्रेज-राज की प्रशंसा भी करते थे, लेकिन अनुभव करते थे कि अंग्रेज राज के सारे सुख-समाज के बावजूद भारत का धन विदेश चले जाना अत्याधिक बरबादी का कारण हैं। इससे मुक्ति के लिए भारतेन्दु ने सन् 1874 ई० में स्वदेशी का आन्दोलन चलाया था। वे अंग्रेज प्रशासन को भारत की तत्कालीन दुर्दशा के लिए कम उत्तरदायी नहीं मानते थे। इसलिए इस युग के नये कवियों ने अफसरों, पुलिस, शिक्षा तरह तरह के कर इत्यादि की कटु आलोचना की है। अंधेर नगरी में चूरन बेचने वाले के इन कथनों में इसी आलोचना का एक रूप है।

चूरन अमले सब जी खावै। दूनी रूशवत तुरत पचावै ।। चूरन साहेब लोग जो खाता सारा हिन्द हजम कर जाता ।। चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते ।।

4.15 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **भारतेन्दु युग को पुनर्जागरण काल क्यों कहा जाता है?**
2. **पुनर्जागरण काल के काव्य की प्रवृत्तियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**
3. **भारतेन्दु युग में सामाजिक दुर्दशा का निरुपण कीजिए।**
4. **कार्तिक स्नान और कंस वध किसकी रचनाएँ हैं?**
5. **काव्यानुवाद का आरम्भ किस युग में माना जाता है?**

टिप्पणी

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारतेन्दु युगीन साहित्य की प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।
2. भारतेन्दु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ लिखिए।
3. भारतेन्दु युगीन काव्य की विशेषताओं पर सोदाहरण चर्चा कीजिए।
4. "हास्य-व्यंग्य की प्रधानता भारतेन्दु युग की प्रधानता है?" इस कथन की पुष्टि कीजिए।
5. भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य में नाटक विद्या का निरूपण कीजिए।

♦♦♦♦♦

इकाई 5

द्विवेदी युग

संरचना

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 द्विवेदी युग : हिंदी जागरण और सरस्वती
5.4 द्विवेदीयुगीन गद्य साहित्य
5.5 द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ
5.6 द्विवेदीयुगीन कविता के आधार बिंदू
5.7 स्वाधीनता आन्दोलन और द्विवेदी युग का मूल चरित्र
5.8 बजभाषा की कविता
5.9 खड़ी बोली की कविता
5.10 अभ्यास प्रश्न

टिप्पणी

5.1 उद्देश्य

- द्विवेगी युगीन काव्य की प्रवृत्तियों का अध्ययन करना।
- द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियों का मुल्यांकन करना।
- द्विवेदी युग सुधार-काव्य से जुड़ा है। इसी काव्य में कई प्रकार के सामाजिक, साहित्यिक, भाषाज्ञान सुधार एवं संस्कार द्विवेदीजी ने हिन्दी साहित्य-समाज को दिए हैं।
- कई महत्त्वपूर्ण काव्य का लेखन इसी काल में हुआ है। उसे समझना जरूरी है। यह यु आदर्श एवं बौद्धिकता का क्यों, कैसा रहा यह देखना-परखना होगा।

5.2 प्रस्तावना

आधुनिक कविता के क्षेत्र में द्विवेदी युग को 'जागरण या सुधार कालश के नाम से जाना जाता है। श्सरस्वतीश का प्रकाशन और द्विवेदी जी का संपउदन क्रांतिकारी घटना के रूप में हिन्दी साहित्य में देखी जाती है। यह सही भी है। 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने श्सरस्वतीश का संपादन प्रारंभ किया। द्वि वेदी युग का कालखंड भी 1903 से 1918 तक माना जाता हैं द्विवेदी के व्यक्तित्व की गहरी छाप इस युग पर रही है। इस युग के यह पथप्रदर्शक, निर्माता, शिक्षक, लेखक, आलोचक, संपादक रहे है। भाषा की शुद्धता, व्याकरण आदि के क्षेत्र में भी उनका मौलिक कार्य रहा है। "उन्होंने साहित्य और समाज को विशेष मोड़ दिया। विद्वानों ने उन्हें बिना डिग्री के आचार्य, बिना मुकुट के सरताज और महान युग प्रवर्तक कहा है। वे एक सफल आलोचक, निबंधकार, अनुवाद, संपादक थे। उनकी रचनाओं का महत्व भले ही न हो परंतु उनके द्वारा निर्मित साहित्य प्रतिभाओं, साहित्य कृतियों का बहुत अधिक महत्व है/

भारतेन्दु युग में भारत दुर्दशा पर दुख प्रकट किया जाता रहा परंतु द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने दुर्दशा के साथ सामान्य जनो में स्वतंत्रता प्राप्ती की चाह निर्माण की। उसके लिए बलिदान का मार्ग सुझाया। इसके पहले ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियासॉफिकल सोसायटी आदि का कार्य भारतवर्ष में फैल चुका था। इस कालखंड में संपूर्ण उत्तर भारत में आर्य समाज के सामाजिक आंदोलन की धूम मची थी। धर्म, समाज का पुनरुत्थान कार्य जोरों पर था। इधर कांग्रेस आजादी का अलख जगाने में काफी आगे बढ़ चुकी थी। ब्रिटिशों की ओर से होने वाले शोषण से तिलक जैसे महान नेता ने देशभर में श्असंतोषश की भावना को फैलाया। निस्वार्थी समाज सेवकों का उदय भी इसी काल में हो चुका था। हर कीमत पर समाचार पत्र प्रकाशन का कार्य इस काल के संपादकों ने जारी रखा//

ब्रजभाषा की जगह खड़ीबोली ने ले ली। शृंगार-भक्ति का स्थान देशभक्ति, समाजसुधार ने लिया। परंपरात काव्य निरुपण शैलियाँ बदली। भारतेन्दु युग में भाषा की जो अस्थिरता पैदा हुई थी। वह यहाँ पर खत्म हुई। काव्य के लिए शुद्ध, व्याकरण सम्मत खड़ीबोली का प्रयोग किया जाने लगा। अचानक ही नहीं बल्कि द्विवेदी की कठोर नीति के परिणामस्वरूप, कविता, आलोचना, शृंगार आदि में निखार और देशपरक समाजहितानुरुप प्रौढ़ता आयी। द्विवेजीजी ने गद्य-पद्य की शैली तथा विषय वस्तु में परिवर्तन लाया। मातृभूमि, स्वदेश गौरव, मानवतावाद, बुद्विाद को काव्य में प्रतिष्ठित किया। कविता में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता आयी। राष्ट्रीय भावना का स्वर गूंज उठा, राजनीतिक चेतना का विकास हुआ। नारी सबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। सांस्कृतिक राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद का विकास भी इसी काल की देन है। मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश, त्रिपाठी जैसे कवि द्विवेदी के व्यक्तित्व की देन है। गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद स्नेही, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, लोचनप्रसाद पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डे, इसी काल के महत्वपूर्ण कवि है। पुनरुत्थान युग का देश, समाज तथा साहित्य पर व्यापक

टिप्पणी

प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि द्विवेदी युग में जागरण आया। नवीन परंपरा का उद्‌भव हुआ। द्विवेदी और सरस्वती का ऐतिहासिक महत्व इस काल में है।

5.3 द्विवेदी युग: हिंदी जागरण और सरस्वती

सन् 1857 ई० में हुए प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में नवजारण का बिगुल बजा दिया और भारतीय जनमानस में देशभक्ति, स्वतंत्रता, राष्ट्रोत्थान, स्वदेशाभिमान की भावनाएँ जाग्रत होने लगीं भारतेन्दु युग में जहाँ इनका सूत्रपात हुआ, वहीं द्विवेदी युग में ये पल्लवित एवं विकसित हो गई। डॉ. रामविलास शर्मा ने इसीलिए हिंदी नवजागरण को हिंदू जाति का जागरण माना है। इस नवजागरण की लहर को जन-जन तक पहुँचाने में 'सरस्वती' पत्रिका का विशेष योगदान है। इसके अतिरिक्त प्रभा, मर्यादा पत्रिका को भी यह श्रेय जाता है।

सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन सन् 1900 ई० से प्रारंभ हुआ तथा सन् 1903 ई० में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसका संपादन भार संभाला। द्विवेदी जी ने इस पत्रिका में ऐसे लेखों को प्रकाशित किया। जिन्होंने नवजागरण की लहर को प्रसारित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। डॉ० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण' में सरस्वती पत्रिका में उद्धरण देकर इस बात को पुष्ट किया है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रेरणा लेकर तथा उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़ने वाले अनेक कवि सामने आए, जिनमें प्रमुख है-**मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गया प्रसाद शुक्ल, सनेही** और **लोचनप्रसाद पांडेय** आदि। यहीं नहीं अपितु बहुत सारे ऐसे कवि जो पहले ब्रजभाषा में कविता लिख रहे थे तथा उनकी विषय वस्तु एवं शैली प्राचीन पद्धति पर थी, अब द्विवेदी जी एवं श्सरस्वतीश से प्रेरित होकर काव्य के चिर-परिचित उपादानों को छोड़कर नए विषयों पर खड़ी बोली में कविता लिखने लगे। ऐसे कवियों में प्रमुख हैं-**अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔद्य', श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा शंकर** तथा **राय देवीप्रसाद पूर्णे।** इन सभी कवियों की कविताएँ नवजागरण राष्ट्रीयता, स्वदेशानुराग एवं स्वदेशी भावना से परिपूर्ण हैं।

द्विवेदी युग में केवल भाषा क्षेत्र में ही परिवर्तन नहीं हुआ अपितु छंदों के क्षेत्र में भी परिवर्तन परिलक्षित है। अब परंपरागत छंद प्रयोग के साथ-साथ संस्कृत के वर्णवृत्तों का प्रयोग भी कवि प्रचुरता से करने लगे।

'सरस्वती' पत्रिका ने कवियों की एक नई पौध तैयार की। उनकी प्रेरणा से अनेक कवियों ने नवीन विषयों पर कविता लिखी। उनके एक निबंध से प्रेरित होकर मैथिलीशरण गुप्त ने चिर उपेक्षिता उर्मिला को महत्व देने हेतु श्साकेतश नामक महाकाव्य की रचना की। उन्होंने महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा को निम्न पंक्तियों में स्वीकार करते हुए अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है

करते तुलसीदास भी कैसे मानस नाद?

महावीर का यदि नहीं मिलता उन्हें प्रसाद।।

खड़ी बोली को परिमार्जित करने, संस्कारित करने तथा व्याकरणिक शुद्धता प्रदान करने में 'सरस्वती' पत्रिका का अविस्मरणीय योगदान है। आचार्य द्विवेदी के भाषा परिष्कार पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचन्द्र शक्ल ने लिखा है- "खड़ी बोली के पद्य विधान पर द्विवेदी जी का पूरा-पूरा असर पड़ा। बहुत से कवियों की भाषा शिथिल और अव्यवस्थित होती थी। द्विवेदी जी ऐसे कवियों की भेजी हुई कविताओं की भाषा आदि दुरुस्त करके 'सरस्वती' में छापा करते थे। इस प्रकार कवियों की भाषा साफ होती गई और द्विवेदी जी के अनुकरण में अन्य लेखक भी शुद्ध भाषा लिखने लगे।"

टिप्पणी

वस्तुत: 'सरस्वती' पत्रिका ने भाषा और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में परिष्कार किया। इसके माध्यम से ज्ञान का प्रचार-प्रसार हुआ, कितने ही नए लेखक और कवि प्रकाश में आए, भाषा संस्कार हुआ, समाज सुधार, देशप्रेम, चरित्र-निर्माण की भावनाएँ विकसित हुई। **देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की चेतना विकसित करने में भी इस पत्रिका का विशिष्ट योगदान है।**

महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग

द्विवेदी युग का नामकरण आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के गरिमामंडित व्यक्तित्व को केंद्र में रखकर किया गया। उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में हिंदी जगत की महान सेवा की और हिंदी साहित्य की दिशा एवं दशा को बदलने में अभूतपूर्व योगदान दिया। महावीरप्रसाद द्विवेदी सन 1903 में सरस्वती पत्रिका के संपादक बने। इससे पहले वे रेल विभाग में नौकरी करते थे। उन्होंने इस पत्रिका के माध्यम से कवियों को नायिका भेद जैसे विषय छोड़कर विविध विषयों पर कविता लिखने की प्रेरणा दी। काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा को त्यागकर खड़ी बोली का,योग करने का सुझाव दिया, जिससे गद्य और पद्य की भाषा एक हो सके। द्विवेदी जी ने श्कवि कर्त्तव्यश जैसे निबंधों द्वारा कवियों को उनके कर्त्तव्य का बोध कराते हुए अनेक दिशा-निर्देश दिए जिससे विषय-वस्तु, भाषा-शैली, छंद योजना आदि अनेक दृष्टियों से काव्य में नवीनता का समावेश हुआ। द्विवेदी जी ने भाषा संस्कार, व्याकरण शुद्धि, विरामचिह्नों के प्रयोग द्वारा हिंदी को परिनिष्ठित रूप प्रदान करने का प्रशंसनीय कार्य किया।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी का हिंदी साहित्य में योगदान एक सर्जक के रूप में उतना नहीं है जितना एक विचारक, दिशा-निर्देशक, चिंतक एवं नियामक के रूप में है। उनकी प्रेरणा से हिंदी के अनेक कवि सामने आए जो उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़े। उनकी विचारधारा का पल्लवन करते हुए इन कवियों ने एक ओर तो नवीन काव्यधारा का श्रीगणेश करते हुए भारतेंदुकालीन समस्या पूर्ति, रीति निरूपण से हिंदी कविता को मुक्त किया तो दूसरी और खड़ी बोली को काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। भाषा परिष्कार एवं संस्कार का जो कार्य द्विवेदी युग में हुआ वह सदैव स्मरणीय रहेगा।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के प्रमुख कवि

माखनलाल चतुर्वेदी - माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968) का जन्म मध्यप्रदेश के जिला होशंगाबाद के गाँव बाबई में हुआ था। इनके पिता गाँव के स्कूल में अध्यापक थे, इसलिए इनकी आरंभिक शिक्षा वहीं हुई। ये एक सजग, संवेदनशील एवं उत्साही व्यक्ति थे और आरंभ से ही देश की दशा के प्रति जागरूक थे। इन पर सैयद अमीर अली, मीर, स्वामी रामतीर्थ और माधवराज सप्रे का विशेष प्रभाव था। वैष्णव-संस्कार तो इन्हें अपने परिवार से ही मिले थे। अपने जीवन का आरंभ इन्होंने एक अध्यापक के रूप में किया था, किंतु ये पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्यशील रहे और इन्होंने 'प्रभा', 'प्रताप' तथा कर्मवीर का संपादन किया। इनका उपनाम श्एक भारतीय आत्माश था आरंभ में ये क्रांति के दर्शन से प्रभावित हुए थे, किंतु बाद में इनकी आस्था गाँधीवाद को ओर हुई। इनकी राजनीतिक सक्रियता के कारण इन्हें कई बार बंदी बनाया गया। जेल के जीवन-काल में इन्होंने अनेक कविताओं की रचना की। छायावाद-युग के इनके प्रमुख कविता-संग्रह हैं-हिमकिरीटिनी और हिमतरंगिनी। चतुर्वेदी जी की रचनाओं में देश के प्रति गंभीर प्रेम और देश-कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग की उत्कृट भावना दिखाई देती है। इस मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को तभी सफलता मिल सकती है जब वह जीवन के सुख और वैभव को ठुकराकर संघर्ष और साधना का मार्ग अपनाए। इन्होंने अपना रचनाओं द्वारा देशवासियों को इसी संघर्ष और साधना के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इनकी कई रचनाआ में-विशेषकर आरंभिक रचनाओं में आध्यात्मिक अनुभूति को भी वाणी मिली है। इनकी आध्यात्मिक भावना पर निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति और आत्मोत्सर्ग का प्रभाव है।

टिप्पणी

सियारामशरण गुप्त - सियारामशरण गुप्त (1895-1963) का जन्म उत्तर प्रदेश के जिला झाँसी के चिरगाँव नामक ग्राम में हुआ था। ये मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई थे। रोग एवं परिवारिक दुखों के कारण इनका जीवन अत्यंत द:खमय रहा। वैसे ये सरसता एवं नम्रता की प्रतिमर्ति थे। उनकी पहली रचना सन् 1910 में इंदु पत्रिका में प्रकाशित हुई इसके बाद सरस्वती में कई रचनाएँ छपी। "मौर्य विजय, अनाथ, दुर्वादल, विषाद, आर्द्रा, पाथेय, मृण्मंथी, बापू, दैनिकी आदि इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं। गाँधीवाद में इनकी अटूट आस्था थी, इसलिए इनकी सभी रचनाओं पर अहिंसा सत्य, करुणा, विश्वबंधुत्व, शांति आदि गांधीवादी मूल्यों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। जिन रचनाओं में इन्होंने प्राचीन भारतीय आख्यानों को आधार बनाया है, वहाँ भी ये इन्हीं मूल्यों की प्रतिष्ठा करते दिखाई देते हैं। विषय-प्रतिपादन और अभिव्यंजना-शैली की दृष्टि से जहाँ इन पर एक ओर द्विवेदीयुगीन रचना-पद्धति का प्रभाव लक्षित होता है, वहां दूसरी ओर ये छायावादी शिल्प से भी प्रत्यक्षत: प्रभावित है। इनकी भाषा-शैली सरल और स्पष्ट है तथा इन्होंने सफलता के साथ मुक्त छंद का प्रयोग किया है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' - 'नवीन' जी (1897-1960) का जन्म ग्वालियर राज्य के भयाना गाँव में हुआ था। ग्यारह वर्ष की आयु में इनकी शिक्षा का आरंभ हुआ। सन् 1917 में हाई स्कूल पास करने के बाद ये कानपुर पहुंचे, जहाँ गणेशशंकर विद्यार्थी ने इन्हें कॉलेज में दाखिल करा दिया। किंतु सन् 1920 में ये गाँधी जी के आ हवान पर कॉलेज छोड़कर राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे। अपने लंबे राजनीतिक जीवन के दौरान इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। देश के स्वाधीन होने पर ये पहले **लोकसभा और फिर राज्यसभा के सदस्य रहे।** कुछ समय तक इन्होंने प्रभा और प्रताप का भी संपादन किया था। इनकी रचनाएँ सन् 1918 से ही पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं, लेकिन इन्होंने उनको विधि वत् प्रकाशित कराने का कोई प्रयास नहीं किया। कुंकुम (1939) इनका पहला कविता-संग्रह है। 'उर्मिलाश काव्य को इन्होंने सन् 1934 में ही पूरा कर लिया था, किंतु उसका प्रकाशन 1975 ई० में हुआ। इसमें कवि ने उर्मिला के चरित्र के माध्यम से भारत की प्राचीन आर्य संस्कृति के उज्जवल रूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। कथानक को अपने परिवेश के यथार्थ से-भारतीय संस्कृति और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के संघर्ष से-संबद्ध करने के लिए कवि ने कुछ प्रसंगों की अत्यंत कौशलपूर्वक संयोजना की है। इनके अन्य काव्य ग्रंथ है **अपलक, रश्मिरेखा, क्वासि** तथा **हम विषपायी जनम के**। श्नवीनश जी की रचनाओं में प्रणय और राष्ट्र-प्रेम दोनों भावों की शक्तिशाली अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी प्रणय-संबंधी रचनाओं में छायावादी प्रणय के समान स्वच्छदता तथा प्रेम और मस्ती के काव्य जैसी मार्मिकता दिखाई देती है। इस रूप में नवीन जी को परवर्ती प्रेम और मस्ती के काव्य के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इनकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं में अनुभूतियों का सीधा संबंध इनके जीवन के साथ है। देश की स्वतंत्रता तथा समाज की नई रचना के लिए इन्होंने जो अथक साधना की थी, वही साधना निश्छल और सहज शक्ति के साथ इनकी राष्ट्रीय रचनाओं में भी दिखाई देती है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के अन्य कवियों के समान ही इनके काव्य के प्रधान विषय है-अतीत की महिमा का गौरव-गान तत्कालीन भारतीय समाज की रुग्ण अवस्था के प्रति व्यथा और आक्रोश, भविष्य को अवतरित करने की कामना आदि। किंतु, इनकी काव्य-चेतना का एक पक्ष बिलकुल निजी और अनुभूति-प्रधान है -

"हम अनिकेतन, हम अधिकेतन, हम तो रमते राम हमारा क्या घर, क्या दर, कैसा वतन?" कहीं तो ये अपने पक्कड़पन और मस्ती की अभिव्यक्ति करते हैं और कहीं नशे में गर्क हो जाना चाहते है "हो जाने दे गर्क नशे में, मत पड़ने दे फर्क नशे मे।" ये जिस ललक और उत्साह के साथ कर्म और साधना की ओर अग्रसर होते हैं, उसी आवेश और आसक्ति के साथ प्रणय में डूब जाना चाहते हैं। फलस्वरूप

टिप्पणी

पहली दशा का संघर्ष और तनाव और दूसरी स्थिति की मदहोशी और मस्ती दोनों कारण-कार्य-भाव से संबद्ध होकर परस्पर पूरक-से. लगते हैं।

सुभद्राकुमारी चौहान - सुभद्रा जी (1905-1948) का जन्म प्रयाग जिले के निहालपुर गाँव में हुआ था। इन्होंने प्रयाग में ही शिक्षा ग्रहण की। सन् 1921 में असहयोग आंदोलन के प्रभाव में इन्होंने शिक्षा अधूरी ही छोड़ दी और ये राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगी। अपने राजनीतिक कार्यों के कारण इन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। काव्य-रचना की ओर इनकी प्रवृत्ति विद्यार्थी-काल से ही थी। इनकी कविताएँ त्रिधारा

और मुकुल में संकलित है। भाव की दृष्टि से इनकी कविताओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में राष्ट्र प्रेम की कविताएँ रखी जा सकती है। जिनमें इन्होंने असहयोग या आजादी की लड़ाई में भाग लेने वाले वीरों को अपना विषय बनाया है। इनकी श्झाँसी की रानीश कविता तो सामान्य जनता में बहुत प्रसिद्ध हुई है। दूसरे वर्ग के अंतर्गत वे कविताएँ रखी जा सकती है जिनकी प्रेरणा इन्हें अपने पारिवारिक जीवन से प्राप्त हुई है। ऐसी कविताओं में कुछ तो पति-प्रेम की भावना से अनुप्राणित हैं और कुछ में संतान के प्रति वात्सल्य की सहज एवं मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी भाषा शैली भावों के अनुरूप सरलता और गति लिए हए है।

अन्य कवि - छायावाद-युग में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के विकास में जिन अन्य कवियों ने उल्लेखनीय योग दिया अथवा इस धारा के परवर्ती प्रमुख कवियों में से जिन कवियों की एक-दो कृतियाँ आलोच्य काल में प्रकाश में आई उनमें रामनरेश त्रिपाठी, उदयशंकर, भट्टा, जगन्नाथप्रसाद मिलिंद, दिनकर आदि का उल्लेख आवश्यक है। रामनरेश त्रिपाठी (1881-1960) ने श्मानसीश (1927) की कतिपय देशभक्तिपरक कविताओं के अतिरिक्त पथिक (1920) और स्वपन (1921) शीर्षक खंडकाव्यों में काल्पनिक कथाओं के माध्यम से देश के उद्धार के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना को व्यक्त किया है। दोनों काव्यों के नायक सामान्य जनता के प्रतिनिधि है। पथिक का नायक जन-जीवन के वैषम्य को दूर करने के उद्देश्य से राजतंत्र से लोहा लेता है। और अंत में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपना तथा अपने परिवार का बलिदान कर दिता है। 'स्वप्न में कवि ने एक ऐसे संवेदनशील नायक की कथा का वर्णन किया है जो पहले तो स्वार्थ और लोक-सेवा अथवा व्यक्तिगत सुख और समाज-कल्याण में विरोध देखता है, किंतु फिर उसे कर्त्तव्य का बोध होता है और वह देश के कल्याण के लिए पूरी शक्ति से कर्मलीन होता है। श्पथिकश के विपरीत इस काव्य का अंत सुखद है। इन दोनों काव्यों में कवि ने राष्ट्र-सेवा के आदर्श की स्थापना की है तथा समाज-विरोधी शक्तियों के प्रति विद्रोह करने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार ये कल्पित कथानक भी सहज ही कवि के सामाजिक यथार्थ से संबद्ध होकर अधिक सार्थक बन गए है। उदयशंकर भट्ट (1898-1966) के आख्यान काव्य तक्षशिला (1929) की गणना भी प्रस्तुत काव्यधारा के अंतर्गत की जा सकती है-भारत की सांस्कृतिक, गुण-गाथा की अभिव्यक्ति इस रचना का मुख्य अभीष्ट है। जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद (1907-1986) के 'जीवन-संगीत' में भारत के सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्रीय चेतना और बलिदान की भावना को व्यक्त करने वाली कविताएँ संकलित हैं। इनकी रचना 1922 से 1936 के मध्य हुई थी। दिनकर-कृत श्रेणुकाश (1935) भी इसी शैली का कविता-संग्रह है। रूढ़ी-विद्रोह, नवयुग की स्फूर्ति और ओजस्विता की दृष्टि से इसकी कविताएँ अप्रतिम है। इस संदर्भ में मैथिलीशरण गुप्त की स्वदेश-संगीत (1925), कवि त्रिशुल (गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही) की 'राष्ट्रीय मंत्र' (1921), केदारनाथ मिश्र प्रभात की 'ज्वाला (1921), महेशचंद्र प्रसाद की 'कांग्रेस शतक' (1936) आदि रचनाओं का उल्लेख भी आवश्यक है-उस की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-चेतना को गतिमान करने में इन कृतियों का योगदान अविस्मरणीय है।

5.4 द्विवेदी युगीन गद्य साहित्य

गद्य साहित्य की कई विधाओं की नींव भारतेन्दु युग में पड़ गई थी। द्विवेदी युग में उनका विकास हुआ तथा कुछ नई गद्य-विधाओं ने जन्म लिया, जैसे, आत्मकथा जीवनी, संस्मरण, यात्रा विवरण, रेखाचित्र आदि। वस्तुतः इस युग में गद्य-साहित्य अपनी सभी विधाओं एवं दिशाओं में पूर्णतः उभरकर सामने आया। इन पर हम आगे विचार कर रहे है।

नाटक

नाटक भारतेन्दु युग में एक केन्द्रीय विधा थी, द्विवेदी युग में वह निर्जीव हो गई। जैसी सक्रियता, संजीविता और नाटय चेतना हमें भारतेन्दु युग में दिखाई देती है वैसी द्विवेदी युग में नहीं। इसका एक कारण तो पारसी थियेट्रीकल कम्पनियों की सक्रियता है। इन कम्पनियों का मुख्य उद्देश्य दर्शकों को मनोरंजन करके धर्नाजन करना था। इन कम्पनियों का 1853 ई० में अव्यावसायिक स्तर पर और 1867-1869 ई० में व्यसायिक स्तर पर प्रारंभ हो गया था। इन कम्पनियों के लिए और पारसी रंगमंच से प्रभावित होकर नाटक लिखने वालों में नारायणप्रसाद बेताब, रघुनन्दन प्रसाद शुल्क, विश्वभर सहाय व्याकुल जनेश्वर प्रसाद श्मायल-, तुलसीदत्त शैदा, हरिकृष्ण जौहर, राधेश्याम कथावाचक आदि के नाम उल्लेखनीय है। इनके नाटकों का कोई साहित्यिक महत्व नहीं हैं इन्होंने हिन्दी नाटक में कुछ जोड़ा नहीं है। इनमें से कुछ के नाटक बड़े लोकप्रिय हुए थे। जैसे विश्वभर सहाय 'व्याकुल का बुद्ध देव, जनेश्वर प्रसाद मायल का सम्राट चंद्रगुप्त, राधेश्याम कथावाचकका वीर अभिमन्यु आदि।

उपन्यास

नाटक की तरह द्विवेदी युग में उपन्यास भी बहुत समृद्ध नहीं है। जिन उपन्यासकारों ने भारतेन्दु युग में उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था, वही इस युग में भी उपन्यास लिख रहे थे। मेहता लज्जाराम शर्मा, किशोरीलाल, गोस्वामी, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, ब्रजनन्दन सहाय, बलदेव प्रसाद मिश्र, मन्नत द्विवेदी, गंगाप्रसाद गुप्त, देवकीनन्दन खत्री, गोपाल राम गहमरी इत्यादि के अनेक उपन्यास द्विवेदी युग में भी प्रकाशित हुए, किन्तु प्रवृत्ति की दृष्टि से वे भारतेन्दु युगीन उपन्यास ही है।

इन उपन्यासकारों के उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास किसी नई दिशा में नहीं मोड़ा। हिन्दी उपन्यास को नई दिशा प्रदान की प्रेमचंद्र ने जिनका हिन्दी में पहला उपन्यास 'सेवासदन' 1918 ई० प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व उर्दू में वे कई उपन्यास लिख चुके थे। सेवासदन भी हिन्दी में प्रकाशित होने से पूर्व उर्दू में बाजारे हुस्न के नाम से लिखा जा चुका था। सेवासदन ने हिन्दी उपन्यास को कोरे मनोरंजन उपन्यासों या कोरे उपदेशात्मक उपन्यासों से अलग करके सामाजिक-राजनैतिक जीवन की समस्याओं को गंभीरतापूर्वक स्वाभाविक लगने वाले कथानकों, यथार्थ प्रतीत होने वाले पात्रों, कलात्मक और व्यंजना से परिपूर्ण भाषा के माध्यम से व्यक्त करने वाली नई दिशा में मोड़ा। प्रेमचंद की दृष्टि आदर्शवादी थीं किंतु उनकी शक्ति समस्याओं के यथार्थ परिपेक्ष्य में थी। सेवासदन का महत्व वैश्या-समस्या के आदर्शवादी समाधान में नहीं है, अपितु इस समस्या की यथार्थ और विश्वसनीय प्रस्तुति में है। असल में 1918 ई० से पहले का हिन्दी साहित्य जिस प्रेमचंद पूर्व उपन्यास भी कहते हैं। तैयारी मात्र है। न केवल हिन्दी उपन्यास को, अपितु स्वयं प्रेमचंद्र को मा सेवासदनश में ही परिपक्वता का एक स्तर प्राप्त होता है।

कहानी

हिन्दी में कहानी का जन्म द्विवेदीयुग में ही हुआ। हिन्दी साहित्य के विभिन्न इतिहासकारों ने हिन्दी की पहली कहानी के रूप में जिन कहानियों को चर्चा की है। वे है किशोरी लाल गोस्वामी की इंन्दुमती (1900 ई०) चंद्रशुक्ल ग्यारह वर्ष का समय (1903 ई०) और बंग महिला की दुलाईवाली (1970

टिप्पणी

ई०)। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास में लिखा था- "यदि इंदुमती किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो यही हिन्दी की पहली भौतिक कहानी ठहरती है।" बाद के अनुसंधानों से यह सिद्ध हो गया कि इंन्दुमती किसी बंगला कहानी की छाया तो नहीं है किंतु शेक्सपीयर के नाटक द टेम्पेस्ट का भारतीय करण के साथ हिन्दी रूपांतर अवश्य है। वह मौलिक कहानी नहीं है और इसलिए हिन्दी की पहली कहानी के रूप में अमान्य हैं यही बात एक टोकरी भर मिट्टी के संबंध में भी कही जा सकती है। वह भी फिरदौसी के 'शाहनामा' की एक कथा नौशेखां का इसांफ पर आधारित है। शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' की मौलिकता पर आज तक किसी ने प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया हैं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जिस तर्क के आधार पर इसे हिन्दी की कहानी नहीं माना है उसे स्वीकार करना संभव नहीं है। इसलिए ग्यारह वर्ष का समयश को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी माना जा सकता है।

निबन्ध

द्विवेदीयुगीन लेखक में वह आत्मीयता, अनौपचारिकता और सजीवता नहीं रह गई जो भारतेन्दु युगीन लेखक में थी। फलत: इस युग में लेख अधिक लिखे गए, निबंध कम। और इसलिए इस युग में जिन्हें सच्चा निबंधकार माना जा सकता है। वे दो-चार ही है। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अधिकांशत: लेख ही लिखे है। इसी प्रकार इस युग के लेखकों में श्यामसुंदर दास मिश्र बंधु, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, अयोध्या सिंह उपाध्याय, माधवराव स्प्रे, जर्नादनभक्त काशीनाथ जायसवाल, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इत्यादि लेखकार ही हैं निबंधकार नहीं/

भारतेन्दु और द्विवेदी युग की संधि पर विद्यमान सच्चे निबंधकार है-बालमुकुंद गुप्त। निबंधकार के रूप में उनका यश शिवशम्भु के चिटठे और खेत पर आधारित है। इन चिटठों और खेतों में गप्त जी ने मख्यत: अपने समकालीन अंग्रेजी शासन और उसकी नीतियों की आकर्षक ढंग से आलोचना की है। इनमें एक ओर तीखा व्यंग्य है तो दूसरी ओर पराधीन देश के नागरिक की पीड़ा। उन्हीं के समकालीन गोविन्दनारायण मिश्र भी कवि और चित्रकारश "षड्ऋतु वर्णन, आत्माराम की टें-टे।" जैसे गिने चुने निबंधों के कारण उल्लेखनीय माने जाते है। यद्यपि उनकी भाषा ऐसी है जो अच्छे-अच्छों के दांत खट्टे कर दे। उनकी शब्द योजना और वाक्य रचना बाणभट्ट की याद दिलाती है/

5.5 द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

अंग्रेजों के दमन चक्र और कूटनीतिक शासन का विरोध करने के लिए इस युग में परंपरा को छोड़कर, साहित्य में पौराणिक तथा ऐतिहासिक घटनाओं और चरित्रों को राष्ट्रीय भावना के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया। मध्यवर्ग के साथ निम्नवर्ग का चित्रण किया जाने लगा। परिणामत: किसान मजदूर, स्त्री-दलितों का कष्टप्रद जीवन उभरकर आया। राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना का स्वर मुखरित हुआ। प्रखर बुद्धिवाद के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नीर-क्षीर विवेक का आग्रह शुरू हुआ। मानवीय मूल्यों का आग्रह भी इसा काल में शुरु हुआ। भारतीय और युरोपिय दर्शन का संघर्ष प्रारंभ भी इसी काल की देन है। भारत के हृदय तथा यूरोप को बुद्धि पक्ष मानकर उसके एकमेक होने की स्थिति को आदर्श माना जाने लगा। आर्य समाज का आंदोलन इस समय जोर पर था। गुरुकुल कांगडी की स्थापना हो चकी थी। आर्यसमाज के नेतृत्व में डी.ए.वा. कॉलेज खलने लगे थे। शिक्षा का सार्वत्रिक प्रचार-प्रसार हो रहा था। तर्क बुद्धिवाद, मानवता, राष्ट्रयिता, स्त्री-शिक्षा, आदर्शवाद इस युग के मूल्य और प्रेरणा रही है। जिसका व्यापक प्रभाव साहित्य पर पड़ा।

टिप्पणी

5.6 द्विवेदी युगीन कविता के आधार बिंद

मानवता का प्रकटीकरण

मानवतावाद की भावना का विकास भारतेन्दु युग से ही प्रारंभ हो चुका था। साहित्य में जनवादी, प्रवृत्ति के संकेत इसी युग से प्राप्त होते है। शायद यही कारण रहा है कि हरिऔध के राम-कृष्ण आदर्श समाज-सुधारक और नेता है। मैथिलीशरण गुप्त के राम अवतारी न होकर आदर्श मानव है, जो निजकर्मो से इस धरती को स्वर्ग बनाने आये हैं। अर्थात् पशुवत जीवन जीने वाले सामान्य मनुष्य के प्रति गहरी संवेदना का भाव इस युग के साहित्य में आया है। उसके प्रति स्नेह, सहानुभूती, कर्तव्य, क्षमा की भावना का अभिव्यक्तिकरण कवियों ने किया है। सर्वधर्म समता का बिगुल भी इसी काल में बजने लगा था। स्त्री-दुर्दशा के चित्र कविता में उतारे जा रहे थे" अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में दूध और आँखों में पानी" से उसकी कारुणिक अवस्था प्रकट कर, उसके प्रति क्षोभ ही व्यक्त किया जा रहा है। रविद्रनाथ के विश्वबंधुत्व की कल्पना इस समय का आदर्श रही है। साहित्य का सृजन आदर्श की प्रतिष्ठापना और मनुष्य महत्व के लिए किया जा रहा था।

आदर्शवाद

यह युग पाश्चात्य वैज्ञानिक एवं नये शिक्षा के संपर्क में आये भारतीय तथा परंपरागत कलाबाह्य मूल्यों की टकराहट का रहा है। फिर भी जो अच्छा उसको स्वीकार करने की प्रवृत्ति भारतीयों में रही। वेदों को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने की भरसक कोशिशे आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, विवेकानंद तथा प्रार्थना समाज ने की थी। विवेकानंद ने तो भारतीय आध्यात्मवाद का हृदयवाद के रूप में पश्चिमी भौतिकवाद के सामने रखकर उसको प्रतिष्ठा दिलायी थी। यह सीधा-सीधा दो संस्कृतियों के भीतर की टकराहट थी। पश्चिम ने देश को पिछड़ा और सड़ा-गला साबित कर दिया था। अज्ञानी, अंधविश्वासी करार दिया था। इस सबको दूर कर भारतीयता का गौरव गान करने की प्रवृत्ती इस काल में विद्यमान है। बुद्धिवाद पर अध्यात्म की अर्थात् बुद्धि पर हृदय की विजय के रूप में भारतीय अध्यात्म परंपरा का समन्वय साधने की चेष्टा की जा रही थी। छायावाद में इसे प्रसाद ने कामायानी में अभिव्यक्त किया है। इसी को साहित्यकार आदर्श के रूप में स्थापित करते जा रहे थे। भौतिक सुख सुविधाओं की अपेक्षा मानसिक संतुष्टि की चर्चा चल रही थी। आर्यसमाज, ब्रह्म समाज, तथा राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी श्सत्यम् शिवम् सुंदरम् को पराश्रय दिया था। एक तरह से इसके पीछे ईसाई मत के नकार देने का भाव भी छिपा हुआ था। रविन्द्रनाथ के मानवतावाद ने हिन्दी को बल प्रदान किया, यह सच्चाई है।

बौद्धिकता का प्रतिपादन

ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसफिकल सोसायटी के साथ भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने समाजिक जागरण का बड़ा कार्य भारतेन्दु युग से ही शुरू किया था। वेद को तर्क प्रमाण पर कसकर उसकी नयी आलोचना आर्य समाज प्रस्तुत कर रहा था। चाहे वह आध्यात्मिक उन्नति हो, कर्मकांड हो, स्त्री प्रश्न, हो इन सबके प्रति वैज्ञानिक दष्टिकोण एवं नयी शिक्षा से प्राप्त दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया गया। परिणामत: पुराने को आँख मँद कर स्वीकारते हए उसके प्रति विदोह का भाव प्रकट होने लगा। अनेकेश्वर की जगह एकेश्वर वाद इसका प्रमाण है। बद्धिवाद के कारण ही देवी-देवताओं की ओर देखने की दृष्टि बदल गयी। कर्मकांड के थोथे पन को उजागर किया गया। रुढ़िवादिता एवं सड़ी-गली प्राचीन परंपराओं पर कुठाराघात किये जा रहे थे। देवता की अवतारवादी संकल्पना को नकारा जा रहा था। अलौकिकता की जगह लौकिकता का चित्रण किया जा रहा था/

टिप्पणी

एक तरह से यह बौद्धिकता का युग, तार्किक प्रणाली से सोचने-विचारने का युग प्रारंभ हो गया था। जातिवाद की आलोचना इसी कारण होती रही। प्रकृति तथा अलौकिक शक्ति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण से देखा जाने लगा था। यह आग्रह भाषा के क्षेत्र में भी दिखाई देता है। बौद्धिकता इस युग की प्रधान प्रवृत्ति रही है उसका प्रभाव आने वाले काल पर भी पड़ा। 15.6.4 सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की भावना।

द्विवेदी युगीन कविता में देश के अतीत का गौरव गान बड़ी श्रद्धा सहानुभूती और प्रेम के साथ किया है। स्वदेशी आंदोलन को जगाने के लिए इस प्रकार का वर्णन किया गया। वैसे हमने पहले ही कहा है की नवजागरण हेतु हिन्दू धर्म, ग्रंथों की नयी व्याख्या कर उनका पुनरुत्थान इस युग में किया जा रहा। तत्कालीन समय में स्वाधीनता आंदोलन तो विकसित हुआ पर कुछ समय के बाद साम्प्रदायिक भावनाओं का विकास भी हुआ। भारतेन्दु एवं द्विवेदी साहित्य ने पाठकों, आम जनता के मन में वर्तमान में जिसे हम हिन्दुत्व कहते है उसका विकास करने में योग दिया ऐसा कहा जा सकता है। नाटक एवं उपन्यास, कहानी और एकांकी साहित्य के प्रमाण दिये जा सकते है।

इस समय के विद्वानों ने कहा है "जहाँ भारतेन्दु युग में केवल प्राचीन के प्रति पूज्य भाव था और नवीन के प्रति निराशा, वहाँ द्विवेदी युग के कवियों में शक्ति और साहस का अपूर्व मिश्रण दिखाई पड़ता है।" मातृभूमि की वंदना, उसे पुण्यभूमि के रूप में चित्रित करना आदि भाव जहाँ भारतेन्दु युग में निराशा के स्थान पर द्विवेदी युग में आशा और विश्वास का भाव भरते है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती जैसे काव्यों ने जोश एवं उत्साह का संचार किया। हर कंठ की वह भारत-जननी बनी उक्त यग में यह कार्य राजनीतिक चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। परंतु आने वाले भविष्य को मात्र अतीत की ओर मोड़ दिया गया। इसमें दो राय नहीं होनी चाहिए। बंकीमचंद्र की आनंदमठ का प्रकाशन हो चुका था। हिन्दी के अधिकांश साहित्यकार बांगला से प्रभावित रहे है। आनंदमठ के संबंध में बड़ी मार्मिक टिप्पणी वीर भारत तलवार ने की है, "आनंदमठ (1882) में प्रकाशित इस उपन्यास में विद्रोही हिन्दू सन्यासियों के गुप्त संगठन का वर्णन है। ये सन्यासी मीरजाफर के शासन को श्मुसलमानी राजश मानकर उसके खिलाफ लड़ते है, लेकिन कलकत्ते में प्रबल हो रहे अंग्रेजों के खिलाफ नहीं .... (अंग्रेजी राज को मित्र बताते हुए उसके रहने और बनने में विद्रोहियों ने सहयोग दिया ताकी) अंग्रेजों के बिना राजा हुए सनातन धर्म का उद्धार नहीं होगा।" हर वर्ग में राजनीतिक चेतना जगाने का प्रयास काँग्रेस के साथ कवियों ने भी किया मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही रामनरेश त्रिपाठी आदि। श्रीधर पाठक विद्यार्थियों को प्रेरित करते हुए लिखते है

"अहो छात्रवर-वृद नव्य भरत-सुत प्यारे
मातृगर्व-सर्वस्व मोदप्रद गोद-दुलारे।
सतसेवा व्रत धार जगत के हरो क्लेश तुम।
देश प्रेम में करो प्रेम का अभिनिवेश तुम॥"

एक प्रकार से राजनीतिक चेतना को जगाने में प्रतिबद्ध काव्य की रचना, काँग्रेस के आंदोलन को अपने कंधे पर लेकर चल रहा था। नयी राष्ट्रीय भावना का विकास हो रहा था।

राष्ट्रीय भावना और राजनीतिक चेतना

द्विवेदी यगीन कवियों ने देशभक्ति संबंधी जागरण कविता द्वारा फैलाया है। इस युग की कविता राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत है। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन को प्रेरित करने, देशवासियों को उनकी गुलामी का अहसास कराने उनकी निष्क्रियता, अकर्मण्यता की मनोवृत्ती को स्पष्ट करने का प्रयास कविता द्वारा हुआ है/

टिप्पणी

लोकमान्य की राजनीतिक स्वतंत्रता की माँग, स्वदेशी वस्तु प्रति प्रेम आदि भावना का विकास काँग्रेस की और से किया जा रहा था। साहित्य में भी इसके प्रतिबिंब आये है। देश प्रेम कविता का विषय हो गया, फिर कविता छोटी हो या प्रबंधात्मक। मैथिलीशरण गुप्त का साकेत, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधश का प्रिय प्रवासश रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित चिंतामणी और सत्यनारायण कविरत्न का भ्रमरगीत' आदि रचनाएँ हिन्दी भाषा के गौरव ग्रंथ होने के साथ-साथ देशभक्ति और अतीत की ज्वलंत विभुतियों के भव्य निदर्शक भी है। इसमें वर्तमान भारतीय स्थिति पर करुणा प्रकट की है। और अतित को गौरवशाली बनाया गया है। इस युग की कविता ने किसी प्रकार की जातिगत, धर्मगत संकीर्णता को पराश्रय नहीं दिया। संपूर्ण भारत एक भाव कविता में आया। इस व्यापक चेतना को फैलाने में "हिन्दू-मुस्लिम, सिख, ईसाई सब आपस में भाई-भाई" का नारा फैलाया। जिसमें शिक्षित भारतीय जनता में नवसंचार हुआ और वह आजादी के आंदोलन में आत्मोत्सर्ग करने के लिए तत्पर हुआ। नयी राजनीतिक चेतना का भय ब्रिटिश शासन को भी था। इसलिए इस काल की पत्रकारिता पर कड़े कानून लागू किये गये थे। कविवर शंकर ने आत्मोत्सर्ग एवं स्वतंत्रता प्राप्ती के संदर्भ में अपनी कविता 'बलिदान गानश में कहा है

"देशभक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।"

प्रत्येक कवि देश की दीन-हीन दशा और उसके प्रति क्षोभ व्यक्त करता है। मिथ्या दंभ, अभिमान को निकालकर देश दशा पर ध्यान देने का आग्रह करता है। रायदेवीप्रसाद पूर्णश की कविता "आलस फुट खुदगर्जी, मिथ्या कुलीनता आदि अभिशापों की ओर भी इस युग का कवि दृष्टि डालता है और इसके निराकरण की कामना करता है।"

भरतखण्ड का हाल जरा देखो है कैसा।
आलस का जंजाल जरा देखो है कैसा।।
जरा फूट की दशा खोलकर आँखे देखो।
खुदगर्जी का नशा खोलकर आंखे देखो।
है शोखी दौलत की कहीं, बल का कही गुमान है।
है खानदान का मद कहीं, कहीं नाम का ध्यान है।।

द्विवेदी युग ने देशवासियों को उनकी स्थिति से अवगत कराकर आजादी के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। इसलिए उन्होंने कुप्रथाओं, बाह्याडम्बरों, सामाजिक कुरीतियों, देश दुर्दशा को कविता का विषय बनाया।

काँग्रेस में मध्यवर्ग का उदय एवं उभार देश में नयी राजनीतिक चेतना फैलाने में कारगर सिद्ध हुआ। देशोन्नती के लिए सभी जाती वर्ग आग्रही रहे। "बंग-भंग की भारत विरोधी और जाति-भेदीकरण की नीति से राष्ट्रीय भावनाओं से पूरित भारतीय जनता की आँखे खुल गई और वे अंग्रेजों को बड़े संदेह की दृष्टि से देखने लगे और इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप तथा राष्ट्रीयता के अनुरूप सभी जातियों में भ्रातृत्व भावना का प्रचार हुआ। रूपनारायण पाण्डेय की एक कविता इसी प्रकार की हैष

जैन बौद्ध पारसी यहूदी मुसलमान सिख ईसाई।
कोटि कंठ से मिलकर कह दो, हम सब है भाई-भाई।।
पुण्य भूमि है, स्वर्ग भूमि है, जन्म भूमि है देश यही।
इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया में है जगह नहीं।।

टिप्पणी

धार्मिक कल्पना

इस काल की कविता में धार्मिकता की अलग कल्पना की गई है। बौद्धिकता के प्रभाव के कारण ईश्वर आदी के मानवीय रूपों की कल्पना की गई है। साकेत में मैथिलीशरण गुप्त लिखते है

"राम, तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या?"

आदर्श की प्रस्थापना करने हेतू 'राम' को मानव रूप की कल्पना मनुष्य के दु:ख, कष्ट हरण हेतू की गयी साथ ही आर्य धर्म बनाकर, धरती को स्वर्ग बनाने की बात भी राम करने लगते है। आगे गुप्तजी कहते

"मैं आर्ये का आदर्श बताने आया।,
जन-सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
भव में नव वैभव प्राप्त करने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ नहीं मैं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।"

मानव की सेवा और सामन्ती सभ्यता के निंदा का भाव कवियों में रहा है। इसलिए उनमें मानव सेवा ही ईश्वर सेवाश का भाव विद्यमान है। जिस प्रकार श्साकेतश के राम मानव रूप में आये उसी प्रकार प्रिय प्रवास (हरिऔध) के कृष्ण भी मानव सेवा करते दिखाए गए है। बुद्धिवाद के युग में अवतार वाद का प्रतिपादन करना द्विवेदी युग को असंभव था। इसलिए दीन-दलितों, दुखितों, श्रमजीवों में ईश्वर की कल्पना की गई और ईश्वर प्रेम, विश्व प्रेम में बदल गया ठाकुर गोपालशरण सिंह कहते है

"जग की सेवा करना ही है, सब सारों का सार
विश्वप्रेम के बंधन ही में, मुझ को मिला मुक्ति का द्वार।"

वस्तुत: जीवन, जगत और प्रकृती में व्याप्त ईश्वर के प्रति कवि की अभिव्यक्ति भावना में रहस्यात्मकता आ गई। वही आगे छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई। धार्मिक भावना को जनसेवा, विश्वप्रेम से जोड़कर उसे कुछ अलग ढंग से विकसित किया गया।

इतिवृत्तात्मकता

इस काल की कविता शृंगार के बोझ से मुक्त हुई। उसकी जगह देश प्रेम, सामाजिकता, आशावादिता ने लिया। स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदीजी का जीवन बड़ा कठोर, संयत, सात्विक एवं आदर्श था। जीवन शुचिता के साथ काव्यशुचिता, भाषा शुचिता पर उन्होंने बल ही नहीं दिया बल्कि उसके प्रति वे आग्रही थे। शायद यही कारण है की शृंगार की उच्छृखलता का विरोध कर दाम्पत्य शृंगार को कविता में सुष्ठ रूप में स्वीकारा। परिणामत: कविता इतिवृत्तात्मकता की ओर मुड़ी। उसके लिए सरस गद्य शैली को युग ने स्वीकारा। अत: कविता में लाक्षणिकता, चित्रमयता और वक्रोक्ति रही नहीं। विद्वानों ने ऐसा माना है की इस समय द्विवेदीजी के सामने दो शैलियाँ थी बंगाल की कोमलकांत पदावली और मराठी की वर्णन प्रधान इतिवृत्तात्मक शैली। उन्होंने दूसरी शैली को अपनाया। क्योंकि वह उनके मन के अनुकूल थी और साथ ही वह नैतिकता के प्रचार तथा आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए भी उपर्युक्त थी।" परिणामत: इस काल की कविता में आकर्षण लालित्य कम हुआ वह शुष्क एवं नीरस हुई। मुक्तक कविता की रचना का प्रचलन बढ़ा। 'साकेत' में ही गुप्तजी ने इसका प्रयोग किया

वेदने। तू भी भली बनी।
पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी॥

टिप्पणी

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग भी जलता है, हा!
दीपक भी जलता है।

कविता का यह गद्यात्मक रूप मैथिलीशरण गुप्त, ठाकुर गोपालशरण सिंह, लोचनप्रसाद पाण्डेय, मकटधर पाण्डेय में आया। बौद्धिकता के कारण वह बोझिल हुई प्रतिक्रियास्वरूप रहस्यात्मकता की खोज, रहस्योन्मुख प्रेम के प्रति कवि भावना बढ़ी। प्रकृति वर्णन में भी यही भावना रही। गुप्त में भी यह संकेत मिलते-

"तेरे घर के द्वार बहुत है किससे होकर आऊ मैं
सब द्वारों पर भीड़ बड़ी है कैसे भीतर जाऊ मैं।"

नारी स्वातन्त्र्य और उत्कर्ष

रीतिकालीन नारी के सौंदर्य वर्णन की परंपरा को जोदार आघात द्विवेदी युग में मिला। नारी संबंधी मान्यताएँ बदलने लगी। विभिन्न सामाजिक कार्य करने वाली संस्थाओं तथा काँग्रेस के राजनीतिक आंदोलन के परिणाम स्वरूप स्त्री के कोमल भाव की जगह कठोर, वीर भाव का चित्रण होने लगा। उनकी स्वतंत्रता का उत्कर्ष हआ। पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर वह राजनीतिक आंदोलन में उतर चुकी थी। प्राचीन रुढ़ियों, परंपराओं को वे स्वयं तोड़ रही थी। जीवन और जगत के प्रति उनकी अपनी दृष्टि का विकास हो रहा था। अपनी स्वतंत्रता, अधिकार के प्रति वह सजग हो चुकी थी। पुरुषसत्ताकी व्यवस्था को धक्का दिया जा रहा था स्त्री जाति पर होने वाले अन्याय-अत्याचारों के प्रति कवियों ने दृष्टि डाली। श्रीधर पाठक, मैथलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि प्रमुख कवियों ने उसकी बदली चेतना द्वारा नवयुग लाने का प्रयास किया। साथ ही उसके प्रति अन्याय-अत्याचार की भावना को सामाजिकों से निकालने का तथा उसमें सुधार करने का भाव कवियों में रहा है। ईश्वर से प्रार्थना करते हुए श्रीधर पाठक लिखते है।

"दीनबंधु सदृष्टि कीजै बाल-विधवा और।"

नारी के नये रूपों को वे हमारे सामने लाते है वह जनसेविका, देशभक्त रागीनी, जननी के रूप में लोकसेविका के रूप में चित्रित की गई है।

मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों ने उनके उपेक्षित व्यक्तित्व को उत्कर्षित किया। साकेत की उर्मिला हो, या यशोधरा या द्वापर की विधृता। उनपर आधुनिक विचार-संवेदना की गहरी छाप रही हैं साकेत की उर्मिला तो सैन्य संगठन कर रावण से युद्ध करने के लिए तत्पर है। गुप्त जी ने नारी को प्रतिष्ठा दिलाने के लिए ही उसका कारुणिक उत्कर्ष दिखलाया है

"अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल मे दूध और आँखों में पानी॥"

के साथ उसे त्याग, संयम, आत्मोत्सर्ग, शक्ति से कठोर रुपों में भी चित्रित हुई है। इस काल में कोमल गुणों से नहीं बल्कि शक्ति समृद्ध, महान गुणों से पारित हो चुकी थी। उसके व्यक्तिव स्वातंत्र्य का आविष्कार हो चुका वह हर स्तर पर पुरुषों से समानता रखती है।

सामाजिकता की ओर उन्मुख

मानवता और आदर्शवाद की विचार प्रवृत्ति ने कविता अधिकाधिक सामाजिकता की ओर उन्मुख हुई है। समाज के सभी वर्ग पर कवि की दृष्टि पड़ी। सभी वर्गों की उन्नति का भाव कविता में आया है, जैसे स्त्री, दलित, कृषक, मजदूर, उनके विकास की भावना कविता में आयी है। सामाजिक सडी-गली

टिप्पणी

रुढियों. परंपराओं शास्त्र का खंडण कर नया तर्क बुद्धि परक वैज्ञानिक विचार दृढ़ करने पर कवियों ने बल दिया है। स्त्री उद्धार बालविवाह विरोध, विधवा विवाह समर्थन, दहेज प्रथा, शिक्षा समर्थन, आदि का खुलकर चित्रण कविता में हआ है। मैथिलीशरण गुप्त इस दिशा में उल्लेखनीय है। कवियों को हिंदूधर्म की सामाजिक, सांस्कतिक विकास की चाह थी। इसलिए अतीत गौरव जातीय गौरव, जातीय प्रेम का भाव उनकी कविता में आया। काँग्रेस के व्यापक होते आंदोलन के साथ किसान, दलित, महिला वर्ग जुड़ता जा रहा था। किसानों का संघटन एवं विकास का एजेंडा काँग्रेस के रडार पर था। किसानों को बड़ा महत्व काँग्रेस ने दिया। मैथिलीशरण गुप्त की किसान कविता इसका उदाहरण है। अछुतोद्धार की भावना कभी कविता का विषय रहीं है। इसी कालखंड में वर्णव्यवस्था पर तीखे प्रश्न खड़े हो चुके थे। सामाजिक कुरुपताओं को दूर करने के लिए कवियों ने व्यंग्य कविता का आश्रय लिया।

प्रकृति चित्रण

द्विवेदी युग का प्रकृति चित्रण बड़ा सच्चा और मनोयोग पूर्ण किया गया है। शृंगार काल में जो प्रकृति वर्णन किया गया है वह शृंगार भावना उद्दीपन हेतु हुआ है। भारतेन्दु युग में सौंदर्यानुभूति के अभाव में केवल अलंकारिक चित्रण की प्रधानता रही है। परन्तु द्विवेदी युग में यह वर्णन संवेदनात्मक और चित्रात्मक रूपों में उपस्थित हुआ है। जिसमें अग्रसर है श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी तथा रामचंद्र शुक्ल आदि। श्रीधर पाठक की कविता में तन्मयता और माधुर्य भाव सनिहित है, कश्मीर का वर्णन कुछ इसी प्रकार का है

"प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति मेष छनिक छबि छिन-छिन धारति।
बिहरति विविध विलास भरी जोबन मद में सीन।
ललकति किलकति पुलकति निरखति थिरकति बनठनि।"

आचार्य शुक्ल द्वारा ग्राम सौंदर्य वर्णन भी चित्रात्मक रूप में हुआ है-

"गाय उसी देवल के पास से है ग्राम्य-पथ,
श्वेत धरियों में कई घास को विभक्त कर।
थूहरों से सटे हुए पेड़ और झाड़ हरे,
गोरज से धूमले जो खड़े है किनारे पर।"

रामनरेश त्रिपाठी ने उनके काव्य 'पथिक और श्स्वप्न में नदीश में पर्वत, समुद्र आदि का दृश्य भव्य रूप में चित्रित किया है। उनके प्रकृति चित्रण में कहीं-कहीं रहस्यात्मकता भी पाई जाती है-हरिऔध ने प्रकृति को पाँच रूपों में चित्रित किया है, "आलम्बन रूप, उद्दीपन रूप, बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप, उपदेशात्मक रूप एवं आलंकारिक रूप।"

इस काल के कवियों ने प्रकृति-वर्णन में भी उपदेशात्मकता की वृत्ति रखी शायद इसी कारण वह न मानवी, न प्रकृति के रहस्यों को खोल पाया, न सहज, सुंदर हो पार्या वर नीरस और शुष्क ही रहा है। प्रकृत्ति वर्णन भी इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति रही है।

अनुवाद

देशी और विदेशी साहित्य के अनुवाद की भारतेन्दु परंपरा का अधिक विकास द्विवेदी युग में हुआ। यह अनुवाद मात्र केवल पद्यात्मक नहीं गद्यात्मक भी हुआ और ठेठ खड़ीबोली में हुआ। स्वयं द्विवेदी जी 'सरस्वती' में अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद प्रकाशित करते थे। बांगला के उत्कृष्ट ग्रंथों का अनुवाद इस कालखंड में हुआ। श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के हरमिट का एकांतवासी योग तथा ट्रैवलर का शान्त

टिप्पणी

पथिक का पद्यानुवाद किया। डॉ. रवीन्द्र सहाय वर्मा ने अपनी पुस्तक हिन्दी काव्य पर आँग्ल प्रभाव में लिखा है "द्विवेदी युग के हिन्दी काव्य में अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद विशिष्ट स्थान रखते हैं। 1903 से 1908 के मध्यवर्ती काल में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास के लिए अथक परिश्रम किया था। ये अनुवाद अनवरत रूप से सरस्वती में प्रकाशित होते रहे।" शेक्सपियर, बायरन, ग्रे आदि की कविताओं के अनुवाद हुए है।

साथ ही बांगला और मराठी के अनुवाद भी किये गये।" बांग्ला से सामग्री ली गयी ती मराठी से शैली मैथिलीशरण गुप्त ने माईकेल मधुसुदनदत्त के मेघनाथ वध और वीरांगना तथा नवीनचंद्रसेन के 'पलासीर युद्ध का अनुवाद किया। सियारामशरण गुप्त तथा मुकुटधर पाण्डेय की कविताओं पर रविद्रनाथ ठाकूर की गीतांजली के रहस्यवाद का प्रभाव दिखाई देता है। अनुवाद कार्य की परंपरा को समृद्ध किया द्विवेदी युग ने।

काव्य विषय एवं रूपों में विविधता

द्विवेदी युग में काव्य विषयों एवं रूपों में महत्वपूर्ण बदलाव आये हैं। रीतिकालीन परंपरा को छोड़कर अनेक नये विषयों को काव्य में स्थान दिया। द्विवेदी कवि कर्त्तव्यश निबंध में लिखते है-चीटी से लेकर हाथी पर्यन्त, पशु, भिक्षुक, से लेकर राजपर्यन्त, मनुष्य, बिन्दू से लेकर समुद्र पर्यन्त, जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत-सभी पर कविता हो सकती है।" जीवन जगत संबंधी विविध विषयों पर काव्य लेखन किया गया। विषय की कोई सीमा नहीं थी। डॉ० नगेद्र ने विषय सूची ही दी है-परोपकार मुरली, कृषक, सत्य, लड़कपन, ग्रन्थ, गुण-गान, प्रणय, ईर्ष्या, निद्रा, कलियुगी साधु, पुस्तक प्रेम, ब्रह्मचर्य, हिन्दी की अपील, बालक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, मूढ़ मानव, मेहंदी, नैकटाई, मनोव्यथा, कामना, विद्या कुलीनता, पौरुष, शिशु-स्नेह, सुखमय जीवन, भारतीय छात्रों से नम्र निवेदन, लक्ष्मी-लीला, सपूत, ग्राम गौरव, सज्जनों का स्वभाव, समालोचक-लक्षण दरिद्र विद्यार्थी आदि।"

इसके साथ ही आचार्य शुक्ल ने भी कुछ संकेत किये है-देशदशा, समाज-दशा, स्वदेश प्रेम, आचरण संबंधी उपदेश, के साथ, त्याग, वीरता, उदारता, सहिष्णुता, पौराणिक-ऐतिहासिक प्रसंग पद्यबद्ध हुए है जिसके बीच-बीच में जन्मभूमि प्रेम, स्वजातीय गौरव, आत्मसम्मान की व्यंजना करने वाले भाषण रखे गये है/

गुप्तजी ने विकट घर, तिलोत्तमा, रंग में भंग, सौरन्ध्री, द्वापर, किसान, विश्व वेदना, काबा और कर्बला में इसे विस्तार दिया है। कामताप्रसाद गुरु की दुर्गावती (सरस्वती फरवरी 1995) रामचरित उपाध्याय की देवसभा, देवदूत इसके उदाहरण है/

काव्यरूपों की भिन्नता भी द्विवेदी युग की विशेषता है। खंडकाव्य, प्रबंधकाव्य, और प्रगति मुक्तकों का प्रयोग काव्य लेखन हेतु किया गया है। साथ ही मुक्तक के बजाय महाकाव्य, आख्यान काव्य, प्रेमख्यान काव्य, गीत काव्य और स्फुट गीतों का स्वतंत्र लेखन हुआ है। खड़ीबोली का प्रयोग गद्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण रहा है। गद्य साहित्य में घटनाप्रधान, चरित्र प्रधान, ऐतिहासिक तथा पौराणिक घटना और कथाओं को लेकर उपन्यास, कहानियों का लेखन किया गया हैं आलोचना तथा निबंध साहित्य का समृद्ध विकास भी इसी युग में हुआ है। कहने का तात्पर्य है कि विषय एवं शिल्पगत विविध प्रयोग इस काल में हुए है/

खड़ी बोली काव्य की भाषा

द्विवेदी युग में 'भाषा परिवर्तन यह एक प्रमुख प्रवृत्ति है। ब्रजभाषा की जगह खड़ीबोली ने काव्य भाषा के रूप में स्थान लिया "आज खड़ीबोली के भाषा-सौंदर्य, मार्दव और अभिव्यंजना क्षमता के

टिप्पणी

दर्शन के पश्चात उसकी काव्योपयुक्तता। विवादास्पद नहीं रह गयी है।" जो लोग खड़ीबोली प्रयोग पर सशंक थे उन्हें जयद्रथवध, भारत-भारती ने उपयुक्तता समझायी/द्विवेदीजी ने भाषा तथा व्याकरण संबंधी त्रुटियों को दूर कर उसे प्रयोगसामर्थ्यशील बनाया। द्विवेदीजी ने गद्य-पद्य की भाषा भी एक-सी करने का आदर्श-रखा, इसका परिणाम कवियों पर हुआ। हरिऔध जी जैसे कवियों में तो द्विवेदीजी के संस्कृतनिष्ठता का भी अभाव है उन्होंने ठेठ हिन्दुस्थानी का प्रयोग प्रिय प्रवास में किया

"मदीय प्यारी अयि कुंज कोकिला
मुझे बता तू ढिग कूक क्या उठी।
विलोक मेरी चित्त-भ्रान्ति क्या बनी
विषादती संकाचित्ता नीपीड़िता।"

द्विवेदीजी ने भाषा को समयानुरूप बदला। डॉ० नगेद्र ठीक कहते है, जयंद्रथ वधश की प्रसिद्धी ने व्रजभाषा के मोह का वध कर दिया 'भारत-भारतीश की लोकप्रियता खड़ीबोली की विजय-भारती सिद्ध हुई' ब्रजभाषा का वैभवशाली रूप धराशायी हआ और खड़ीबोली ने विकास पाया। भाषा के बदलने से जो क्रांति हई वह आगे हिन्दी साहित्य में स्पष्ट है। छंदोबद्धता को त्यागकर भी कविता जन के ओर अधिक निकट हुई/

छन्द, स्वच्छन्द

खुद द्विवेदीजी छंदोबद्ध तथा तुकबंदीवाली कविता के विरोधी थे इसलिए उन्होंने स्वछंद को अपनाया। संस्कृत वृत्तों के अतुकांत या अनुप्रास को भी दूर किया गया। खड़ीबोली में ही विविध छंदों का सुंदर प्रयोग इस काल के कवियों ने किया। हिन्दी, उर्दू, संस्कृत को छंदों का भी प्रयोग उत्कृष्ट रूप से किया। मुक्तछंद की कविता का प्रयोग होने लगा। छायावादी अंतिम दौर में तो निराला ने मुक्तछंद कविता का ही पुरस्कार किया। फिर भी श्रीधर पाठक ने लावनी तथा उर्दू, गयाप्रसाद शुक्ल -स्नेही ने उर्दू, हरिऔध ने संस्कृत, छंदों का प्रयोग किया। ब्रजभाषा में जिन कवियों ने रचनाएँ की उन्होंने रोला, छप्पय, कुण्डलियां, गीतिका, हरिगीतिका, नाटक, लावनी, सवैया, कवित्त आदि छंदों का प्रयोग किया है। अनेक कवि छंद विशेष का प्रयोग करते थे। परंतु इस काल का कवि भाषा के संस्कार कार्य में रत था। उन्होंने नये छंद निर्माण करने में कोई दिलचस्पी नहीं रही होगी।

5.7 स्वाधीनता आन्दोलन और द्विवेदी युग का मूल चरित्र

1856 ई० में हिन्दी भाष क्षेत्र पर पूरी तरह अंग्रेजों के अधिपत्य स्थापित करते ही अगले वर्ष 1857 ई० में उनके विरुद्ध विद्रोह की आग भड़क उठी। यद्यपि अंग्रेजों ने स्वाधीनता की भावना को नहीं दबा सके। भारतेन्दु युग का कवि ही स्वाधीनता की मांग करने लगा था

"सब तजि गहौ स्वतंत्रता, नहि चुप लातै खाय।"

द्विवेदी युग में स्वाधीनता की मांग और तीव्र हुई। 28 सितम्बर 1885 ई० में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजों की सदभावना और न्यायप्रियता पर विश्वास करके अपनी अपनी मांगे उनके सामने प्रार्थना के रूप में प्रस्तुत करती रही लेकिन इन प्रार्थनाओं का कोई फल नहीं निकला। इसलिए कांग्रेस में असंतोष बढ़ने लगा जो 1905 में बंग भंग के समय पूर्णत: सामने आ गया। इस बंग-भंग का सभी देशभक्त भारतीयों ने विरोध किया लेकिन विरोध के स्वरूप को लेकर उनमें मतभेद था फलत: कांग्रेस में उग्र और अनुग्र दो दल बन गए। 1906 ई० में कांग्रेस की सदस्यता के नियम इस प्रकार बना दिए गए जिससे उग्र दल वालों के लिए उसके दरवाजे बंद हो गए। अंग्रेज सरकार भी उग्रवादियों के खिलाफ थी। अत: 1907 ई० में बिना मुकदमा चलाए लाला लाजपतराय को देश से

टिप्पणी

निर्वासित करके माण्डले जेल भेज दिया गया। अगले ही वर्ष केसरी के लेखों को बहाना बनाकर तिलक को छह वर्ष की कड़ी सजा देकर माण्डले जेल भेज दिया। लेकिन इससे अंग्रेजी शासन का विरोध कम नहीं हुआ। 1915 ई० में तिलक और एनी बेसेंट ने होमरूल (स्वशासन) आंदोलन चलाया। 1916 ई० में उग्रवादियों को कांग्रेस में फिर प्रवेश मिला। 1914 ई० में प्रारम्भ होने वाले प्रथम महायुद्ध में अंग्रेजों की सहायता करने के लिए गांधी जी ने काग्रेसियों को मना लिया। इस यता के पीछे मनोभाग यह था कि युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेज शासन में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाएगें, उनकी मांगों को कुछ न कुछ स्वीकार करेंगे लेकिन हुआ उल्टा। युद्ध समाप्त होते ही अंग्रेजो ने अपना दमनचक्र पूरी तेजी से चलाया जिसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया हुई। 1919 ई० रौलट बिल इसी दमनचक्र का अंग था और 13 अप्रैल 1919 ई० को जलियावाला बाग का हत्याकांड उस दमनचक्र की चरम परिणीत थी।

5.8 ब्रजभाषा की कविता

इस युग में श्रीधर पाठक, रायदेवी प्रसाद पूर्ण, नाथूराम शंकर शर्मा, गयाप्रसाद शुक्ल, 'स्नेही, लाला भगवानरीन, जन्नाथदास रत्नाकार, अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरदयालु सिंह, सत्यानारायण कवि रत्न आदि ऐसे कवि है जो ब्रजभाषा में कविता लिखते रहे। इनमें से रत्नाकार कविरत्न और हरदयाल सिंह को छोडकर शेष सभी कवि दोरंगी कवि थे, जो ब्रजभाषा मे तो शृंगार, वीर, भक्ति आदि की नूरानी परिपाटी की कविता कवित्व-सवैया या गेय पदों में करते आते थे ओर खड़ी बोली में पूतन विषयों को लेकर चलते थे। इनमें से ब्रजभाषा के प्रति एकांत समर्पित जगन्नाथ नाथदास रत्नाकार और सत्यानारायण कविरत्न ने ब्रजभाषा काव्य में वैशिष्ट्य प्राप्त किया। रत्नाकर की ब्रजभाषा कविता का चरम उत्कर्ष उद्धव शतक में विद्यमान है। उद्धव शतक का विषय, भाषा और शैली तीनों परंपरात है। फिर भी इसमें ऐसा कुछ है जो ताजगी का आभास देता है और आज भी आकर्षित करता है। यह ताजगी गोपियों के परंपरागत रूप से किचिंत भिन्न नये रूप में है। उद्धव शतक में ऐसे अनेक छंद है जिनमें गोपियों की हास्य, व्यंग्य, तर्कशीलता, बौद्धिक प्रखरता, गंभीरता, चलबलेपन, तटस्थता, संतुलन इत्यादि की प्रवृत्तियों एक साथ मिलती थी। जैसे, उद्धव के द्वारा उपदेशित प्राणायाम के विरोध में गोपियों का यह कथन -

और हू उपाय केते सहज सुढंग ऊधौ,
सॉस रोकिबै को कहा जोग की कुढंग है।
कुटिल कटारी है अटारी है उतंग अति,
जमुना तरंग है तिहारौ सतसंग है॥

रत्नाकार ने दो कक्ति खड़ी बोली में लिखे थे किंतु सत्यानारायण कविरत्न ने अपनी सम्पूर्ण कविता ब्रजभाषा में ही लिखी। केवल कुछ वर्षो। (1903 ई० - 1918 ई०) के रचनाकाल में ही उन्होंने आधुनिक ब्रजभाषा काव्य पर अपनी अमित छाप छोड़ी। इसका कारण उनकी सरलता थी जिसे उनके ये शब्द प्रमाणित करते है

"सदा दारू-योषित सम बेबस आज्ञा मुदित प्रमानै।
कोरो सत्य ग्राम को बासी कहा तकल्लुफ जानै॥"

उनका तकल्लुफ न जानना ही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। वे जैसा अनुभव करते थे और जैसी ब्रजभाषा बोलते हैं। उसे वैसी की वैसी ही भाषा में व्यक्त करते थे। इसलिए उनकी कविता चाहे भक्तिभाव की हो, राष्ट्र प्रेम की हो, निजी जीवन की त्रासदी की हो अथवा समसामयिक घटनाओं और व्यक्तियों से संबंधित हो इतनी सहज और प्रभावशाली बन पड़ी है कि कोई उनकी मर्मस्पर्शिता से बच नहीं सकता/

टिप्पणी

5.9 खड़ी बोली की कविता

द्विवेदी युग की हिंदी कविता को सबसे बड़ी देन खड़ी बोली को कविता की माध्य।-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना है। खड़ी बोली में दोरंगी कवियों की कविताओं का महत्व अवश्य है। लेकिन उनसे अधिक महत्व उन कवियों की कविताओं का है जो इसी युग की उपज है और जिन्होंने खड़ी बोली की कविता लिखी है। ऐसे कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त, रामचरित, उपाध्याय, मुकुटधर पाण्डेय आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अयोध्यासिंह उपाध्यास हरिऔध तो अपने आप में ही एक वर्ग है/

द्विवेदी जी ने कविता के माध्यम से भी पथ-प्रदर्शक का ही काम किया। उन्होंने अपने युग के कवियों को गद्य के माध्यम से ही नहीं पद्य के माध्यम से भी नए विषयों को अपनाने की प्रेरणा दी। फलत: हिन्दी कविता से रीतिकालीन विषय-संकोच दूर हुआ और कवि तमाम नए विषयों पर कविता लिखने लगे। नए विषयों पर लिखी गई बहुत सी कविता पद्य से आगे कम ही बढ़ सकी है। इस पद्य में उपदेशात्मकता, इतिवश्त्तात्कता, निबंधात्मकता और वक्तत्व की प्रवृत्तियाँ प्रधान है/

द्विवेदी युगीन कविता की मूल प्रवृत्ति राष्ट्रीयता की भावना है जो अतीत वर्तमान और भविष्य तीनों कालों में प्रसुप्त है और जिसे मैथलीशरण गुप्त ने सूत्र रूप में इस प्रकार व्यक्त किया है-

हम कौन थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी,
आओ विचारे आज मिलाकर ये समस्याएँ सभी।

इस युग का कवि जब अपने अतीत की ओर देखता है तो उसे गर्व होता है। वह अनुभव करता है कि भारतवर्ष संसार का सिरमौर है-

हाँ वृत भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है,
ऐसा पुरातनदेश कोई विश्व में क्या और है?
भगवान की भवभूतियों को यह प्रथम भण्डार है
विधि ने किया नर-सष्टि का पहले यही विस्तार है।

वर्तमान भारत तो दारिद्रय, दुर्भिक्षों, व्याधियों, कुसंस्कारो, चरित्रहीनता, अविधा, अशिक्षा, आडम्बर, अंध विश्वास, पारस्परिक कलह, अभाव, दासता इत्यादि से भरा हुआ है। इनसे मुक्त होने के लिए आवश्यक है। एकजुट होकर बुराइयों को त्यागकर उठ खड़े होना

उठो त्याग दे द्वेष, एक ही सबसे मत हो।
सीखा ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल उन्नत हो।
भारत की उन्नति सिद्धि से हम सबका कल्याण हो।
दृढ़ समझो इस सिद्धांत को हम शरीर यह प्राण हो।

द्विवेदी युगीन कवियों ने काव्यभाषा का स्वरूप स्थिर कर आगे चलकर उसे अधिक मधुर अधिक कलात्मक और अधिक अभिव्यंजनात्मक बनाने का छायावादी कवियों का कार्य सुगम कर दिया/

द्विवेदी युगीन कवियों ने छंदों, अलंकारों, काव्य रूपों आदि के क्षेत्र में भी नए-नए प्रयोग किए। उन्होंने पुराने छंदों को लोकप्रिय बनाया। हरिगीतिका इसका सुंदर उदाहरण हैं संस्कृत के वर्णवृत्तों का पहली और अंतिम बार इतना अधिक प्रयोग हुआ। काव्यरूप के क्षेत्र में इस युग के कवियों की सबसे बड़ी देन प्रबंध-काव्य के क्षेत्र में है। 'प्रियवास', 'साकेत', 'रामचरित चिंतामणि', जयभारत जैसी महाकाव्य होने का दावा करने वाली रचनाएँ इसी युग के कवियों की देन है। इस युग के कवियों ने खण्ड काव्य तो

टिप्पणी

इतने अधिक लिखे है, जितने इनसे पहले और इनके बाद के कवियों ने कभी नहीं लिखे। ये शिल्पगत प्रयोग इस यग की विशेष मनोभूमि का पता देते है/

5.10 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. **द्विवेदी युग का यह नाम क्यों पड़ा?**
2. **द्विवेदी युग के दो प्रमुख कवियों के जीवन परिचय दीजिए।**
3. **द्विवेदी युगीन कविता के आधार बिंदू कौन-से हैं?**
4. **'द्विवेदी युग में नारी का स्थान' इस विषय पर आलेख लिखिए।**
5. **"खड़ी बोली का प्रयोग द्विवेदी युग में पर्याप्त मात्रा में हुआ है।" इस विषय की विवेचना कीजिए।**

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. **जागरण सुधार काल को द्विवेदी युग कहते हैं। इस पर प्रकाश डालते हुए द्विवेदी युग की विस्तार से चर्चा कीजिए।**
2. **द्विवेदी युगीन कविता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।**
3. **द्विवेदी युगीन काव्य की प्रवृत्तियों को अंकित कीजिए।**
4. **द्विवेदी युगीन काव्य की विशेषताओं पर उदाहरण सहित चर्चा कीजिए।**
5. **द्विवेदी युगीन लक्षणों को रेखांकित कीजिए।**

♦♦♦♦♦

टिप्पणी

References and Suggested Reading

lnHk iLrd

- आज के रंग नाटक- गिरीश रस्तोगी
- अंधेर नगरी : सं. गिरीश रस्तोगी, राजकमल प्रकाशन
- जयशंकर प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन- जगन्नाथ शर्मा
- हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास - दशरथ ओझा
- fxjh'k jLrkxh & ekgu jkd'k vkj mud dk0;
- fxjh'k jLrkxh & ekgu jkd'k vkj vk"kk< dk ,d fnu
- fgnh ukVd mnHko vkj fodkl] jktiky ,M ll] fnYyh
- Mk- nojkt & Hkkjrh; lLdfr] idk'ku foHkkx] lpuk foHkkx] mRrj in'kA
- Mk- uxUn & vk/kfud fgnh ukVd] lkfgR; jRu HkMkj] vkxjkA

Internet Links

https://www.youtube.com/watch?v=4QmAOo3q2uo

https://www.youtube.com/watch?v=G_DxFNgWzE0

https://www.youtube.com/watch?v=ybSSHcQbrYs

https://www.youtube.com/watch?v=ybSSHcQbrYs

https://www.youtube.com/watch?v=Wl49MWxAoxM

https://www.youtube.com/watch?v=EuaGWYtfc4w

Related Research Articles

vuiek ' 'kek & ekgu jkd'k d ukVdk e feFkd vkj ;FkkFk

vpuk R;kxh & ukV; lkfgR; e ykdrRo] fuek.k idk'ku fnYyh

miUn ukjk;.k flg & vk/kfud fgnh ukVdk ij vkXy ukVdk dk iHkko] fgnh lkfgR; llkj] iVuk

Mk- mek'kdj flg & fgnh d leL;k ukVd] Åtk idk'ku] bykgckn

Mk-vkeidk'k lkjLor & cnyr eY; vkj vk/kfud fgnh ukVd] eFku ifCyd'ku] jkgrd

Økfr dukV & Hkkjrh; ukV; jx] vf[ky Hkkjrh; lkfgR; ifj'kn] fnYyh

Mk- fxfjtk flg & fgnh ukVdk dh f'kYi fof/k] ykd Hkkjrh idk'ku] bykgkckn

fxfj'k jLrkxh & fgnh ukVd fl)k r vkj foopu] xFke] dkuij